卐 मंगल प्रेरणा 卐

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं
—उपनिषद

अर्थात् हम कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करें।

मनुष्य अमृत-पुत्र है और यह शरीर देव मन्दिर। इस शरीर के माध्यम से ही ब्रह्म व्यक्त होता है। इसके कण-कण में दिव्य तत्वों का समावेश है। इसमें सप्तर्षि निवास करते हैं।

सप्त ऋषयः प्रतिहिता शरीरे।
सप्त रक्षन्ति स व अप्रमादम्॥
—यजुर्वेद ३४-३५

अग्नि वाणी बनकर मुख में, वायु प्राण बनकर नासिका में, सूर्य नेत्रों में, दिशायें कानों में, औषधि त्वचा में, चन्द्रमा मन बनकर हृदय में, यम अपान बनकर नाभि में और वरुण रेतस बनकर जननेन्द्रिय में निवास करते हैं और इसकी रक्षा करते हैं।

धर्मार्थ काममोक्षाणामारोग्यं मूल मुत्तमम।
रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो जीवितस्य च॥

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सबका आधार स्वस्थ शरीर ही है। सभी प्रकर की धार्मिक क्रियाएँ, धन कमाने की चेष्टायें, भोग-विलास के साधन एवं मोक्ष की प्राप्ति स्वस्थ शरीर के रहते ही सम्भव है।

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तदभावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्॥

अर्थात् सब कामों को छोड़कर शरीर की रक्षा करना मानव मात्र का धर्म है। देह के रोगी या उसके नाश होजाने पर सब पदार्थ मनुष्य के लिए निरर्थक हैं।

सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामयाः।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत्॥

ओ३म् शान्तिः ओ३म् शान्तिः ओ३म् शान्तिः

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाग्भवेत् ।।

स्वस्थ रहें सौ वर्ष जिएं

आयुर्वेद, योग, प्रकृति, सूर्य-चिकित्सा, ध्यान-चिकित्सा
मनः शक्ति-चिकित्सा एवं वैज्ञानिक शोध पर आधारित

हर परिवार में रहने योग्य
स्वास्थ्य का अनमोल रत्न

□

लेखक
रामकुमार सिंह पुण्ढीर
सम्पादक 'अनन्त प्रभा'
एवं
प्रधान चिकित्सक 'आरोग्य धाम'

□

प्रकाशक
अनन्त प्रभा प्रकाशन
3/542 मालवीय नगर, जयपुर-302017

शारीरिक स्वास्थ्य ☐ मानसिक प्रसन्नता ☐ आत्मिक शान्ति एवं
व्यक्तित्व निर्माण की बेजोड़ जीवनोपयोगी पत्रिका
अनन्त प्रभा की शानदार भेंट

स्वस्थ रहें सौ वर्ष जिएं

प्रथम संस्करण—1990

मूल्य—बीस रुपये मात्र

मुद्रक
आशीष प्रिन्टर्स
के० जी० बी० का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर

प्रकाशक
अनन्त प्रभा प्रकाशन
3/542, मालवीय नगर, जयपुर–302017

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

आरोग्य की कुञ्जी एवं जीवन के सौ वसन्त

द्वितीय खण्ड

कठिन रोग दूर करें

तृतीय खण्ड

स्वास्थ्य का कल्पवृक्ष

कुल पृष्ठ—प्रथम खण्ड = 96
द्वितीय खण्ड = 80
तृतीय खण्ड = 32
अन्य = 08
योग = 216

1

सौ वर्ष जीने की इच्छा करें

उपनिषद् का प्रसिद्ध सूक्त है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत्

अर्थात् हम कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करें। मनुष्य के लिए इस प्रकार की इच्छा करना स्वाभाविक है। प्राचीन समय में मनुष्य की सामान्य आयु सौ वर्ष की होती थी। प्रथम पच्चीस वर्ष में वह ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए ज्ञान प्राप्त करता था।

परा विद्या—(आध्यात्मिक ज्ञान) और **अपरा विद्या** (सांसारिक ज्ञान) को प्राप्त कर वह अपने जीवन की नींव को मजबूत करता था। इसी के साथ वह इस काल खण्ड में जीवन के चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त करता था। जीवन का पहला और आधारभूत पुरुषार्थ धर्म है, धर्म किसी उपासना पद्धति का नाम नहीं है, अपितु करणीय कर्त्तव्यों का नाम है। वैशेषिक शास्त्र के प्रवर्तक कणाद मुनि ने कहा है—**यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः** अर्थात् जिससे सांसारिक उन्नति और आध्यात्मिक ज्ञान की सिद्धि या आत्मकल्याण की प्राप्ति हो, वह धर्म है। धर्म के अन्तर्गत सभी प्रकार के करने योग्य कर्त्तव्य शामिल हैं। सच्चरित्रता नैतिक गुण और जीवन के महान् सिद्धांतों का ज्ञान व उनको जीवन में उतारना—वैदिक ऋषियों की धर्म की परिभाषा है। आधुनिक ऋषि महात्मा गांधी भी लिखते हैं—"**बिना सिद्धांत का जीवन वैसा बिना पतवार का जहाज। धर्महीन मनुष्य संसार-सागर ही है जैसा मेंइ धर उधर मारा-मारा फिरेगा और अपने अभीष्ट स्थान तक नहीं पहुँचेगा।**" सादा और संयमित जीवन बिताते हुए कठोर परिश्रम करना ब्रह्मचर्य आश्रम की प्रमुख विशेषताहोती थी। **इन सब का परिणाम होता था कि विद्या प्राप्त करने के बाद जब व्यक्ति जीवन-क्षेत्र में प्रवेश करता था तो उसका सुगठित शरीर, उज्जवल चरित्र और ब्रह्मतेज से दमकता मुख-मण्डल देवताओं के लिए भी ईर्ष्या का विषय होता था।** यह था वह सुदृढ़ आधार जिस पर जीवन का भव्य भवन खड़ा होता था—ऐसा आधार जो ग्रहस्थ जीवन की धन कमाने और काम (अर्थ व काम के पुरुषार्थ) सम्बन्धी क्रियाओं को सिद्ध करने में सर्वथा समर्थ था। धर्म का आधार होने के कारण धन कमाना और कामेच्छा की पूर्ति यज्ञ के समान पवित्र थी।

इस प्रकार धर्म की रस्सी से बन्धे अर्थ और काम भी व्यक्ति को मोक्ष की ओर ले जाते थे। अर्थ और काम पर संयम और मर्यादाओं का पहरा था। इसलिए 'मातृवत परदारेषु' अन्य स्त्रियों को माता के समान् समझना, जैसे नीति वाक्यों का पालन समाज में होता था। यदि इन सामाजिक मर्यादाओं को तोड़ने का दुस्साहस किसी 'असुर के मन में उपजता भी तो समाज की सम्पूर्ण शक्ति उस आसुरी वृत्ति को नष्ट करके ही दम लेती थी।

जीवन का स्वर्ग

पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति जीवन का उद्देश्य थी। यह मनुष्य-जीवन का सबसे बड़ा स्वर्ग था। धर्म के रूप में कर्त्तव्य, सदाचार और सच्चरित्रता की अक्षय पूंजी उसके पास होती थी, वित्तैषणा (धन की इच्छा) और पुत्रेषणा (कामेच्छा) की पूर्ति के लिए गृहस्थाश्रम की व्यवस्था थी। समाज सेवा के लिए वानप्रस्थ और आत्म-कल्याण के लिए सन्यास आश्रम की योजना थी। **गृहस्थी होते हुए भी विदेह (राजाजनक) और राजा होते हुए भी सन्यासी बने रहने का उच्चादर्श** सभी प्रकार के सांसारिक सुखों, मानसिन आनन्द और आत्मिक शान्ति के द्वार खुले रखता था। मनुष्य को और क्या चाहिये था। स्वस्थ शरीर, दीर्घायु, मानसिक प्रसन्ननता, आत्मिक शान्ति-सभी कुछ तो था उसके पास।

तन-भूखा—परिस्थिति बदलती गई। आक्रान्ताओं ने हमारे भौतिक सुखों को ही नहीं लूटा, हमारी जीवन-पद्धति को भी बदल डाला—उस जीवन-पद्धति को जो हमारी अनुपम निधि थी। **परिणामस्वरूप आज वहाँ का हर व्यक्ति तन से भूखा है—गरीब है वह भी और अमीर है वह भी।** गरीब साधन विहीन है, इसलिए और अमीर इसलिए कि वह दवाओं के सहारे खाता है और दवाओं के सहारे ही उसे नींद आती हैं।

प्रकृति माता के ये दो अनोखे वरदान—भूख और नींद दोनों उससे किनारा कर चुके हैं।

मन रीता—दया और प्रेम का अक्षय भण्डार है मनुष्य। करुणा और ममता की प्रतिमूर्ति है नारी। उससे हँसी चुराकर ही फूलों ने हँसना सीखा है। किन्तु आज वह क्षण-क्षण रीत रहा है। उसकी संवेदनाएँ मरती जा रही हैं, प्रेम की सरिता सूखती जा रही है। **आज कुछ नहीं है उसके पास देने को—न दया, न प्रेम और न हँसी। अर्थात् भावनाशून्य यन्त्र-मानव बनकर रह गया है वह।**

आत्मा प्यासी—"पानी बिच मीन प्यासी मोहि सुनि-सुनि आवत हाँसी' कबीर की यह उक्ति आज खरी सिद्ध हो रही है। कस्तूरिया मृग की भांति वह इधर-उधर भटक रहा है। 'वह कौन है' इस बात को वह पूरी तरह भूल चुका है। **'अहम् ब्रह्मास्मि'**

अर्थात् 'मैं साक्षात ब्रह्म हूं' इस प्रकार का जीवन-सत्य जिस देश की पूंजी रहा हो, उस देश का मनुष्यधन को, भौतिक सुखों का या विषय-वासनाओं को जीवन का एक मात्र सत्य समझ बैठे तो यह माया की चुम्बकीय शक्ति का प्रभाव ही माना जायेगा—जैसा कि कबीर ने कहा था—माया महा ठगिनि हम जानी । "ईश्वर अंश जीव अविनासी" होकर भी वह आज रेगिस्तान में चमकते रेतकणों को पानी समझने की भूल कर रहा है। सम्भवतः इसीलिए वह प्यासा है । वह भूल गया है कि भौतिक सुख व सांसारिक आकर्षण तो साधन मात्र हैं— इस जीवन का उद्देश्य तो शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता और आत्मिक शांति की प्राप्ति है । इनको प्राप्त करके ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है । स्वास्थ्य और सुख-शान्ति के लिए उसे इस सत्य को जीवन में उतारना होगा ।

स्वस्थ तन-मन और आत्म शान्ति का मार्ग

हमारे तत्वदर्शियों और आयुर्वेदाचार्यों ने केवल जीवन के उद्देश्य ही निर्धारित नहीं किये थे, उनको प्राप्त करने के सुगम उपाय भी बताये थे । आयुर्वेद उन्हीं उपायों में से एक श्रेष्ठ उपाय है । आयुर्वेद दो शब्दों से मिलकर बना है—आयुः + वेद । आयु का अर्थ—'अय् गतौ' धातु से आयु शब्द की सिद्धि होती है—अर्थात् जो रात-दिन अबाध गति से चलती रहे उसे आयु कहते हैं । चरक सूत्र अ. 1 के अनुसार—

शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम् ।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायुरुच्यते ।।

अर्थात् शरीर, इन्द्रियों, सत्व (मन) और आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं। इस प्रकार गर्भ से लेकर मृत्यु पूर्व तक की मनुष्य की अवस्था का नाम आयु है। दूसरे शब्दों में जीवन ही आयु है ।

दूसरा शब्द वेद है । वेद का अर्थ—समाधि अवस्था में ऋषि-मुनियों द्वारा प्राप्त किया गया विशिष्ट ज्ञान । इस प्रकार आयुर्वेद का अर्थ हुआ—समाधि-अवस्था में आयु या जीवन के विषय में ऋषि-मुनियों द्वारा प्राप्त किया विशिष्ट ज्ञान । आयु के विषय में ज्ञान कराने वाले वेद को अर्थात् आयुर्वेद को वेदज्ञों ने पुण्यतम माना हैं क्योंकि यह इहलोक और परलोक, दोनों के लिए कल्याणकारी है—

तस्यायुषः पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतः ।
वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोहितः ।।.

च. सू. अ. 1

चरकाचार्य ने च. सू. अ. 1 में लिखा है कि हितायु, अहितायु सुखायु तथा दुःखायुरूपी इस चतुर्विध आयु का जिस शास्त्र में वर्णन हो, उस आयु के हित और

अहित कारक पदार्थों का जहां वर्णन किया गया हो, तथा आयु का स्वरूप व जीवात्मा और परमात्मा का जहां विवेचन किया गया हो, उसे आयुर्वेद कहते हैं—

हिताहितं सुखंदु.खमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानश्च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः सः उच्यते ।।

सुश्रुताचार्य के अनुसार–"आयुरस्मिन् विद्यतेऽनेन वा आयुर्विदन्तीत्यायुर्वेदः" अर्थात् जिस शास्त्र में आयु का वर्णन तथा आयु प्राप्ति के उपाय हों उसे आयुर्वेद कहते हैं।

भाव प्रकाश के अनुसार आयु के हित और अहित का चिन्तन और रोगों के निदान तथा चिकित्सा वर्णन करने वाले शास्त्र को आयुर्वेद कहते हैं।

इस प्रकार आयुर्वेद का क्षेत्र शरीर, इद्रियां, मन, आत्मा, परमात्मा रोग एवं उनकी चिकित्सा—तात्पर्य यह कि मनुष्य-जीवन के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक आदि सभी क्षेत्रों से यह सम्बन्धित है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र भी धीरे-धीरे अपनी रोगों और उनकी चिकित्सा के दायरे से निकलकर आयुर्वेद की तरह सम्पूर्ण जीवन की ओर अपने कदम बढ़ा रहा है संक्षेप में कहें तो **आयुर्वेद सम्पूर्ण जीवन का विशिष्ट ज्ञान है।**

शरीर पालन महान धर्म

शास्त्र का कथन है—

सर्वमन्यत्परित्यज्य शरीरमनुपालयेत ।
तदभावे हि भावनां सर्वाभावः शरीरिणाम् ।।

अर्थात् सब कामों को छोड़कर शरीर की रक्षा करना मानव मात्र का धर्म है, क्योंकि देह का नाश हो जाने पर सब पदार्थ उसके लिए निरर्थक हैं। मनुष्य के शारीरिक या मानसिक रूप से रोगी हो जाने पर भी सांसारिक पदार्थों का कोई मूल्य नहीं रहा जाता। कहा भी गया है—

"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्"
अथवा
धर्मार्थकाम मोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।।

अर्थात् शरीर ही धर्म का साधन है। केवल धर्म ही नहीं अपितु अर्थ, कर्म भोगविलास, मोक्ष आदि सब की प्राप्ति का एक मात्र साधन स्वस्थ शरीर ही है। अतः बुद्धिमान पुरुष इसे स्वस्थ रखने में कभी प्रमाद नहीं करते।

तो आइये उपनिषद् के उक्त सूक्त **"हम स्वस्थ और निरोग रहकर कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करें,** को अपने जीवन में चरितार्थ करें। □

2
शरीर देव मन्दिर है

मनुष्य अमृतपुत्र है। प्राचीन ऋषियों ने 'अहम् ब्रह्मास्मि' अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूँ' कहकर मनुष्य की असीमित शक्तियों की ओर संकेत किया है। मनुष्य के अन्दर छिपी हुई शक्तियाँ आयुर्वेदिक और योग की क्रियाओं से जब प्रकट हो जाती हैं तब मनुष्य भगवान बन जाता है। उस परमपिता परमात्मा का अंश 'आत्मा' के रूप में हमारे शरीर में विद्यमान है। तुलसीदास कहते हैं—ईश्वर अंश जीव अविनाशी। उनका यह कथन भी ऋषियों के द्वारा बताये उक्त सत्य की ही पुष्टि करता है। इसे मात्र रक्त-मांस का पुतला बताना ईश्वरीय चेतना को झुठलाने के समान है। यजुर्वेद–34–35 के सूक्त के अनुसार इसके कण-कण में दिव्य तत्वों का समावेश है।

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र जाग्रतावसवप्रजौ सत्र सदौचदेवो ॥

अर्थात् यह शरीर सात ऋषियों का पवित्र आश्रम है। ये सात ऋषि सावधानी पूर्वक प्रमाद न करते हुए इस शरीर रूपी आश्रम की रक्षा करते हैं। अग्नि वाणी बनकर मुख में, वायु प्राण बनकर नासिका में, सूर्य नेत्रों में, दिशाएं कानों में, औषधि त्वचा में, चन्द्रमा मन बनकर हृदय में, यम अपान बनकर नाभि में और वरुण रेतस बनकर जननेन्द्रिय में निवास करता है। यही नहीं इसी सूक्त में आगे इस शरीर को सात नदियों का पवित्र तीर्थ स्थान और पवित्र यज्ञशाला कहा है।

अथर्ववेद 20–2–29–32 के अनुसार ब्रह्मनगरी

जो मनुष्य अमृत से आवृत ब्रह्म की इस नगरी (शरीर) को जानता है उसे चक्षु तथा अन्य इन्द्रियाँ तथा प्राण वृद्धावस्था के पूर्व नहीं छोड़ते। यह शरीर आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली देवी की अयोध्या नगरी है। इसमें ज्योति से व्याप्त सुवर्णमय हितकर और रमणीय उपादान से निर्मित स्वर्गरूप हृदय कोष है। यह स्वर्णमय–स्वर्गरूप कोष तीन अरों वाला तथा तीन स्थानों पर टिका हुआ है। इसमें आत्मा के साथ पूजनीय ब्रह्मदेव विराजमान हैं। यह समझकर जो व्यक्ति इसे स्वस्थ और दीर्घजीवी बनाता है, वही सच्चा ज्ञानी है।

आधुनिक युग के महान् वेद विभूति श्री पाद दामोदर सातवलेकर इस प्रसंग में लिखते हैं—**जब तक भारत में वैदिक विचारों की जागृति रही और इस शरीर को देव मन्दिर व यज्ञशाला समझा जाता रहा, तब तक भारतीय स्वस्थ और दीर्घायु बनने का प्रयत्न करते रहे। परन्तु जब से उन्होंने इसे हाड़-मांस का पुतला या भोग-विलास की सामग्री समझा तभी से वे रोगी और क्षीणायु होने लगे।** यह शरीर ईश्वर ने अपने पुत्र जीवात्मा के रहने के लिए बनाया है। ईश्वर पुत्र इस शरीर में आकर श्रेष्ठ पुरुषार्थ करने और 'शतक्रतु' सौ यज्ञ करने की इच्छा करता है।

पहला सुख निरोगी काया—इस शरीर को स्वस्थ, निरोग और दीर्घजीवी बनाने का प्रयत्न करना देव पूजन के समान है। यह मनुष्य शरीर दुर्लभ है। तुलसीदास कहते हैं—**बड़े भागु मानुस तन पावा**—अर्थात् यह मनुष्य शरीर बड़े भाग्य से ही मिलता है। स्वस्थ शरीर से बड़ी पूंजी संसार में दूसरी कोई नहीं। मुझे वह घटना याद आती है जब एक व्यक्ति अपनी निर्धनता से तंग आकर आत्म-हत्या करना चाहता है। टालस्टाय कहते हैं—तुम मूर्ख हो क्या ? इस स्वस्थ शरीर के रहते कौन मूर्ख तुमको निर्धन कहेगा ? तुम आत्महत्या क्यों करते हो ? मुझसे एक लाख रुपये ले लो और बदले में अपनी आँखें दे दो। उस दिन उस निर्धन व्यक्ति की समझ में आया कि मैं निर्धन नहीं हूँ। निर्धन वे हैं जो रोगी हैं, निर्धन वे हैं जो शक्तिहीन हैं और निर्धन वे हैं जिनके लिए संसार की सभी वस्तुएँ बेकार हैं क्योंकि उनका उपयोग करने की इच्छा तक उनमें शेष नहीं रह गई है। **प्रसिद्ध स्वास्थ्य शास्त्री आर्थर** भी इसी मत का है। वह कहता है कि एक स्वस्थ मजदूर के सुख पर धनी से धनी रोगी व्यक्ति की सम्पूर्ण धन-सम्पदा न्यौछावर की जा सकती है। प्रसिद्ध साहित्यकार **शेक्सपीयर** ने संसार की बड़ी से बड़ी शान-शौकत को स्वास्थ्य के मुकाबले अत्यन्त छोटा माना है। **ग्रीक दार्शनिक प्लेटो** के अनुसार संसार की बड़ी से बड़ी सफलताएँ जिन पर व्यक्ति गर्व कर सकता है, स्वस्थ शरीर से ही प्राप्त होती हैं। **धन से संसार की हर वस्तु खरीदी जा सकती है किन्तु अच्छा स्वास्थ्य और चरित्र कुबेर के सम्पूर्ण कोष से भी नहीं खरीदा जा सकता।** सम्भवतः इसीलिए **प्रसिद्ध** विचारक टेम्पल ने कहा है कि यदि धनवान के पास स्वास्थ्य का धन नहीं है तो उसकी सम्पूर्ण धन-सम्पदा उसके लिए लानत है।

स्वास्थ्य की पूंजी

स्वस्थ शरीर हमारी सबसे बड़ी पूँजी है। इन अद्वितीय धन के सामने संसार के सभी धन महत्त्वहीन है। चेहरे पर हँसते हुए गुलाबों से बड़ा भी कोई धन है ? शेष सभी प्रकार की धन-सम्पदा तो इसी शरीर के माध्यम से ही प्राप्त होती है। शरीर का मूल्य उनसे पूछिए जिनका शरीर रोगों का अड्डा बना हुआ है, जो निरन्तर पाचक और कब्ज दूर करने वाली दवाओं को खोजते रहते हैं। शरीर का मूल्य

उनसे पूछिए जो प्रकृति माता के सहज वरदान 'नींद' के लिए तरसते हैं और गोलियों व इन्जेक्शनों के द्वारा जिन्हें नींद आती है। शरीर का मूल्य उनसे भी पूछिए जिनमें काम या परिश्रम करने की शक्ति भी शेष नहीं रह गई है और जो बाग में काम करते माली या खेत में फावड़ा चलाते मजदूर के चेहरों पर श्रम के मोतियों को देखकर, आह भरकर रह जाते हैं। घर-परिवार का भी इनके लिए कोई महत्त्व नहीं। पाश्चात्य विचारकों ने भी स्वस्थ शरीर की महत्ता "Health is Wealth" कहकर स्वीकार की है।

स्वस्थ शरीर मनुष्य का पहला सुख और सभी प्रकार के सुखों का आधार है। स्वस्थ मनुष्य ही संसार के सभी सुखों का उपभोग कर सकता है। रूखी-सूखी रोटी ही उसके लिए आनन्द का स्रोत बन जाती है, जबकि रोगी व्यक्ति के लिए संसार के सभी रुचिकर षटरस व्यंजन भी फीके हैं। परिश्रम में उसे आनन्द आता है और निद्रा देवी की गोद में वह परम शान्ति का अनुभव करता है। घर-परिवार उसके लिए स्वर्ग, और राष्ट्र और समाज उसके लिए आराध्य देवता है। वह नींद के लिए तरसता नहीं है, उसका मन कुंठाओं से त्रस्त नहीं रहता, उसका चेहरा तनाव की काली रेखाओं से वीभत्स नहीं रहता। **उसके चेहरे पर विहँसते गुलाब उसके जीवन का महाकाव्य लिखते हैं और उसके जीवन का मधुमास सृष्टि के कण-कण को अमृतदान करता है।** उसका स्वस्थ शरीर ही उसका आभूषण है, हर प्रकार के वस्त्र उस पर शोभते हैं। वह जीवन से रस लेता है, वह जीवन को रस देता है। सृष्टि को अबाध गति से चलाने वाली महान् रचनात्मक शक्ति—काम शक्ति उसके लिए आनन्द-स्रोत होती है, त्याग, समर्पण और प्रेम की उदात्त भावनाओं की सरिता, उसके हृदय में कल-कल छल-छल छलकती रहती है।

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। स्वस्थ मन-मस्तिष्क न केवल श्रेष्ठ मार्ग की ओर प्रवृत्त होता है, अपितु जीवन की जटिलताओं व प्रतिकूलताओं का भी अच्छी तरह से सामना कर सकता है। संकल्प शक्ति और आत्मविश्वास के दो अजेय हथियारों को लेकर, स्वस्थ मन जीवन संघर्ष में विजयी होता है। अंग्रेजी की उक्ति, "Sound mind in a Sound body" इसी सत्य का समर्थन करती है।

शरीर पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का साधन है

स्वस्थ शरीर सभी प्रकार की सिद्धियों और सफलताओं का द्वार ही नहीं सभी प्रकार की धार्मिक और आध्यात्मिक क्रियाओं का साधन भी है। अतः इसे स्वस्थ रखना आवश्यक है। प्रसिद्ध उक्ति 'शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्' से यह स्पष्ट है कि शरीर ही धर्म साधन का मूल स्रोत है अतः इसे प्रमाद मात्र से नष्ट नहीं करना चाहिए। ध्यान, धारणा, समाधि, तप, उपासना आदि समस्त प्रकार की यौगिक,

धार्मिक अथवा आध्यात्मिक क्रियाएँ स्वस्थ शरीर के द्वारा ही की जा सकती हैं। इसीलिए 'योग' में सबसे पहले आसन-प्रणायाम आदि के द्वारा शरीर का शोधन करते हैं और इसे स्वस्थ बनाते हैं।

केवल धर्म ही नही जीवन के अन्य पुरुषार्थ भी स्वस्थ शरीर से ही प्राप्त किए जा सकते हैं। अस्वस्थ और रोगी व्यक्ति को भार्या शत्रु के समान दिखाई देती है। वह न अर्थ कमा सकता है और न काम-सुख का आनन्द ले सकता है। इस प्रकार गृहस्थ जीवन उसके लिए नरक और जीवित शरीर शव बन जाता है। वास्तव से रोगी व्यक्ति दीन-दुनियाँ दोनों से चला जाता है। इसीलिए हमारे शास्त्रों में कहा गया है—

धर्मार्थकाममोक्षणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगास्तयापहर्तार: श्रेयसो जीवितस्य च ।।

अर्थात् धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का मूल आधार स्वस्थ शरीर ही है।

यह जान लेने के बाद कि स्वस्थ शरीर ही सभी प्रकार के सुखों का आधार है, आयु (जीवन) और शरीर से सम्बन्धित सभी पक्षों पर विचार कर लेना आवश्यक है। 'अय् गतौ' धातु से आयु शब्द की सिद्धि होती है। धात्वर्थ से स्पष्ट है कि जो दिन-रात अबाध गति से चलती रहे उसे आयु कहते हैं। हमारे आयुर्वेद मनीषियों ने मृत्यु के बाद पुनर्जन्म को भी आयु के अन्तर्गत माना है, इसीलिए आयुर्वेद में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तथा लौकिक जीवन से सम्बन्धित तथा पारलौकिक जीवन से सम्बन्धित सभी प्रकार के स्वास्थ्य के लिए एक श्रेष्ठ जीवन पद्धति विकसित की है।

दूसरे शब्दों में, जीवात्मा (पुरुष) तथा शरीर (प्रकृति) के संयोग की अवधि को आयु या जीवन कहते हैं। जब जीवात्मा का शरीर से विछोह हो जाता है, तब मनुष्य की मृत्यु मानी जाती है। शरीर जीव का आश्रय-स्थल है। यह आश्रय-स्थल जब तक स्वस्थ है, जर्जर नहीं हुआ है तभी तक जीव इसमें रहता है और मनुष्य को पुरुषार्थ चतुष्ट्य (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) करने का अवसर मिलता है—

शरीर किसे कहते हैं—सुखी और स्वस्थ रहने के उपायों पर प्रकाश डालने से पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि शरीर क्या है और वह किन मौलिक तत्वों से मिलकर तैयार हुआ है। इस सम्बन्ध में महर्षि सुश्रुत की व्याख्या दर्शनीय है—शुक्रशोणितं गर्भाशय-स्थमात्य-प्रकृति-विकार-संमूर्छितं 'गर्भ' इत्युच्यते। तं चेतनावस्थितं वायुर्विभाजित तेजएन पचति, आप: क्लेदयन्ति, पृथिवी संहन्ति, आकाशं विवधयति एवं विवर्धित: स यदा हस्त-पाद जिह्वा-घ्राण-कर्ण-नितम्बा दभिरगै रुपेतस्तदा 'शरीर' इति संज्ञा लभते।

अर्थात् गर्भाशय में शुक्र और शोणित जब आत्मा, प्रकृति और विकारों से मिलते हैं तो उसे गर्भ कहा जाता है। उस चेतनायुक्त गर्भ को वायु विभक्त करता है, तेज उसको पकाता है, जल उसको गीला करता है, पृथ्वी उसको संगठित करती है तथा आकाश उसको बढ़ाता है। इसी प्रकार बढ़ा हुआ गर्भ जब हाथ, पैर, जिह्वा, नासिका, कर्ण, नितम्ब आदि अंगों से युक्त होता है तो 'शरीर' संज्ञा को प्राप्त होता है। 'यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे' के अनुसार यह शरीर वैसा ही है, जैसा यह ब्रह्माण्ड। जैसा कि पीछे उल्लेख किया जा चुका है कि यह शरीर आठ चक्र (मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र, अनाहत चक्र, विशुद्ध चक्र, आज्ञा चक्र, ब्रह्मरन्ध्र और सहस्रार चक्र) और नव द्वारों (दो कान, दो आँखें, एक मुँह, दो नासिका छिद्र, एक गुदा और एक मूत्र मार्ग—इस प्रकार नौ द्वार) वाली अयोध्या पुरी है—

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पुरयोध्या। (अथर्व. **10-2-31**)

इस नौ द्वार वाले पिंजड़े में आत्मा रूपी पक्षी रहता है। यह आश्चर्य की बात है कि नौ द्वार होने पर भी यह उड़ता नहीं, निरन्तर चेताता है कि इस शरीर को स्वस्थ और शतक्रतु बनाओ या 'चेत रे गुमानी ये तन फेरि ना मिले, माया संग ना चले' के रूप में ज्ञान देता है।

पंच तत्वों के सम्मिश्रण से शरीर का निर्माण किस प्रकार होता है, आयुर्वेद शास्त्र में इसका विशद और सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन है। इसकी गूढ़ चर्चा में न जाकर इतना कहना उचित होगा कि तुलसी ने—

क्षिति जल पावक गगन समीरा।
पंच तत्व यह अधम शरीरा।।

—गाकर इस गूढ़-ज्ञान को भारत के जन-जन और घर-घर तक पहुँचा दिया है।

शरीर निर्माण के इन पांच घटकों का सन्तुलन में रहना आवश्यक है। इनके सन्तुलन से शरीर व इन्द्रियों का सन्तुलन तो रहता ही है, दीर्घायु या अल्पायु का होना भी इन्हीं के सन्तुलन पर निर्भर करता है।

इन पाँचों तत्वों के सन्तुलन एवं नियमन के लिए ही आयुर्वेदज्ञों ने त्रिस्तम्भों (वात-पित्त-कफ) की खोज की। इनके सम स्थिति में रहने से क्षिति, जल आदि पाँचों तत्व भी सन्तुलन की स्थिति में आ जाते हैं और मनुष्य स्वस्थ रहता है। इन का सन्तुलन ठीक न होने की दशा में व्यक्ति अनेक प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त हो जाता है और अन्त में **पंच महाभूतों का विघटन होकर सभी तत्व अपने मूल तत्वों में विलीन हो जाते हैं। यही व्यक्ति की मृत्यु है।**

अतः यह देव मन्दिर सुख, स्वास्थ्य और दीर्घायु को प्राप्त हो तथा सांसारिक सफलताओं और आध्यात्मिक सिद्धियों के प्रकाश से जगमगाये, इसके लिए इसे स्वस्थ रखने की आवश्यकता है। □

3

'स्व' में स्थिति ही स्वास्थ्य

आचार्य चतुरसेन ने 'आरोग्य शास्त्र' में लिखा है—स्वास्थ्य ठीक होने पर जीवन स्वर्ग की विभूति वन जाता है, और स्वास्थ्य ठीक न रहने पर जीवन नरक के समान दु:खदायी और भार रूप हो जाता है।" वास्तव में रोगी व्यक्ति द्वारा जीवन विताना अपना शव खुद ढोने के समान है। एक जीवन में अनेक वार यदि कोई मरता है तो वह है रोगी व्यक्ति—कभी रोग के कष्ट से, कभी सांसारिक सुखों से वंचित हो जाने के कारण तो कभी आत्मग्लानि से। रोगी व्यक्ति स्वयं तो दु:खी जीवन विताता ही है, अपने परिजनों पर भी वोझ वन जाता है। वस्तुत: इसीलिए विचारकों ने स्वास्थ्य को जीवन-महासागर में से निकलने वाले मोतियों में से एक ऐसा अनुपम मोती माना है, जिसकी चमक से जीवन की सभी क्रियायें प्राणवान वनी रहती हैं।

जिस स्वास्थ्य का हमारे जीवन में इतना अधिक महत्त्व है, वह स्वास्थ्य आखिर है क्या? इसके विषय में प्राचीन स्वास्थ्य शास्त्रियों से लेकर आधुनिक विचारकों तक सवने अपने विचार प्रकट किये हैं। सुश्रुत संहिता सूक्त 15–18 में स्वास्थ्य की वहुत सुन्दर परिभाषा दी है। इसके अनुसार शरीर, मन बुद्धि और आत्मा—सभी के स्वस्थ होने पर ही व्यक्ति स्वस्थ कहा जा सकता है। "शारीरिक रोगों की जड़ें मन, बुद्धि और आत्मा तक फैली हुई होती है और आत्मा, बुद्धि और मन के निर्मल होने पर शारीरिक रोग उसी प्रकार नष्ट हो जाते है, जैसे सूर्योदय होने पर रात का अंधेरा।"

ज्यों-ज्यों आधुनिक वैज्ञानिक रिसर्च हो रही है, सम्पूर्ण विश्व यह देखकर चमत्कृत हो रहा है कि आयुर्वेद महर्षियों द्वारा हजारों वर्ष पहले निकाले गये निष्कर्ष कितने ध्रुव सत्य हैं। आज सम्मोहन से चिकित्सा, सूर्य से चिकित्सा, प्रकृति से चिकित्सा, मनोवल का चिकित्सा क्षेत्र में प्रयोग, ध्यान से रोग निवारण, आध्यात्मिक चिकित्सा आदि अनेक प्रकार की वातें कहीं जा रही हैं। हमारे अथर्ववेद और इसके

उपवेद—आयुर्वेद में इन सब प्रकार की चिकित्सा का जितना सांगोपांग वर्णन मिलता है, वह अभूतपूर्व है ।

स्वस्थ कौन है—शरीर, मन, और आत्मा को सम्मिलित करते हुए सुश्रुताचार्य द्वारा दी गई स्वास्थ्य की परिभाषा द्रष्टव्य है—

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ।।—सु. सं. 15-48

अर्थात् जिस व्यक्ति के वात-पित्त-कफ तीनों दोष सम अवस्था में हैं, सभी तेरह अग्नियाँ (पंच महाभूतों–पृथ्वी जल, अग्नि, वायु और आकाश की पाँच अग्नि; सप्त-धातुओं—रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र की सात अग्नि और एक जठराग्नि—इस प्रकार तेरह अग्नियाँ ।) समान हों, रसरक्तादि धातुयें समदशा में हों (उदाहरण के लिए ऐसा न हो कि शरीर में रक्त की मात्रा कम हो और चर्वी या मेद वढ़ा हुआ हो ।) मल-मूत्र विसर्जन की सभी क्रियायें ठीक-ठीक हो रही हों और आत्मा, मन व इन्द्रियां प्रसन्न अवस्था में हों—ऐसे व्यक्ति को ही स्वस्थ कहा जा सकता है ।

महर्षि सुश्रुत की उक्त परिभाषा की व्याख्या यदि आधुनिक शब्दावली में करें तो स्वस्थ व्यक्ति उसे कहा जा सकता है—

1. जिसकी भूख-प्यास और मल-मूत्र की क्रिया ठीक हो;
2. जिसे गाढ़ी और शान्ति प्रदायक नींद आती हो;
3. जिसका मन उत्साह और प्रसन्नता से युक्त तथा चिन्ता, तनाव ईर्ष्या, क्रोधादि आवेशों से रहित हो;
4. जिसमें शारीरिक व मानसिक श्रम करने की समुचित क्षमता हो;
5. जिसकी इन्द्रियाँ अपने कार्यों को करने में समर्थ हों;
6. जिसकी आत्मा निर्मल और प्रभुचरणों में लीन हो तथा
7. जो ओजस्वी और तेजस्वी व्यक्तित्व का धनी हो ।

इस प्रकार के उत्तम और देवताओं को ललचाने वाले स्वास्थ्य की कामना किसे न होगी । तो आइये इस प्रकार के स्वास्थ्य पाने के सुनहरी आधारों पर विचार करें । चरक संहिता सूत्र. **5–103** में व्यक्ति को सावधान करते हुए लिखा है—

नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा ।
स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येषुवहितो भवत् ।।

अर्थात् जिस प्रकार नगर की रक्षा करने में नगर-रक्षक और रथ चलाने में सारथि सदा सावधान रहता है, इसी प्रकार बुद्धिमान पुरुष भी अपने शरीर को

स्वस्थ, निरोग और दीर्घजीवी बनाने के लिए आहार-विहार व आचार-विचार सम्बन्धी क्रियायें बुद्धिमानी पूर्वक करते हैं।

कठोपनिषद् का सूक्त है—

आत्मनं रथनि विद्ध शरीरं रथमेव तु।
बुद्धि तु सारथि विद्धमनः प्रग्रमेव च॥
इन्द्रियाणि हयनाहुर्विषय स्तेपुगोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनो युक्तं भोक्तेत्याहुर्मनोषिणः॥

अर्थात् शरीर एक रथ है, इस का स्वामी (रथी) जीवात्मा है, मोक्ष गन्तव्य स्थान है। दस इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं (जिनकी जीभ हर समय विषयों की ओर लपलपाती रहती है।); मन घोड़ों की लगाम है (मन अत्यन्त चंचल, महाबली एवं अंकुश न मानने वाला है—शरीर रूपी रथ को कहाँ का कहाँ ले जाकर पटक दे, भगवान ही रक्षक है।) जो बुद्धि रूपी सारथि के हाथों में हैं। इसलिये यह बुद्धि रूपी सारथि ही हमारे शरीर रूपी रथ का रक्षक है। इसकी थोड़ी सी भूल या लापरवाही मनुष्य के स्वस्थ रहने और कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने के सपने को चकनाचूर कर सकती है। इसलिए आयुर्वेद ने प्रज्ञापराध अर्थात् बुद्धि द्वारा की गई गलतियों को स्वास्थ्य का सबसे बड़ा शत्रु माना है।

स्वास्थ्य रक्षा के सुनहरी आधार

महर्षि वाग्भट ने स्वास्थ्य-रक्षा के सुनहरी नियमों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

नित्यं हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेक्त क्तः।
दाता समः सत्य परः क्षमावान् आप्तोपसेवी च भवत्यरोगः।

अर्थात् नित्य हितकारी आहार-विहार का सेवन करने वाला, सोच समझ कर काम करते वाला, विषय-वासनाओं में लीन न रहने वाला, दाता, समदर्शी, सत्यवक्ता क्षमाशील और श्रेष्ठ पुरुषों की संगति करने वाला पुरुष सदा स्वस्थ, निरोग और दीर्घजीवी होता है।

'स्वस्थ' शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। ये शब्द हैं—स्व+स्थ। अर्थात् 'स्व' में 'स्थिति' या स्व में स्थित होना। अब प्रश्न उठता है—कि मनुष्य के 'स्व' से क्या तात्पर्य है। मनुष्य से तात्पर्य केवल शरीर से नहीं है अपितु शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन सब के सामंजस्य का नाम मनुष्य का 'स्व' है। इस प्रकार मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का अपने वास्तविक और श्रेयस्कर स्थिति में रहना ही स्वास्थ्य है। इनमें से किसी एक अंग की भी उपेक्षा से आरोग्य प्राप्ति और कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करना दुराशा मात्र है। आगामी अध्यायों में हम स्वास्थ्य के स्वर्णिम आधारों का वर्णन करेंगे।□

4

शरीर को व्याधि मन्दिर न बनायें

रोग मानवता के सबसे बड़े शत्रु हैं और यह मनुष्य शरीर बड़ा दुर्लभ है, वार-वार नहीं मिलता। चाणक्य ने लिखा है—

पुनर्वितं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः-पुनः ॥

—चाणक्य नीति—14-3

अर्थात् धन, मित्र, पत्नी और भू-सम्पदा नष्ट होने या विछुड़ जाने पर पुनः मिल जाते हैं, किन्तु यह मनुष्य-शरीर वार-वार नहीं मिलता। तुलसीदास ने भी यही वात कही है—"बड़े भागु मानुस तनु पावा।" यह 'अमोल मानुस तन' कौड़ियों के मोल व्यर्थ न चला जाये, इसके लिए इसे स्वस्थ रखना नितान्त आवश्यक है। रोग मनुष्य से उसका सब कुछ छीन लेता है। सुख, शान्ति, प्रसन्नता और आनन्द क्या होते हैं ? किसी रोगी व्यक्ति से पूछिए, वह तड़प कर रह जायेगा। इसलिए आवश्यकता इस वात की है कि सावधान होकर रोगों से बचने का प्रयत्न किया जाये। नीति कहती है कि रोग, शत्रु और अग्नि—ये तीनों विनाश के कारण होते हैं, इसलिए बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि समय रहते वह इनसे अपनी रक्षा करे। शास्त्र का कथन है—

अणुर्हि प्रथमं भूत्वारोगः पश्चाद्विवर्धते।
स जात मूलो मुष्णाति बलमायुश्च दुर्मतेः ॥

—चरक संहिता सूत्र—11-57

अर्थात् प्रारम्भ में रोग अणु रूप में (शीघ्र अच्छा होने वाला) उत्पन्न होता है, किन्तु मूर्ख मनुष्य द्वारा ध्यान न दिये जाने पर वह वढ़कर भयंकर अवस्था को प्राप्त होता है और मनुष्य के वल और आयु को नष्ट कर देता है। इसी अध्याय में आगे कहा गया है कि ऐसा व्यक्ति भयंकर रोग से तड़पते हुए अपने पुत्रों, पत्नी, मित्रों और सम्वन्धियों से कहता है कि अब मुझे वहुत कष्ट है, मेरा सम्पूर्ण धन ले

किसी अच्छे वैद्य को बुलाकर लाओ। इसलिए उचित यही है कि रोग का प्रारम्भ होते ही सावधान हो जाना चाहिए। चरकाचार्य लिखते हैं—

तस्मात् प्रागेव रोगेभ्यो रोगेषु तरुणेषु वा।
भेषजैः प्रतिकुर्वीत य इच्छेत् सुखमात्मनः ॥

—वही—11-62

अर्थात् रोग उत्पन्न होते ही अपना कल्याण चाहने वाले बुद्धिमान पुरुष को उचित औषधि से रोग को दूर कर देना चाहिए।

शरीर को व्याधि मन्दिर न बनायें

मनुष्य का शरीर देव मन्दिर है। इसके कण-कण में दिव्य तत्वों का वास है। परमात्मा का प्रतिनिधि जीवात्मा इसमें निवास करता है। यह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन है। सम्पूर्ण साँसारिक सफलताओं और आध्यात्मिक सिद्धियों का प्रवेश द्वार यह शरीर ही है। **देवता इसकी रक्षा करते हैं, प्रकृति माता इसका पालन-पोषण करती है, नीर-क्षीर—विवेक जाग्रत करने वाली बुद्धि इसकी देखभाल करती है, शिव संकल्प करने वाला मन इसे कर्म-पथ की ओर अग्रसर करता है—ऐसा महान् शक्तिशाली शरीर रोगों के सामने पराजित हो कर दीन-हीन अवस्था को प्राप्त हो, यह सचमुच आश्चर्य का विषय है।** किन्तु इस प्रकार के अतुलित सामर्थ्यशाली शरीर का विनाश करने के लिए शत्रुओं की भी कमी नहीं है। ईश्वर का अंश होते हुए भी यह जीव माया के अधीन हो जाता है; बुद्धि भ्रमित हो जाती है; शिव संकल्प करने वाला मन—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर के चंगुल में फंस जाता है; पंचतत्त्वों से निर्मित यह शरीर प्रकृति के इन पाँचों तत्त्वों से ही अपना नाता तोड़ लेना चाहता है—इन सब का परिणाम होता है कि अजेय अस्त्र-शस्त्र धारी और अभेद्य कवच से युक्त यह शरीर जीवन-संग्राम में पराजित होकर रोगों के सामने अपने हथियार डाल देता है—देव मन्दिर भी व्याधि मन्दिर बन जाता है।

यह शरीर व्याधि मन्दिर न बनने पाये, इसके लिए रोगों के कारणों का सम्पूर्ण विज्ञान समझना आवश्यक है। आयुर्वेद में रोगों का जितना सूक्ष्म और विशद वर्णन मिलता है, वह संसार के सभी चिकित्सा शास्त्रों का मार्गदर्शन करने वाला है।

रोगों के प्रमुख कारण—

1. आत्म विस्मृति—आज मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप को पूरी तरह भूल चुका है। भारतीय ऋषियों ने अहम् ब्रह्मास्मि अर्थात् 'मैं ब्रह्म हूं' का अमर मन्त्र देकर उसे चिर जाग्रत रहने का सन्देश दिया था किन्तु आज वह स्वयं ब्रह्म होकर भी

आत्मा और परमात्मा के सामने प्रश्न चिह्न लगा रहा है—उसके अस्तित्व को नकार रहा है। वह अपने जीवन को ईश-चरणों में समर्पित न कर भोगेच्छाओं की पूर्ति और इन्द्रिय-विलास के साधनों में लगा रहा है। धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष—जीवन के इन चार पुरुपार्थों में से वह मात्र अर्थ और काम के पीछे दौड़ रहा है। धर्म जीवन रूपी वृक्ष की जड़ है और मोक्ष इसका फल, किन्तु इन दोनों की कल्पना तक करना उसे वेकार लगने लगा है। ऐसी अवस्था में वह संसार-सागर में काम क्रोधादिक के थपेड़े खाकर इधर-उधर मारा-मारा फिर रहा है। यह आत्मविस्मृति ही उससे प्रज्ञापराध करा रही है। आयुर्वेद में इस प्रज्ञापराध को ही रोगों का सवसे महत्त्वपूर्ण कारण माना है। इसकी विशद व्याख्या आगे की जायेगी।

2. मातृ द्रोही प्रवृत्ति—प्रकृति-पुत्र मानव आज अपनी माता से ही द्रोह कर वैठा है। उसका शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु तत्त्वों से वना है। जिन तत्वों का समावेश उसके कण-कण में है, आज वह उन्हीं से दूर भागता चला जा रहा है। यह पृथ्वी अन्न, फल-फूलादि से हमारा भरण-पोषण करने वाली माता ही नहीं है, अपितु हमारे शरीर के लिए आवश्यक मधुर, कटु, अम्ल, तिक्त, लवण और कषाय—इन छः रसों को प्रदान करने वाली 'रसा' भी है। मिट्टी की सर्वरोग हारी शक्ति पर तो प्राकृतिक चिकित्साशास्त्री व पाश्चात्य चिकित्सक भी मुग्ध हैं। किन्तु वह अपनी इस माता को ही उजाड़ रहा है। वायु उसका प्राण है। किन्तु नंगे पैर पृथ्वी तत्व का अपने आप में समावेश करते हुए शुद्ध वायु में घूमना उसके लिए अशिष्टता सूचक वनता जा रहा है। वेदों ने सूर्य को सम्पूर्ण चराचर जगत का प्रणात्मा माना है—'सूर्य आत्मा जगस्तस्थुषश्च।' किन्तु सूर्य (अग्नि तत्व) का समुचित उपयोग करने के लिए आज उसके पास समय नहीं है। जल को जीवन कहा है, किन्तु जल के विविध प्रयोगों के द्वारा स्वस्थ और दीर्घजीवी वनने की वात वह भूल चुका है। आकाश तत्त्व का शरीर के लिए क्या महत्त्व है, शायद वड़े से वड़े चिकित्सक भी इस बात को नहीं जानते। इसलिए उसके शरीर में गन्दगी, विजातीय द्रव्य, चर्वी कोलेस्टरोल इस कदर जड़ जमा लेते है कि मनुष्य ठीक से न साँस ले पाता है (दमादि की दशा में) और न अधोमार्ग से वायु ही शुद्ध हो पाती है। यहाँ तक कि इनसे आकाश तत्व असन्तुलित हो जाता है और रक्त का संचार न हो कर 'हार्ट अटैक' हो जाता है। यह सव प्रकृति से दूर भागने और पंच तत्वों का रहस्य न समझने के कारण होता है। केवल इतना ही नहीं, इन पंचतत्त्वों का सम्वन्ध वातपित्त कफ इन त्रिधातुओं से भी है। जव तक पंचतत्त्वों में सन्तुलन रहेगा तभी तक त्रिधातुयें सन्तुलित रह सकेंगी और मनुष्य स्वस्थ रहेगा। इसके अलावा पंचतत्त्वों का सम्वन्ध षटरसों से होता है। पंचतत्त्व, त्रिदोष और षटरस इन सवके पारस्परिक सम्वन्धों की व्याख्या हमारे ऋषियों ने इस प्रकार की है—

कफ प्रकोप—जल और पृथ्वी तत्त्व से मधुर रस और कफ की उत्पत्ति होती है। अतः मधुर रस कफ बढ़ाता है। इसी प्रकार अम्ल रस पृथ्वी के सानिध्य से और लवण रस जल के सानिध्य से कफ बढ़ाता है।

पित्त प्रकोप—अम्ल रस, लवण रस व कटु रस अग्नि के सानिध्य से पित्त को बढ़ाता है।

वात प्रकोप—कटु रस, तिक्त रस व कषाय रस वायु के सानिध्य से तथा तिक्त रस आकाश के सानिध्य से वात प्रकोप कराता है।

इस प्रकार पंचतत्व, त्रिधातुएं और षटरस दोषों को प्रकुपित कर रोगों का कारण बनते हैं।

दोषों का शमन

वात शमन—जल व पृथ्वी तत्त्व रस में मधुर व स्वभाव में भारी व स्थित होने के कारण वायु का शमन करते हैं। अम्ल रस में पृथ्वी भारी व अग्नि उष्ण है अतः यह वात शमन करता है। इसी प्रकार लवण रस जल व पृथ्वी तत्वों के सानिध्य से वात शमन करता है।

कफ शमन—कटु रस वायु व अग्नि के संयोग से रूक्ष और उष्ण होकर कफ शमन कराता तिक्त रस वायु व आकाश के संयोग से रूक्ष व हल्का होकर तथा कषाय रस वायु व पृथ्वी तत्व के संयोग से रूखा, हल्का व विशद होकर कफ शमन करता है।

पित्त शमन—मधुर रस जल व पृथ्वी तत्व के संयोग से भारी शीत व स्थिर होकर, तिक्त रस वायु व आकाश तत्व के संयोग से रूक्ष होकर तथा कषाय रस वायु व पृथ्वी के संयोग से रूक्ष व शीतल होकर पित्त का शमन कराते हैं।

वास्तव में पंचतत्व त्रिधातु व षटरस के पारस्परिक सम्बन्ध के दोष प्रकुपित होकर रोगोत्पत्ति होने एवं दोष शमित होकर स्वस्थ होने के इस वैज्ञानिक विवेचन को देखकर दाँतो तले अंगुली दबानी पड़ती है।

इस प्रकार प्रकृति व इसके विविध तत्वों के साथ मनुष्य का जितना साहचर्य रहेगा, मनुष्य स्वस्थ रहेगा अन्यथा भगवान धन्वन्तरि भी रोगों से उसकी रक्षा नहीं कर पायेंगे।

3. शरीर स्थित गन्दगी - अष्टांग हृदय निदान 1–12 का सूत्र है—**सर्वेषामेव रोगाणाम् निदानं कुपितामलाः** अर्थात् शरीर में इकट्ठा हुआ प्रकुपित मल ही सब रोगों का कारण है। अन्न, जल, वायु आदि के रूप में हम जो कुछ सेवन करते हैं, उसके सार रूप या उपयोगी भाग को शरीर ग्रहण कर लेता है। रस, रक्त, माँस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य, ओज, तेज आदि व्यक्ति के द्वारा सेवन किये गये अन्नादि से

ही वनते हैं। इसका अनुपयोगी और हानिकारक रूप मल, मूत्र, पसीना, कार्वन डाई-आक्साइड, कीचड़, कफ, आँव आदि के रूप में वाहर निकलता रहता है। जव मनुष्य की खान-पान व विहार-विचार की गलतियों से गन्दगी शरीर से वाहर नहीं निकल पाती और वहाँ इकट्ठी होती रहती है तो नाना प्रकार की वीमारियाँ पैदा होने लगती हैं। वास्तव में प्रकृति या शरीर की शक्ति जमा हुई गन्दगी को निकालना चाहती है। वुखार, जुखाम, दस्त, उल्टी, पेचिश, दमा आदि वास्तव में रोग न होकर प्रकृति द्वारा शरीर की गन्दगी निकालने का एक प्रयास मात्र है।

जव मनुष्य प्रकृति के इस कार्य में वाधा डालता है, या इस प्रकार की दवाओं का सेवन करता है, जो गन्दगी को वाहर निकालने के प्रकृति के कार्य में सहायक न वनकर गन्दगी को अन्दर ही रोके रखती है, तो रोग शनै-शनै पुराना पड़ता जाता है और कालान्तर में और भी भयानक हो जाता है। रोगों से लड़ने की अथवा गन्दगी को वाहर निकालने की शरीर की शक्ति भी धीरे-धीरे कमजोर पड़ती जाती है और उसका स्वस्थ होने का सपना अन्ततः चूर हो जाता है। उदाहरण के लिए दमा, पुराना जुखाम, खाँसी व सिरदर्द ऐसे रोग हैं जो कफ को वाहर न निकलने देकर अन्दर ही रोक देने के फलस्वरूप पैदा होते हैं। गठिया, आमवात, पेचिश आदि रोग भी इसी प्रकार के हैं। प्राकृतिक चिकित्साशास्त्रियों का तो यह निश्चित मत है कि प्रायः सभी पुराने रोग गन्दगी या विजातीय द्रव्यों को अन्दर ही रोक दिये जाने से होते हैं। अनुमान से भी यही वात सिद्ध होती है। एक-दो दिन भी शौच साफ न हो या हवा शुद्ध न हो तो वुरा हाल हो जाता है। कल्पना करें ऐसे व्यक्तियों को जिनका मलाशय गन्दगी से भरा रहता है और वह गन्दगी धीरे-धीरे रस-रक्त आदि सभी धातुओं को विकृत कर देती है। दूषित रक्त और गन्दी गैसें शरीर के जिस अंग के सम्पर्क में आती हैं, उसे भी कमजोर और रोगी वना देती हैं। **यहाँ यह वात भी उल्लेखनीय है कि रोग के कीटाणु भी उसी जगह अपना अड्डा जमाते हैं जहाँ गन्दगी होती है। उनकी वंशवृद्धि भी ऐसे ही स्थान पर होती है।** अतः एलोपैथी का यह मत भी सत्य है कि कीटाणु रोगों के जनक होते हैं। आयुर्वेद कीटाणुओं को रोगों का नैमेत्तिक कारण मानता है। आयुर्वेद की दृष्टि में रोगों का मूल कारण प्रज्ञापराध ही है। शेष सभी कारणों का समावेश इसमें हो जाता है।

4. अम्ल-क्षार का असन्तुलन— मनुष्य जो भोजन करता है, उनमें से कुछ अम्ल अधिक वनाते हैं और कुछ क्षार अधिक। आजकल प्रायः सभी मनुष्य अम्ल वढ़ाने वाला भोजन करते हैं। फलस्वरूप शरीर में अम्ल वढ़ जाता है और क्षार की कमी होने लगती है। इससे शरीर में यूरिक एसिड नामक तत्व का संग्रह होने लगता है। इसकी मात्रा वढ़ जाने पर शरीर की चुस्ती-स्फूर्ति गायव हो जाती है।

आलस्य बढ़ने लगता है, जीवनीय शक्ति घट जाती है और शरीर रोगग्रस्त होने लगता है।

5. अधारणीय वेगों को रोकना—आयुर्वेद ने अधारणीय वेगों की संख्या तेरह बताई है। मल, मूत्र, शुक्र, अपानवायु वमन, छींक, डकार, जंभाई, भूख, प्यास, आँसू, नींद और श्रम से उत्पन्न श्वास की गति। इन वेगों को रोकने से मनुष्य रोग ग्रस्त हो जाता है। इनको रोकने से उदावर्त्त रोग हो जाता है। सुश्रुताचार्य कहते हैं—

वातविण्मूत्रजृम्भाऽश्रुक्षवोद्गार व मीन्द्रियैः।
व्याहन्यमानैरुदितैरुदावर्तो निरुच्यते ॥

—सु. सं. उत्तर 55·4

अर्थात् अपानवायु, मल, मूत्र, जम्भाई, आँसू, छींक, डकार, वमन और शुक्र के वेग को रोकने से उदावर्त होता है। अर्थात् वायु, मल और मूत्रादि का भ्रमण ऊपर की ओर हो जाता है। मूत्र का वेग रोकने से मूत्राशय में दर्द होना, पेशाब में रुकावट होना, सिरदर्द तथा पेड़ू में सूजन व दर्द आदि रोग हो जाते हैं। मल का वेग रोकने से पक्वाशय व सिर में दर्द, अपानवायु व मल रुक-रुक कर होना, पिण्डलियों में दर्द आदि रोग होते हैं। अपानवायु के वेग को रोकने से पेटदर्द, सिरदर्द, मल-मूत्र में रुकावट आदि रोग होते हैं। वमन का वेग सूजन, अरुचि, ज्वर, पाण्डु आदि रोगों को जन्म देता है। छींक का वेग रोकने से सिरदर्द, चेहरे का लकवा, आधासीसी आदि रोग होते हैं। डकार का वेग रोकना हिचकी, अरुचि, हृदय कम्प आदि रोगों को जन्म देता है। आँसूओं का वेग रोकने से नेत्र रोग, हृदय रोग, सिर में चक्कर, पागलपन आदि रोग हो सकते हैं। इसी प्रकार भूख, प्यास, जम्भाई और श्वास के वेगों को रोकने से भी नाना प्रकार की व्याधियों को जन्म मिल जाता है।

6. धारणीय वेगों को न रोकना—जिस प्रकार अधारणीय वेगों को रोकने से रोग होते हैं, उसी प्रकार धारणीय वेगों को न रोकने से रोग होते हैं। चरकाचार्य कहते हैं—

सुखार्थाः सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः।
ज्ञानाज्ञान विशेषात्तु मार्गामार्ग प्रवृत्तयः ॥

—च. सं. सूत्र 28·35

अर्थात् सभी प्राणी सुख की कामना करते हैं। और उनकी प्रवृत्ति भी सुख पाने की ओर रहती है। किन्तु ज्ञानी जन करणीय कार्यों को करके सुख पाते हैं और अज्ञानी न करने योग्य कार्य करने से दुःख के भागी होते हैं। काम, क्रोध, लोभ, अहंकार, ईर्ष्या, निर्लज्जता, भय, पर द्रव्य इच्छा, आदि वेगों को आयुर्वेद के अनुसार

सदैव रोकना चाहिए। इन वेगों को न रोकने से मानस रोग पैदा होते हैं। और व्यक्ति प्रज्ञापराध करने लगता है। फलस्वरूप अनेक शारीरिक व मानसिक रोगों के चंगुल में फंस जाता है। इसीलिए आयुर्वेद में प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाङ्ग हृदय का कथन हैं—'धारयेत्तु सदावेगान् हितैषी प्रेत्य चेह च' अर्थात् इस लोक और परलोक में सुख चाहने वाले को रोकने योग्य मानस वेगों को अवश्य रोकना चाहिए। भगवान कृष्ण का भी कथन है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन:।
काम: क्रोधस्तथा लोभस्त स्मादेतत्त्रयंत्यजेत ।।

—गीता 16·21

अर्थात् काम, क्रोध और लोभ ये तीन प्रकार के नरक के द्वार हैं जो आत्मा को पतन की ओर ले जाते हैं। अत: तीनों का त्याग करना चाहिए।

7. धातुओं की विषमता—आयुर्वेद के महान आचार्य महर्षि चरक ने कहा है—

विकारो धातुवैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञकरारोग्यं विकारो दुखमेव च ।।

—च. सं. सूत्र 9/4

अर्थात् धातुओं की विषम स्थिति या असन्तुलन रोग का कारण है और उनकी साम्यावस्था स्वास्थ्य है। एक अन्य स्थान पर भी कहा गया है—"' रोगस्तु दोष वैषम्यस्" अर्थात् दोषों की विषमता ही रोगों का कारण है। शरीर में तीन धातुएँ हैं—वात, पित्त और कफ। ये शरीर को धारण करती हैं। इसलिए इनको धातु कहा जाता है, जैसा कि चरक संहिता में कहा गया है—'धारणाद् धातव: स्मृता'। क्योंकि इनकी विषमता से रोग पैदा होते हैं अत: इनको दोष कहा जाता है, जैसा कि स्पष्ट है—'शरीर दूषणात् दोषा:। आयुर्वेद का सम्पूर्ण आधार इसी त्रिदोष सिद्धान्त पर आधारित है, अत: इसे विस्तार से समझना आवश्यक है।

चरकाचार्य लिखते हैं कि वात-पित्त और कफ ये शारीरिक दोष हैं और रज और तम ये मानस दोष हैं। जैसा कि स्पष्ट है—

वायु: पित्तं कफश्चोक्त: शारीरो दोष संग्रह:।
मानस: पुनरुद्दिष्टो रजश्चतम एव च ।।

—च. सं. सूत्र 1–57

सात्विक मनोवृत्ति वाला व्यक्ति शरीरिक व मानसिक रूप से सदैव स्वस्थ रहता है, जबकि राजसिक और तामसिक वृत्ति के व्यक्ति शारीरिक व मानसिक रोगों से सदैव घिरे रहते हैं। भगवान कृष्ण ने गीता में रज और तम के बारे में लिखा है—

लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ।।

—14–12

अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ।।

—14–13

अर्थात् हे अर्जुन, रजोगुण बढ़ने पर लोभ, स्वार्थवुद्धि, अशान्ति और विषय भोगों की लालसा बढ़ जाती है । तथा तमोगुण बढ़ने पर करणीय कर्त्तव्यों में अप्रवृत्ति, प्रमाद, व्यर्थ चेष्टाएं आदि प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं । इन वृत्तियों के कारण ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ. मोह, मद, मत्सर आदि दोष मन, बुद्धि और आत्मा की सारी श्रेष्ठता को नष्ट कर देते हैं । रजोगुणी और तमोगुणी मनुष्य अनेक प्रकार के प्रज्ञापराध करता है । इससे उसके आहार-विहार और आचार-विचारों में विकृति आ जाती है । इसके फलवसरूप दोप प्रकुपित होकर रोग उत्पन्न कर देते हैं ।

चरकसंहिताकार ने इन दोपों के प्रकोप के लिए मुख्य कारण प्रज्ञापराध को माना है । चरक संहिता शरीर स्थान अध्याय 1 में स्पष्टतः कहा गया है—

धी धृति स्मृति विभ्रष्टः कर्मयत कुरुतेऽशुभम् ।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोष प्रकोपणम् ।।

अर्थात् धी (वुद्धि) धृति (धैर्य) तथा स्मृति के नष्ट हो जाने पर मनुष्य जो अशुभ कर्म करता है उसे प्रज्ञापराध कहते हैं । प्रज्ञापराध से शरीर व मन के सभी दोप कुपित होते हैं । इसी वात को अधिक स्पष्ट करने के लिए चरकाचार्य कहते हैं—

कालवुद्धिन्द्रियार्थतां योगोमिथ्या न चाति च ।
द्वयाश्रंणां व्याधीनां त्रिविधो हेतु संग्रहः ।।

—च. सू. अ. 1

अर्थात् काल, बुद्धि और इन्द्रियों के विपयों का अयोग, अतियोग और मिथ्यायोग ये तीन व्याधियों के मुख्य कारण हैं । रोगों के कारणों को समझने के लिए इन तीनों को समझना वहुत आवश्यक है, क्योंकि इनसे ही त्रिदोष-वात-पित्त-कफ कुपित होते हैं और शरीर रोगग्रस्त हो जाता है ।

8. काल का अयोग, अतियोग और मिथ्यायोग—काल से तात्पर्य समय से है । इसे दो भागों में वांटा जा सकता है—**प्राकृतिक योगायोग और मनुष्यकृत योगायोग** । जब प्रकृति समय या ऋतुओं के अनुसार अपना व्यवहार नहीं करती तो सर्वत्र विपमता का असन्तुलन पैदा हो जाता है । इसका प्रभाव शरीर पर भी पड़ता है । फलस्वरूप दोप प्रकुपित होकर रोग हो जाते हैं । उदाहरण के लिए शीत ऋतु में

ठण्ड बिल्कुल न पड़ना या बहुत कम पड़ना काल का प्राकृतिक अयोग या हीनयोग है; अत्यधिक मात्रा में ठण्ड पड़ना अतियोग है, और गर्मी या बरसात का होना मिथ्यायोग है। इसी प्रकार अन्य ऋतुओं के बारे में भी है। यह स्थिति रोग पैदा करने वाली होती है। यह ऋतुचक्र यदि अपने स्वाभाविक योगानुसार चले तो आरोग्य देने वाला होता है। इस पर यद्यपि मनुष्य का वश नहीं है, किन्तु ऋतु और मौसम के अनुसार वह अपने आहार-विहार में परिवर्तन कर रोगों से बच सकता है। चरकाचार्य ने लिखा है—

ऋतुनां लक्षण ज्ञात्वात तस्व द्विधामाचरेत

अर्थात् ऋतुओं के लक्षण जानकर तदानुसार आचारण करने से व्यक्ति स्वस्थ व सुखी रह सकता है। "ऋतुओं के गर्भ में छिपा है स्वास्थ्य का अमृत कलश" नामक लेख में इस सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

काल के मनुष्यकृत योगायोग से तात्पर्य यह है कि दिनचर्या व ऋतुचर्या के विज्ञान और लक्षणों के अनुसार आहार-विहार न रखा जाये तो वात-पित्तादि में विषमता आकर रोग पैदा हो जाते हैं। उदाहरण के लिए शीतकाल में अधिक शीत-कारी आहार-विहार करना या अधिक शीत में रहना इस ऋतु का अतियोग है। शीत के बचाव के लिए भारी प्रयत्न करना—हर समय कमरों में हीटर लगाये रखना, अधिक मात्रा में हमेशा गर्म कपड़े पहने रहना, अपने आप पर शीत का तनिक भी प्रभाव न पड़ने देना शीतकाल का हीनयोग हैं। शीतकाल में ग्रीष्म ऋतु जैसा आहार-विहार करना मिथ्ययोग है। इसी प्रकार सभी ऋतुओं के योगायोग हैं। काल के अनुसार सम्यक् योग स्वास्थ्य के लिए उपयोगी और हीनयोग, अतियोग व मिथ्यायोग रोग पैदा करने वाले हैं।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि काल या समय के अनुसार भी दोष प्रकुपित होते हैं। जैसे बाल्यावस्था में कफ का प्रकोप, युवावस्था में पित्त का प्रकोप और वृद्धावस्था में वात का प्रकोप होता है। इसी प्रकार दिन के प्रथम प्रहर में वात का दोपहर में पित्त का और रात्रि को कफ का जोर रहता है। ऋतुओं के अनुसार भी इन दोषों का संचय, प्रकोप और शमन होता है। जैसा कि निम्नलिखित सारिणी में स्पष्ट किया गया है।

दोष	संचय	प्रकोप	शमन
वात	ग्रीष्मऋतु	वर्षाऋतु	शरदऋतु
पित्त	वर्षाऋतु	शरदऋतु	हेमन्तऋतु
कफ	हेमन्तऋतु	वसन्तऋतु	ग्रीष्मऋतु

काल के योगायोग के सम्बन्ध में अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह है कि [illegible] (समय) जिस कार्य के लिए निश्चित है, उस समय उस कार्य को न कर

है, अधिक मात्रा में करना अतियोग है, और उससे उल्टा करना मिथ्यायोग है। उदाहरण के लिए सुबह का समय शौचादि, व्यायाम, ध्यान आदि के लिए सबसे अधिक उपयुक्त है। इस समय ये क्रियायें न करना काल का अयोग या हीनयोग है। अधिक करना अतियोग है और विपरीत क्रियायें (जैसे सुबह उठते ही भोजन फिर स्नान आदि) करना मिथ्या योग है। इनसे रोग उत्पन्न होता है।

इस प्रकार काल या समय में ऋतुचर्या, दिनचर्या और आयुचर्या को शामिल किया गया है। इसके सम्यक् योग आरोग्यप्रद और हीनयोग, अतियोग और मिथ्यायोग रोग कारक हैं। सब काल के हाथ के खिलौने हैं। 'कालः पुनः परिणाम उच्यते' के अनुसार काल ही शुभ या अशुभ फल देने वाला है।

9. **इन्द्रियों का हीनयोग, अतियोग, व मिथ्यायोग**—चरकसंहिताकार ने **असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग** अर्थात् इन्द्रियों का अपने-अपने विषयों में अयोग, अतियोग या मिथ्यायोग में प्रवृत्त होने को रोग का कारण माना है। ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच है। चक्षु (देखना), श्रोत (सुनना), घ्राण (सूंघना), रसन (स्वाद-चखना) और स्पर्शन (स्पर्श का अनुभव करना)—आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा ये इन्द्रियाँ मन के सहयोग से अपने-अपने विषयों (कामों) की ओर दौड़ती रहती हैं। संयमी और ज्ञानीजन इनका सम्यक् उपयोग करते हैं। किन्तु जिनकी बुद्धि, धैर्य और स्मृति नष्ट हो जाती है, वे ऐसा नहीं कर पाते और ऐसे लोगों को ही रोग घेर लेते हैं। एक उदाहरण के द्वारा इसे स्पष्ट किया जा सकता है। कम प्रकाश में या कमजोर दृष्टि होने पर भी छोटे अक्षर पढ़ना आँखों की हीनयोग है। अत्यधिक तीव्र प्रकाश, टी. वी. सिनेमा, वैल्डिंग की अग्नि आदि को अधिक देखना आँखों का अतियोग है। भयानक, अवांछनीय, वीभत्स, विकृत आदि दृश्य देखना आँखों का मिथ्यायोग है। इसी प्रकार जीभ का उदाहरण ले सकते हैं। रस छः प्रकार के होते हैं—मधुर (मीठा), कटु (कडुआ), तिक्त (तीखा), लवण (नमक), अम्ल (खट्टा) और कषाय (कसैला)। किसी विशेप रस का या अधिक रसों का अधिक मात्रा में बार-बार सेवन करना या स्वादिष्ट वस्तुओं का अधिक सेवन जीभ का अतियोग है। किसी रस विशेष या अधिक रसों को आवश्यकता से कम सेवन करना हीनयोग है। माँस, मदिरा, वासी, जूठे, सड़े-गले पदार्थों का सेवन करना मिथ्यायोग है। इसी प्रकार विरुद्धपदार्थ खाना (घी-शहद समान मात्रा में मिलाकर) जीभ का मिथ्यायोग है। प्रायः सात्विक आहार और यदा-कदा राजसिक आहार करना जीभ का सम्यक् प्रयोग है। सम्यक् योग स्वास्थ्य कारक और शेष सभी योग रोग कारक हैं। अठारह प्रकार के विरुद्ध भोजन का वर्णन भोजन प्रकरण में दिया गया है।

इसी प्रकार शेष इन्द्रियों का हीनयोग, अतियोग व मिथ्यायोग रोग पैदा करते हैं।

10. मन का योगायोग—मन का कार्य चिन्तन करना या मनोरथ (इच्छाएं) करना है। **मन यदि बुद्धि के अधीन रहकर चिन्तन करता है तो यह स्थिति मन की स्वस्थ अवस्था या सम्यक् योग है।** इसके विपरीत हीनयोग अतियोग या मिथ्यायोग की स्थिति है। ये स्थितियाँ रोगकारक है। आयुर्वेद ने भी यही कहा है—

मनसस्तु चिन्त्यमर्थः। तत्र मानसो, मनोबुद्धेश्च त एव
समानाति मिथ्यायोगः प्रकृति-विकृति हेतवो भवन्ति ॥

—च. सं. सूत्र 8–16

चिन्तन, मनन, संकल्प आदि मानस कार्यों को विलकुल न करना, लापरवाही, उदासीनता या 'कोउ नृप होहु हमहि का हानी' जैसी मनोदशा मन का हीनयोग है। इन कार्यों की ओर मन की अधिक प्रवृत्ति अतियोग है। आयुर्वेद की परिभाषा के अनुसार आवश्यकता से अधिक चिन्तन,-मनन को चिन्ता कहा गया है और चिन्ता रोग कारक तो है ही, यह मनुष्य को प्रतिक्षण जलाने वाली है। लोभ, शोक, भय, क्रोध, ईर्ष्या, अहंकार, पूज्य व्यक्तियों को अपूज्य और अपूज्य व्यक्तियों को पूज्य समझना मन का मिथ्यायोग है। इन सबके कारण मानसिक रोग तो पैदा होते ही हैं, इनका प्रभाव शरीर पर भी पड़ता है और दोष प्रकुपित होकर शारीरिक रोग भी हो जाते हैं। चिन्ता, शोक, तनाव, भ्रम, स्नायविक दुर्वलता, नर्वस ब्रेक डाउन, घबराहट, अपच, कब्ज, अनिद्रा, उच्चरक्तचाप, हृदयरोग, वीर्यविकार, हिस्टीरिया, चक्कर आना, पागलपन, मासिक धर्म में अनियमितता आदि विकार मन के मिथ्यायोग के परिणाम है।

11. कर्म का योगायोग—कर्म करने के तीन साधन हैं—मन, वचन और शरीर। आयुर्वेद ने कर्म की परिभाषा करते हुए कहा है कि मन, वचन और शरीर की प्रवृत्ति को कर्म कहते हैं। जैसा कि स्पष्ट है—

कर्म वाङ्ग मनः शरीर प्रवृत्तिः।

—च. सू. अ. 11–39

इन तीनों की या इनमें से किसी एक की चेष्टा या प्रवृत्ति में अति की जायेगी तो रोग पैदा होंगे। इसीलिए हमारे नीतिशास्त्रों में भी स्पष्ट उद्घोष है कि **अति सर्वत्र वर्जयेत्** अर्थात् अति करना सब जगह अनिष्टकारी होता है। अति अचार को हमारे यहाँ अत्याचार की संज्ञा दी है। यदि मन अधिक चिन्तन करेगा। वाणी जन्य कार्य (वोलना) अधिक किये जायेंगे या शारीरिक कार्य (श्रम, व्यायाम, शारीरिक क्रियाएं व चेष्टायें) अधिक किये जायेंगे तो दोष प्रकुपित होकर रोगों को जन्म मिलेगा। आजकल भयंकर रोग रक्तचाप, मधुमेह और हृदयरोग का तो प्रमुख कारण यही है कि लोग शारीरिक कार्य कम और मानसिक कार्य अधिक करते हैं। इसी

उपर्युक्त शारीरिक, वाणी जन्य व मनोगत कार्यों को न करने या कम करने से भी समस्याएं पैदा होंगी।

इसी प्रकार मन का विपरीत या विकृत चिन्तन, नकारात्मक चिन्तन अथवा ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ आदि मन के मिथ्यायोग के प्रतीक हैं। वाणी का चापलूसी, निन्दा, चुगली, गाली, अपशब्द आदि के रूप में कार्य करना वाणी कर्म का मिथ्यायोग है। इसी प्रकार शारीरिक चेष्टाओं या कार्यों को चोरी, व्यभिचार, झगड़ा आदि में लगाना शारीरिक कर्म का मिथ्यायोग है। इन सबसे रोग पैदा होते हैं।

12. प्रज्ञापराध—उपर्युक्त रोग पैदा करने वाले सभी कारण वास्तव में प्रज्ञापराध से पैदा होते हैं। प्रज्ञापराध से आशय है—व्यक्ति की प्रज्ञा के द्वारा किये गये अपराध या गलतियाँ। महात्मा गौतम बुद्ध से किसी ने प्रश्न पूछा कि दु:खों का क्या कारण है ? उन्होंने उत्तर दिया—मनुष्य की तृष्णा। आयुर्वेद ऋषियों से भी यह प्रश्न पूछा गया कि—कारणां वेदनानां किम् ? अर्थात् कष्टों का कारण क्या है तो उन्होंने उत्तर दिया—

धी धृति स्मति विभ्रंश: संप्राप्ति कालकर्मणाम्।
असात्म्यार्थागमश्चेति ज्ञातव्या दु:ख हेतव: ।।

—च. सं. शा. 1–92

अर्थात् बुद्धि, धैर्य और स्मृति का भली प्रकार कार्य न करना, "........दु:खों का कारण है। मनुष्य की प्रज्ञा के तीन भेद होते हैं—बुद्धि, धैर्य और स्मृति। इनके भ्रष्ट हो जाने पर मनुष्य न करने योग्य अशुभ कर्म करता है। फलस्वरूप दोष (वात-पित्त-कफ) प्रकुपित होकर रोगों को उत्पन्न कर देते हैं। यह स्थिति ही प्रज्ञापराध है। जैसा कि चरक संहिताकार स्पष्ट करते हैं—

धी धृति स्मृति विभ्रष्ट: कर्मयत् कुरुतेऽशुभम्।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात सर्वदोष प्रकोपणम्।।

—च. सं. शा. 1–102

धी, धृति और स्मृति द्वारा सम्यक् रीति से कार्य न करने पर रोग कैसे पैदा हो जाते हैं; इस प्रक्रिया पर भी विचार करना आवश्यक है। जो जैसा है, उसे ठीक वैसा ही समझना धी या बुद्धि का कार्य है। कहा भी गया है—**समंबुद्धिर्हि पश्यति।** मुहावरे की भाषा में कहें तो दूध का दूध और पानी का पानी करना बुद्धि का कार्य है। धृति का अर्थ धारणाशक्ति या धैर्य से है। और स्मृति से तात्पर्य ज्ञान और अनुभूति से है। इन शक्तियों का मन के अधीन हो जाना ही इनका भ्रष्ट होना है। दूसरे शब्दों में धी, धृति और स्मृति जब मन पर नियन्त्रण करने की अपनी शक्ति खो देती हैं तो यह इनका विनष्ट होना माना जाता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति मन माना

कार्य करने लगता है। इसी को चरकाचार्य प्रज्ञापराध कहते हैं; जैसा कि स्पष्ट है—'**प्रज्ञापराध जानीयान्मनसो गोचरं हितत्**। व्यक्ति द्वारा इस प्रकार का मन माना कार्य करने पर उसके आहार-विहार और आचार-विचार सम्यक् नहीं रहने पाते। फलस्वरूप दोष प्रकुपित होकर उसे रोगग्रस्त बना देते हैं।

बुद्धिभ्रंश के कुछ उदाहरण—यह जानते हुए भी कि शराब उसके हृदय, स्थायुसंस्थान, यकृत आदि पर घातक प्रभाव डालती हैं और रक्तचाप, अनिद्रा, हृदय रोग, नर्वस ब्रेक डाउन जैसे रोगों को जन्म देती है, व्यक्ति शराब पीता है। सिगरेट पीने के विज्ञापनों स्पष्ट रूप से यह लिखा होता है कि **सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए** हानिकारक है, फिर भी व्यक्ति सिगरेट पीता है। **जीवन का आधार धर्म और उद्देश्य मोक्ष है, काम और अर्थ तो साधन मात्र हैं**, यह जानते हुए भी वह धर्म और मोक्ष को अपनी आँखों से ओझल कर देता है और मात्र काम और अर्थ को अपने जीवन का ध्येय बना लेता है। यह जानते हुए भी कि '**रात को खाओ-पिओ दिन को आराम करो**' की संस्कृति उसके विनाश का कारण बनेगी, वह इसे अपनाने में अपने जीवन का सौभाग्य मानता है। ये सभी उदाहरण बुद्धिभ्रंश के और प्रज्ञापराध के उदाहरण हैं—बुद्धि पर मन का पूरी तरह आधिपत्य हो चुका है। इस स्थिति में रोग का न होना ही आश्चर्य माना जायेगा।

धृति भ्रंश के उदाहरण—मन के विरुद्ध कार्य होते ही मनुष्य धैर्य खो बैठता है। फिर उसे मन जैसे चाहे नचाता है। यही धृतिभ्रंश है। काम, क्रोध, लोभ, भय, व्यसन, कष्ट आदि की दशा में भी धैर्य का नाश हो जाता है। मान लीजिए कि कोई व्यक्ति मीठा खाने का व्यसनी है। सामान्यतः मीठा खाना बुरा नहीं। किन्तु अस्वस्थ होने के कारण उसे मीठा न खाने के निर्देश दिये गये हैं। किन्तु मीठा सामने आते ही वह उस पर टूट पड़ता है। किसी व्यक्ति को भूख लगी है। भोजन तैयार होने में कुछ देर है। उसका धैर्य टूट-छूट जाता है। वह या तो अभक्ष्य व हानिकारक भोजन कर लेता है या भोजन ही नहीं करता। तुरन्त कोई वस्तु न मिलने पर वह आगबबूला हो जाता है। ये सब स्थितियाँ प्रज्ञापराध को जन्म देती हैं और रोग कारक हैं।

स्मृतिभ्रंश के उदाहरण—यह जानते हुए कि गन्ने का रस पीकर उसे एलर्जी हो जाती है, व्यक्ति गन्ने का रस पीता है। तात्पर्य पूर्व में प्राप्त किये गये ज्ञान व अनुभवों का वह लाभ नहीं उठाता और मन के अधीन होकर कार्य करता है। यह स्मृतिभ्रंश है।

इस प्रकार व्यक्ति प्रज्ञापराध के कारण सम्यक् आहार-विहार व आचार-विचार नहीं अपना पाता और अपनी इस शरीर रूपी पवित्र यज्ञशाला को शतक्रतु (सौ वर्ष तक यज्ञ करने वाला) न बनाकर व्याधि मन्दिर बना लेता है। □

स्वास्थ्य का मूल मन्त्र—
आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धान्त

'यत्पिण्डे तद् ब्रह्मण्डे' के अनुसार जो कुछ शरीर में है वही ब्रह्माण्ड में है। जिन पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु) से इस ब्रह्माण्ड की रचना हुई, उन्हीं तत्त्वों से व्यक्ति का शरीर भी बना है।

ये पाँच तत्त्व जब तक सन्तुलित और मर्यादित अवस्था में रहते हैं, सृष्टि के सभी कार्य सुव्यवस्थित और अच्छे ढंग से चलते हैं। इन तत्त्वों के अमर्यादित होते ही ममतामयी प्रकृति माता और यह सृष्टि प्रकुपित होकर व्यक्ति के दुःख और रोग का कारण बनती है। 'यथा लोके तथा शरीरे' के अनुसार इन तत्त्वों की विषम अवस्था शरीर को भी रोगग्रस्त बना देती है।

इस सृष्टि में ये पाँचों तत्त्व विभिन्न रसों (मधुर, कटु, लवण, तिक्त, अम्ल और कषाय) के साथ मिलकर त्रिधातुओं की उत्पत्ति कराते हैं। सृष्टि में छः प्रकार के रस विद्यमान होते हैं और आहार-विहार के द्वारा ये रस मनुष्य शरीर में पहुँचते हैं। ये रस पंचमहाभूतों के साथ संयुक्त होकर त्रिधातुओं (वात-पित्त-कफ) की उत्पत्ति कराते हैं। जब तक त्रिधातुयें साम्य अवस्था में रहती है, तब तक ये शरीर को धारण करती हैं और शरीर को स्वस्थ बनाये रखती हैं। इसीलिए इनको धातु कहा गया है जैसा कि स्पष्ट है—'धारणाद् धातवः स्मृतः'। 'शरीर दूषणात् दोषाः' के अनुसार इनको दोष (त्रिदोष) कहा जाता है। ये धातुएँ विषम अवस्था को प्राप्त हो जाने पर दोष बन जाती हैं और रोगों के जन्म का कारण बनती हैं।

रोग और स्वास्थ्य—चरकाचार्य के अनुसार—

विकारो धातु वैषम्यं साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञाकरारोग्यं विकारो दुःखमेव च ॥ च. सं. सू. 9·4

अर्थात् धातुओं की विषमता रोग और साम्य स्वास्थ्य है। इस सृष्टि में पृथ्वी, जल, चन्द्र आदि में कफ की प्रधानता है, सूर्य व अग्नि में पित्त की प्रधानता है और वायु में वात की प्रधानता है। अग्नि तत्त्व, सूर्य तत्त्व, वायु तत्त्व, जल तत्त्व—किसी

भी तत्व की विषमता से इस सृष्टि का सन्तुलन बिगड़ जाता है, यही स्थिति शरीर पर लागू होती है। चरक संहिता सूत्र 1·56 के अनुसार—

वायुः पित्तं कफोश्चोक्तः शारीरो दोष संग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च॥

अर्थात् वात, पित्त और कफ ये शारीरिक दोष हैं और रज और तम मानसिक दोष हैं। आगे चरकाचार्य मानसिक और शारीरिक दोषों को एक करते हुए प्रज्ञापराध को रोगों का कारण मानते हैं। वे लिखते हैं—

धी धृति स्मृति विभ्रष्टः कर्मयत कुरुतेऽशुभम्।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोष प्रकोपणम्॥ च. सं. शा. 1

अर्थात् बुद्धि, धैर्य और स्मृति के भृष्ट हो जाने पर मनुष्य आहार-विहार और आचार-विचार सम्बन्धी अनेक अशुभ कार्य करता है। इससे ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोधादि मानसिक दोष और शरीर के वात-पित्त-कफ दोष प्रकुपित होकर रोग उत्पन्न करा देते हैं।

वात—वात का अर्थ है वायु। वायु इस ब्रह्माण्ड में जो कार्य करती है, शरीर स्थित वायु भी शरीर में वही कार्य करती है। चरकाचार्य लिखते हैं—

सर्वाहिचेष्टा वातेन सप्राणः प्राणिनां स्मृतः।
तै नैव रोगा जायन्ते तेनचैवोरुध्यते॥

च. सं. सूत्र 17·118

अर्थात् वायु जब शरीर में प्राकृतिक दशा में रहती है तो इसे प्राणियों का प्राण कहा जाता है और शरीर की समस्त चेष्टाएँ व क्रियाएँ वायु से ही होती हैं। कुपित अवस्था में यह वात रोगों को उत्पन्न करने वाली तथा मृत्यु का कारण भी बन जाती है। संसार की वायु के प्रमुख कार्य पृथ्वी को धारण करना, अग्नि जलाना, सूर्य चन्द्रादि को सही गति में रखना, बादल उत्पन्न करना व उनको गति देना, वर्षा करना, फल-फूल पौधों को पैदा करना, अन्न को पकाना व सुखाना, ऋतुओं को विभक्त करना आदि हैं। यही वायु जब प्रकुपित होती है तो वृक्षों को उखाड़ना, मकानों को उजाड़ना, समुद्र में तूफान लाना, चक्रवात पैदा करना, भूकम्प करना, बादलों की गर्जना आदि विनाशकारी कार्य करती है। यह संसार की उत्पत्ति, पालन और विनाश करने वाली है। वायु यही कार्य शरीर में करती है। यह शरीर की समस्त शारीरिक व मानसिक क्रियाओं को कराती है। यहाँ तक कि पलक झपकना भी वायु के बिना सम्भव नहीं है। श्वसन क्रिया, मल-मूत्रादि वेगों को बाहर निकालना, बोलना, धातुओं को सक्रिय रखना, दोषों को सुखाना आदि सभी कार्य वात द्वारा होते हैं। शरीर में जहाँ कहीं गति, चेष्टा या क्रिया है वह वात के कारण है। चरकाचार्य ने इसे प्राणियों का प्राण कहा है। यही वायु जब कुपित अवस्था को प्राप्त हो जाती है तो अनेक भयंकर रोगों को जन्म देती है। यह शरीर के बल, वर्ण, सुख और आयु के नाश का कारण बनती है। प्रकुपित वात उदरशूल, हृदयशूल, सिरदर्द,

5

स्वास्थ्य का मूल मन्त्र—
आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धान्त

'यत्पिण्डे तद् ब्रह्माण्डे' के अनुसार जो कुछ शरीर में है वही ब्रह्माण्ड में है। जिन पंच महाभूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु) से इस ब्रह्माण्ड की रचना हुई, उन्हीं तत्त्वों से व्यक्ति का शरीर भी बना है।

ये पांच तत्त्व जब तक सन्तुलित और मर्यादित अवस्था में रहते हैं, सृष्टि के सभी कार्य सुव्यवस्थित और अच्छे ढंग से चलते हैं। इन तत्त्वों के अमर्यादित होते ही ममतामयी प्रकृति माता और यह सृष्टि प्रकुपित होकर व्यक्ति के दु:ख और रोग का कारण बनती है। 'यथा लोके तथा शरीरे' के अनुसार इन तत्त्वों की विषम अवस्था शरीर को भी रोगग्रस्त बना देती है।

इस सृष्टि में ये पाँचों तत्त्व विभिन्न रसों (मधुर, कटु, लवण, तिक्त, अम्ल और कषाय) के साथ मिलकर त्रिधातुओं की उत्पत्ति कराते हैं। सृष्टि में छ: प्रकार के रस विद्यमान होते हैं और आहार-विहार के द्वारा ये रस मनुष्य शरीर में पहुँचते हैं। ये रस पंचमहाभूतों के साथ संयुक्त होकर त्रिधातुओं (वात-पित्त-कफ) की उत्पत्ति कराते हैं। जब तक त्रिधातुयें साम्य अवस्था में रहती है, तब तक ये शरीर को धारण करती हैं और शरीर को स्वस्थ बनाये रखती हैं। इसीलिए इनको धातु कहा गया है जैसा कि स्पष्ट है—'धारणाद् धातव: स्मृत:'। 'शरीर दूषणात् दोषा:' के अनुसार इनको दोष (त्रिदोष) कहा जाता है। ये धातुएँ विषम अवस्था को प्राप्त हो जाने पर दोष बन जाती हैं और रोगों के जन्म का कारण बनती हैं।

रोग और स्वास्थ्य—चरकाचार्य के अनुसार—

विकारो धातु वैषम्य साम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञाकरारोग्यं विकारो दु:खमेव च॥ च. सं. सू. 9·4

अर्थात् धातुओं की विषमता रोग और साम्य स्वास्थ्य है। इस सृष्टि में पृथ्वी, जल, चन्द्र आदि में कफ की प्रधानता है, सूर्य व अग्नि में पित्त की प्रधानता है और वायु में वात की प्रधानता है। अग्नि तत्त्व, सूर्य तत्त्व, वायु तत्त्व, जल तत्त्व—किसी

भी तत्त्व की विषमता से इस सृष्टि का सन्तुलन बिगड़ जाता है, यही स्थिति शरीर पर लागू होती है। चरक संहिता सूत्र 1·56 के अनुसार—

वायुः पित्तं कफोश्चोक्तः शारीरो दोष संग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च ॥

अर्थात् वात, पित्त और कफ ये शारीरिक दोष हैं और रज और तम मानसिक दोष हैं। आगे चरकाचार्य मानसिक और शारीरिक दोषों को एक करते हुए प्रज्ञापराध को रोगों का कारण मानते हैं। वे लिखते हैं—

धी धृति स्मृति विभ्रष्टः कर्मयत कुरुतेऽशुभम्।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोष प्रकोपणम् ॥ च. सं. शा. 1

अर्थात् बुद्धि, धैर्य और स्मृति के भ्रष्ट हो जाने पर मनुष्य आहार-विहार और आचार-विचार सम्बन्धी अनेक अशुभ कार्य करता है। इससे ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोधादि मानसिक दोष और शरीर के वात-पित्त-कफ दोष प्रकुपित होकर रोग उत्पन्न करा देते हैं।

वात—वात का अर्थ है वायु। वायु इस ब्रह्माण्ड में जो कार्य करती है, शरीर स्थित वायु भी शरीर में वही कार्य करती है। चरकाचार्य लिखते हैं—

सर्वाहिचेष्टा वातेन सप्राणः प्राणिनां स्मृतः।
तै नैव रोगा जायन्ते तेनचैवोरुध्यते ॥

च. सं. सूत्र 17·118

अर्थात् वायु जब शरीर में प्राकृतिक दशा में रहती है तो इसे प्राणियों का प्राण कहा जाता है और शरीर की समस्त चेष्टाएँ व क्रियाएँ वायु से ही होती हैं। कुपित अवस्था में यह वात रोगों को उत्पन्न करने वाली तथा मृत्यु का कारण भी बन जाती है। संसार की वायु के प्रमुख कार्य पृथ्वी को धारण करना, अग्नि जलाना, सूर्य चन्द्रादि को सही गति में रखना, बादल उत्पन्न करना व उनको गति देना, वर्षा करना, फल-फूल पौधों को पैदा करना, अन्न को पकाना व सुखाना, ऋतुओं को विभक्त करना आदि हैं। यही वायु जब प्रकुपित होती है तो वृक्षों को उखाड़ना, मकानों को उजाड़ना, समुद्र में तूफान लाना, चक्रवात पैदा करना, भूकम्प करना, बादलों की गर्जना आदि विनाशकारी कार्य करती है। यह संसार की उत्पत्ति, पालन और विनाश करने वाली है। वायु यही कार्य शरीर में करती है। यह शरीर की समस्त शारीरिक व मानसिक क्रियाओं को कराती है। यहाँ तक कि पलक झपकना भी वायु के बिना सम्भव नहीं है। श्वसन क्रिया, मल-मूत्रादि वेगों को बाहर निकालना, बोलना, धातुओं को सक्रिय रखना, दोषों को सुखाना आदि सभी कार्य वात द्वारा होते हैं। शरीर में जहां कहीं गति, चेष्टा या क्रिया है वह वात के कारण है। चरकाचार्य ने इसे प्राणियों का प्राण कहा है। यही वायु जब कुपित अवस्था को प्राप्त हो जाती है तो अनेक भयंकर रोगों को जन्म देती है। यह शरीर के बल, वर्ण, सुख और आयु के नाश का कारण बनती है। प्रकुपित वात उदरशूल, हृदयशूल, सिरदर्द,

पेट फूलना, अंग जकड़ना, हाथ-पैरों में हड़कन, रोमांच, कम्प, प्रलाप, दीनता, स्पर्श ज्ञान न होना आदि अस्सी प्रकार के रोग पैदा करती है।

वायु के लक्षण—चरकसंहिता सूत्र 1·59 के अनुसार वायु रुखा, शीतल लघु, सूक्ष्म, चंचल, विस्तृत और खर (सूखा और कठोर) गुण वाला होता है। जैसा कि स्पष्ट है—

रुक्षः शीतो लघुः सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदः खरः।
विपरीत गुणैर्द्रव्यैर्मारुतः स प्रशाम्यति ॥ 1–59

शरीर में वात कहाँ रहता है ? शार्गंधर संहिता में स्पष्ट है—

मलाशये चरेत्कोष्ठे वह्निस्थाने तथा हृदि।
कण्ठे सर्वांगदेशेषु वायुः पंचकारतः ॥ 5·27

अर्थात् वायु मलाशय, आमाशय, हृदय, कण्ठ और सम्पूर्ण शरीर में रहती है। **अपानवायु** मलाशय में रहती है। मल-मूत्र की क्रियाएँ होना, हवा शुद्ध होना, गर्भ को बाहर निकालना इसका प्रधान कार्य है। **समान वायु** कोष्ठ में रहती है। अन्न को ग्रहण करना, अन्न का परिपाक करना, अन्न से उत्पन्न होने वाले विभिन्न पदार्थों को अलग करना इसके मुख्य कार्य हैं। **उदान वायु** कण्ठ में रहती है और कण्ठ और ऊपर के अंगों से सम्बन्धित क्रियाएं इसके अधीन है। **व्यान वायु** सम्पूर्ण शरीर में भ्रमण करती है। शरीर की समस्त क्रियायें इसी के द्वारा होती हैं। **प्राण वायु** हृदय, फुपफुस, अन्न प्रणाली आदि से इस वायु का सम्बन्ध रहता है।

वात प्रकोप के कारण—उपर्युक्त रोग हो जाने पर वात प्रकुपित हुई जानना चाहिए। हल्का (शीघ्र पचने वाला) और रूखा (चिकनाई रहित) भोजन निरन्तर करते रहने से तथा अधिक समय तक कम मात्रा में भोजन या उपवास करने से वात प्रकोप हो जाता है। भोजन में कसैले, कड़ुए और चरपरे पदार्थों (कटु व तिक्त रस) का सेवन भी वात वर्धक होता है। ठण्डे पदार्थों का सेवन या शीतल जल से स्नान, वर्षा में भीगना, अधिक परिश्रम करना, देर रात तक जागना, शोक, भय, कामुकता, सामर्थ्य से अधिक व्यायाम आदि से भी वात प्रकुपित होती है। भोजन पच जाने के बाद, वृद्धावस्था में, रात्रि के पिछले प्रहर में और वर्षाऋतु में स्वाभाविक रूप से वात का प्रकोप होता है।

वात को शान्त करने के उपाय—ऊपर लिखे आहार-विहार के विपरीत सम्यक् आहार-विहार अपनाने से वात शान्त हो जाती है। चिकनाई युक्त व गर्म पदार्थों का सेवन, तेल मालिश, मीठे, लवणयुक्त व खट्टे पदार्थ खाना, एरण्ड तैल आदि से विरेचन देना आदि कार्यों से वात का शमन हो जाता है। लहसुन, मैथी, अदरक, लौंग, तुलसी, पीपल, सहजना, एरण्ड, घी, तैल, गिलोय आदि पदार्थ वात-नाशक होते हैं।

वायु का महत्व—वात का हमारे शरीर में सबसे अधिक महत्त्व है। कफ और पित्त दोष वात के द्वारा ही गमन करते हैं। शार्गंधर संहिता का कथन है—

पित्तं पंगु कफः पंगु पंगवो मलधातवः ।
वायुना यत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ते मेघवत ।।

अर्थात् पित्त, कफ, शरीर के मल और रसरक्तादि सभी धातुएं पंगु हैं। ये एक स्थान से दूसरे स्थान तक नहीं जा सकती। सृष्टि में जिस प्रकार यह वादलों को अपनी इच्छानुसार नचाती है, उसी प्रकार शरीर स्थित उक्त दोषादि को भी अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ ले जाती है। दोष और रोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक वात के कारण ही पहुँचते हैं। चरकाचार्य ने वात को 'आयुषोऽवृत्ति प्रत्ययभूतो' कहा है। वास्तव में वायु हृदय और वातनाड़ी का चालक है और इनके कारण ही यह आयु है; यह जीवन है। अतः व्यक्ति को अपना आहार-विहार और आचार-विचार ऐसे रखने चाहिए जिनसे वात सम अवस्था में रहे।

पित्त—शरीर को स्वस्थ और रोगी बनाने में पित्त की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। पित्त क्या है, इसे समझने के लिए इसके लक्षणों का समझना आवश्यक है। चरकाचार्य कहते हैं—

सस्नेहमुष्ण तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु।
विपरीत गुणैः पित्तं द्रव्यैराशु प्रशाम्यति ।। च. सं. सू. 1.60

अर्थात् पित्त कुछ-कुछ स्नेहयुक्त, उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर और कटु लक्षणों से युक्त है, इसके विपरीत गुण वाले पदार्थों से पित्त का शमन होता है। इस ब्रह्माण्ड में जो कार्य सूर्य, अग्नि व जल का है, शरीर में वही कार्य पित्त का है। चरकाचार्य के अनुसार सम अवस्था में पित्त निम्नलिखित कार्य करता है—

दर्शनं पक्तिरुष्मा चक्षु तृष्णे देहमार्दवम्।
प्रभा प्रसादो मेधाश्च पित्तकर्माविकारजम् ।। च. सं. सू. 18

अर्थात् पित्त तेज रूप है। **आलोचक पित्त** (पित्त का एक भेद) आंखों में रह कर रूप ग्रहण करता है। पक्ति का अर्थ पदार्थ को पकाकर इस योग्य वना देना है कि उसका सार भाग और मल भाग अलग-अलग हो सके। आमाशय व पक्वाशय के बीच स्थित **पाचक पित्त** यही कार्य करता है। शरीर को ऊष्मा देना, भूख प्यास लगाना, मृदु वनाये रखना (अन्यथा शरीर शव के समान कठोर हो जाये) और शरीर को प्रभामय वनाना (त्वचा में स्थित **भ्राजक पित्त** यह कार्य करता है।) पित्त के कार्य हैं। जिस प्रकार अग्नि और सूर्य सृष्टि को निर्मल वनाते हैं, उसी प्रकार शरीर स्थित गन्दगी को दूर कर शरीर को निर्मल वनाना पित्त का कार्य है। साधक पित्त मेधा, बुद्धि, स्मृति आदि उत्पन्न करने वाला है। इसी प्रकार रंजक पित्त का प्रधान कार्य रंगना है जैसे रस का रक्त रूप लाल वनाना आदि।

प्रकुपित पित्त के लक्षण—शरीर के किसी एक अंग या सर्वांग में जलन, उष्णता, हाथ-पैरों में जलन, शरीर का अधिक तापमान, अधिक पसीना, मुख में तीखा, कड़ुआ या खट्टा स्वाद आदि दशाएँ पित्त प्रकोप का सूचक हैं।

पित्त क्षय होने पर शरीर की गर्मी कम हो जाती है, मन्दाग्नि हो जाती है, शीतता अनुभव होती है तथा शरीर का तेज खतम हो जाता है। पित्त वृद्धि में त्वचा, मल, मूत्र आदि में पीलापन, ठण्डी वस्तुएँ अच्छी लगना, अधिक नींद, इन्द्रियों की शक्ति में कमी आदि लक्षण पैदा होते हैं।

पित्त विकृति से उत्पन्न होने वाले रोग—पाचक पित्त के विकृत होने से अतिसार, संग्रहणी, प्रवाहिका (डिसैण्ट्री), रंजक पित्त की विकृति से खून की कमी या रक्ताधिक्य, आलोचक पित्त के प्रकुपित होने पर नेत्र विकार, भ्राजक पित्त से दाह-जलन आदि और साधक पित्त से दुःख दैन्य प्रकट होते हैं।

पित्त रोगों पर कैसे विजय पायें—पित्त रोगों को जीतने के लिए विरेचन सर्वश्रेष्ठ उपाय है। रोगी के बलाबल को देखते हुए पंच सकार चूर्ण, एरण्ड तैल, गुलकन्द आदि से जुलाब लेना चाहिए। एनीमा या आयुर्वेदोक्त वस्ति का प्रयोग पित्त रोगों में अति श्रेष्ठ रहता है। यह पित्त की संशोधन चिकित्सा है। पित्तशमन करने के लिए पित्त का प्रकोप करने वाले समस्त कारणों को छोड़ देना चाहिए। क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, उपवास, मैथुन, कड़ुए-खट्टे-नमकीन-गर्म और दाह कारक पदार्थों के सेवन से पित्त प्रकुपित होता है। अग्नि या धूप में अधिक रहना तथा माँस, मदिरा, अण्डा, खट्टा दही-छाछ, तिल तैल, सरसों, अलसी, खट्टे फल आदि सब पित्तकारक होते हैं। इसके विपरीत आहार-विहार का सेवन करने से पित्त का शमन हो जाता है। घृत, मधुर पदार्थ, चन्दन लेप, सुगन्ध, प्रिय-मधुर वार्तालाप शीतल वायु, चाँदनी में बैठना आदि से पित्त शमन होता है। नीबू की शिकंजी, दूध के साथ गुलकन्द, सौंफ-मुनक्के का काढ़ा, अनार-मौसमी का रस ये सब पदार्थ अच्छे पित्त शामक हैं।

पित्त युवावस्था में, शरदऋतु में और दोपहर को प्रायः प्रकुपित रहता है। वर्षा में इसका संचय होता है और शीत ऋतु में शमन। अतः त्रिदोष सिद्धान्त पर विचार करते समय इस तथ्य को भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

कफ के कार्य व गुण—कफ को श्लेष्मा कहते हैं। इसका अर्थ है संश्लेषण। अर्थात् शरीर में जो भी संयोग है या अविभाजकता है वह श्लेष्मा के कारण है। शरीर स्थित वायु शरीर के अंग-अंग को अलग-अलग कर देती यदि श्लेष्मा उनको जोड़े न रखता। इसी प्रकार सृष्टि के संयोजन में भी श्लेष्मा तत्त्व की ही भूमिका है। स्निग्धता (चिकनाई) बन्धन (जोड़े रखना), स्थिरता (कफ पृथ्वी व जल तत्व का प्रतिनिधि है ये तत्व सृष्टि में स्थिरता व संयोजन का कार्य करते हैं।), गौरव (भारीपन) वृषता (मैथुन शक्ति वर्द्धक), बल, क्षमा, धैर्य, अलोभ आदि कार्यों को शरीर में सम अवस्था में स्थित श्लेष्मा करता है। शार्गंधर संहिता 5·34 के अनुसार—

कफश्चामाशये मूर्ध्नि कण्ठे हृदिच सन्धिषु।
तिष्ठन्करोति देहस्य स्थैर्यं सर्वांगपाटवम्॥ शा. सं. 5·34

अर्थात् आमाशय में रहने वाला क्लेदक कफ अन्न को गीला व स्नेहयुक्त (चिकना) बनाता है। छाती में रहने वाला अवलम्बक कफ कन्धों को पुष्ट करता व बल देता है। बोधक कफ जीभ में रहता है और रसों (मधुर, कटु, अम्ल, लवण, तिक्त व कषाय) का ज्ञान कराता है। तर्पक रस सिर में रहता है और इन्द्रियों को बल देता है। श्लेषक कफ सन्धियों में रहकर उनको चिकना बनाने और जोड़े रखने का कार्य करता है।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी उक्त कफों को साइनोविया, सेरिब्रोस्पाइनल फ्लूइड, लाला रस, एसिटिल-कोलीन आदि नाम दिये हैं।

कफ प्रकोप के कारण—दिन में सोना, परिश्रम व व्यायाम न करना, आलस्य, खट्टे-मीठे लवण युक्त ठण्डे-चिकने पदार्थ, अतिभोजन, उर्द, गेहूँ, दही, सिघाड़ा, केला, खीर, गन्ने का रस आदि पदार्थों से कफ प्रकोप होता है। बाल्यावस्था में, वसन्त में और दिन के प्रारम्भ में स्वाभाविक रूप से कफ प्रकोप रहता है।

कफ विकृति के लक्षण—शरीर का श्वेत होना, भारीपन, आलस्य, खाज, सूजन, अधिक नींद, कुपच, मुँह का स्वाद मीठा या नमकीन, स्रोतों का अवरोध (पसीना आदि दोष शरीर से न निकलना) आदि लक्षण कफ प्रकोप के हैं। कफ क्षय से शरीर रूखा, सिर में शून्यता, प्यास, दुर्बलता, निद्रानाश आदि होकर कफ के प्राकृत कार्यों में बाधा होती है। कफाधिक्य में कफ प्रकोप जैसी स्थिति ही होती है।

कफ रोगों पर कैसे विजय पायें—वमन कराना, कफ विकृति का सर्वश्रेष्ठ उपाय है। विरेचन भी इसके प्रकोप को शमित करता है। व्यायाम, रूखा-सूखा व गर्म प्रकृति का भोजन, कड़ुए, तीखे तथा कसैले रस वाले पदार्थों का सेवन कफ का शमन करता है। तुलसी, लौंग, सौंठ, तिल, हल्दी, पीपल, गिलोय, मिर्च, जीरा, अजवायन, मुलहटी, त्रिफला, चित्रक, करेला आदि के सेवन से कफ शमित हो जाता है। शरीर में कफ की न्यूनता होने पर (ग्रीष्म ऋतु में स्वाभाविक रूप से शरीर में न्यूनता हो जाती है।) कफ कारक पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

आयुर्वेद का त्रिदोष सिद्धान्त स्वास्थ्य का आधार और रोगों का जनक दोनों है। त्रिधातुएँ सम अवस्था में रहें—न न्यून, न अधिक और न प्रकुपित तो व्यक्ति स्वस्थ, निरोग और दीर्घजीवी बनता है। त्रिदोष सिद्धान्त अत्यन्त गहन है, यहाँ स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी जानकारी दी गई है।

त्रिधातुओं का महत्त्व—आयुर्वेद में धातु, दोष और मल को शरीर का मूल अर्थात् उत्पादन कारण कहा गया है। सु. सू. अ. 15—"दोष-धातु-मल मूल हि शरीरं" और अष्टांग हृदय सू. अ. 11—"दोषा धातुमला मूला सदा देहस्य" से इसी बात की पुष्टि होती है। वात-पित्त कफ शरीर को धारण करते हैं, इसलिए धातु कहलाते हैं, हीन-अति-प्रकुपित दशा में ये शरीर को दूषित करते हैं अतः दोष हैं तथा मल-मूत्रादि के कारण इनको मल कहा जाता है। शरीर और प्रकृति की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश पंचभूतों व त्रिधातुओं पर ही निर्भर है। चरकाचार्य ने

"ते प्रकृतिभूताः शरीरोपकारका भवन्ति" के रूप में यही तथ्य स्पष्ट किया है। सुश्रुताचार्य के अनुसार

"विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा।
धारयन्ति जगद् देहं कफ पित्तानिला तथा॥ सु. सू. अ. 21

अर्थात् जिस प्रकार सोम (चन्द्रमा, कफ धातु का प्रतिनिधि) सूर्य (पित्त धातु का प्रतिनिधि) और अनिल (वात धातु का प्रतिनिधि) इस संसार को धारण करते हैं, उसी प्रकार वात-पित्त-कफ शरीर को धारण करते हैं। आहार-विहार और आचार-विचार के दूपित होने से वात-पित्त-कफ दूपित होने लगते हैं, शरीर में मल संग्रह होने लगता है, रस-रक्तादि सातों धातुएं विकृत हो जाती हैं और ऐसी स्थिति में जीवनीय शक्ति का क्षीण होते जाना, रोगों के कीटाणुओं का शरीर में बढ़ते जाना आदि विकार भी उत्पन्न हो जाते हैं।

आयुर्वेद का त्रिदोप सिद्धान्त वास्तव में आत्मा, बुद्धि, मन, शरीर, पंचमहाभूत, प्रकृति आदि के श्रेष्ठतम सामंजस्य पर आधारित है। आयुवेद के रूप में भगवान धन्वन्तरि ने आरोग्य व दीर्घ जीवन की जो कुंजी रोगपीड़ित मानवता को प्रदान की है, वह शाश्वत, सनातन और स्तुत्य है। □

6

दिनचर्या की सीपी में बन्द है स्वास्थ्य का मोती

प्रसिद्ध स्वास्थ्य विज्ञानी एवं प्रकृतिशास्त्री मैकफेडेन ने कहा है कि यदि तुम केवल अपने 'आज' का ध्यान रखते चले जाओ और कल पर टालने की प्रवृत्ति से मुक्ति पा जाओ तो स्वास्थ्य और समृद्धि की देवी जयमाला लिए कदम-कदम पर तुम्हारा अभिनन्दन करती हुई मिलेगी। मैकफेडेन का यह कथन व्यवस्थित और नियमित दिनचर्या के महत्त्व का प्रतिपादन करता है।

ऊषाकाल अमृत वेला है—ऊषाकाल से दिन का प्रारम्भ होता है और यहीं से होती है दिनचर्या शुरू। आचार्य **यशोवर्मन** ने 'उठो सवेरा हो गया' में लिखा है—

"यह ऊषा-काल है, इसी को ऋषि-मुनियों ने अमृत वेला का नाम दिया है। तुम्हारी आयु को अमर बनाने वाला अमृत-सुहावनी समीर के रूप में इसी समय लुटा करता है। तुम इस ऊषा-काल के अमृत को लूटकर क्यों पान नहीं करना चाहते? क्या तुममें अपने शरीर को स्वस्थ, सबल, दीर्घजीवी और कान्तिमय बनाने की इच्छा नहीं है? अगर हां, तो फिर इस सुहावने स्वास्थ्य-प्रद उषा-काल में उठने—नियमित रूप से उठ पड़ने की आदत क्यों नहीं डालते? आलसी और प्रमादी के समान तुम क्यों अभी तक शयनागर में पड़े-पड़े अगड़ाइयां ले रहे हो? क्या तुम्हें नहीं मालूम कि देर से उठने की तुम्हारी आदत तुम्हें धीरे-धीरे रोग-शय्या की ओर ले रही है?"

ऋग्वेद 1–125–1 में लिखा है—

प्रातारत्नं प्रातरित्वा दधातितं
चिकित्वान्प्रतिगृह्यानिधत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयु
रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥

अर्थात् प्रातः काल सूर्योदय से पहले उठने वाले को उत्तम स्वास्थ्य रत्न की प्राप्ति होती है। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति उसका उपयोग करते हैं। ब्रह्ममुहूर्त में उठने वाला व्यक्ति स्वस्थ, सुखी, पुष्ट, दीर्घायु और वीर होता है।

ब्रह्ममुहूर्त में जागरण—नित्यकर्मों से निवृत्त होकर प्रसन्न वदन उगते सूर्य का स्वागत करने के लिए ऊषा-काल से पूर्व ही बिस्तर छोड़ देने का विधान है। शरीर, मन एवं आत्मा को निर्विकार एवं स्वस्थ बनाने में इस समय जगने का अत्यधिक महत्व है। इस समय का जगना जीवन को देने वाला माना जाता है। मनीषियों के अनुसार **"ब्रह्मे मुहूर्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थ मानुष"** अर्थात् दीर्घ जीवन एवं स्वास्थ्य के लिए मनुष्य को ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिये। एक अंग्रेजी कवि का यह कथन "Early to bed and early to rise makes a man healthy, wealthy and wise" भी ब्रह्ममुहूर्त में जगने के महत्व को ही प्रतिपादित करता है। ऋग्वेद में **ऊषा-काल को दिव्य व्रतों को जन्म देने वाला कहा गया है।**

दिन भर के कार्यों को अच्छी तरह एवं समय पर करने के लिए भी प्रातः जल्दी उठना चाहिये। **प्रातः देर से उठने वालों को दिन कभी क्षमा नहीं करता।** स्नान, व्यायाम, प्रार्थना, भोजन व्यावसायिक कार्यों को करना आदि दिन के सभी काम क्लान्तवदन एवं विलम्ब से होते हैं। इससे हड़बड़ी और तनाव बने रहते हैं। फलस्वरूप हँसती-महकती परिवार की नन्दन बगिया भी पतझर का घर बन जाती है। ब्रह्ममुहूर्त में उठने का संकल्प लेना जीवन की सफलता के लिये अति उपयोगी है।

प्रकृति का संकेत—मनुष्य की तामसी सभ्यता के प्रभाव से जो क्षेत्र मुक्त हैं, वहाँ पर ब्रह्ममुहूर्त में उठना एक स्वाभाविक क्रिया के समान दिखाई देता है। पशु-पक्षी सदैव ब्रह्ममुहूर्त में अपनी निद्रा का त्याग कर देते हैं। छोटे-अबोध बच्चे भी सदैव ब्रह्ममुहूर्त में जग जाते हैं, किन्तु बड़ों की तामसी निद्रा उनको अधिक देर तक सोने की आदत डाल देती है। सामान्यतः प्रत्येक मनुष्य को सूर्योदय से डेढ़ घण्टे पूर्व तो निश्चित रूप से अपनी शैया का त्याग कर देना चाहिए।

'ईट, ड्रिंक और बी मैरी' या 'रात को खाओ-पिओ दिन को आराम करो' के सिद्धान्त ने मनुष्य का स्वास्थ्य चौपट कर दिया है। आयुर्वेद के अनुसार नींद और रात दोनों की प्रकृति तामस है अतः सोने का सबसे उपयुक्त समय रात्रि है और जगने का सबसे उत्तम समय ब्रह्ममुहूर्त।

आचार्य यशोवर्मन ऊषाकाल पर बड़े मुग्ध हैं। वे लिखते हैं—उठो सवेरा हो गया। ऊषा रानी तुम्हारे लिए मंगलघट लेकर खड़ी है। वह तुम्हारी झोली में आज के दिन-रात के 24 घण्टे अनमोल मोती लेकर आई है। इन मोतियों का

मूल्यांकन करो, एक सच्चे जौहरी की भाँति और इनका उचित उपयोग करके अपने दिन को और अपनी रात को सुखमय बनाओ, इसी में तुम्हारी बुद्धिमानी है। यदि ऊषा रानी के दिये हुये इन चौबीस अनमोल मोतियों का तुम सही-सही उपयोग न कर सकोगे तो यह बिखर जायेंगे तुम्हारे हाथों से। तुम्हारे देखते-देखते शून्य में विलीन हो जायेंगे। तुम इन्हें न पकड़ सकोगे। इसलिये बुद्धिमत्ता इसी में है कि तुम इनका इन 24 घण्टों के क्षण-क्षण का सदुपयोग करो। इनका सदुपयोग ही तुम्हारे जीवन का सदुपयोग होगा, इसे भूल मत जाओ। ऊषा रानी तुमसे यही कह रही है। उठो सवेरा हो गया, चिड़ियां चूँ-चूँ कर रही हैं।

ऊषापान एवं मल-विसर्जन— आयुर्वेद में ऊषापान की महिमा मुक्त कंठ से गाई गई है—

> विगत धन निशीथे प्रात-रुत्थाय नित्यं,
> पिबति खबु नरो यो घ्राण रुध्रेण वारि।
> स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा ताक्ष्र्यतुल्यो:
> वलि पलित-विहीन: सर्व रोगेर्विमुक्त: ॥

अर्थात् "जो मनुष्य प्रातःकाल घना अंधेरा दूर होने पर नासिका द्वारा जलपान करता है, वह पूर्ण बुद्धिमान एवं नेत्रज्योति में गरुड़ के समान हो जाता है। उसके बाल भी कभी सफेद नहीं होते तथा वह रोगों से हमेशा मुक्त रहता है।"

नाक से पानी पीने का अभ्यास धीरे-धरे करना चाहिये। किसी पात्र में स्वच्छ पानी लेकर सांस की स्वाभाविक गति के साथ (जोर से सांस खीचकर नहीं) दो तोले पानी से प्रारम्भ करके धीरे-धीरे आधा सेर पानी पीने का अभ्यास किया जा सकता है। जो व्यक्ति अपनी कमजोर संकल्प शक्ति के कारण इसका अभ्यास करने को तैयार नहीं हैं, उनको मुख द्वारा ही शौच क्रिया से पूर्व पानी अवश्य पीना चाहिए। यदि पानी ताम्र-पात्र में रखा हुआ हो तो और भी उत्तम है। इस विधि से मल-मूत्र आदि को बाहर करने में बहुत मदद मिलती है।

इसके बाद मनुष्य को शौच जाना चाहिये। मल-विसर्जन के समय दांत भींच कर बैठने से दांतों के रोग नहीं होते और हिलते हुए दांत भी दृढ़ हो जाते हैं। गुदा को अच्छी तरह साफ करने के बाद सप्ताह में 2–3 बार गुदा के बाहर-अन्दर सरसों का तेल लगा लेना चाहिये। इससे अर्श आदि रोग नहीं होते। मल-मूत्रादि के वेगों को रोकना शारीरिक रोगों को निमन्त्रित करना है।

भ्रमण एवं मुख-शुद्धि—शुद्ध वायु में प्रातः भ्रमण मनुष्य के लिए अमृत के समान लाभ-प्रद है। वृद्ध एवं कमजोर जिनके लिए कठोर व्यायाम लाभप्रद नहीं होते, उनके लिए यह अति उपयोगी है। जो विद्यार्थी प्रातः उठ कर व्यायाम

नहीं करते, उनको अवश्य घूमना चाहिए। आयुर्वेद में भ्रमण के सम्बन्ध में लिखा गया है—

यत्तु चंक्रमणं नाति देप-पीड़ाकरं भवेत।
तदायु बल-मेधाग्नि-प्रदमिन्द्रिय-बोधनम्॥

अर्थात् सामर्थ्यानुसार भ्रमण आयु, बल व बुद्धि-प्रदायक होता है और इससे इन्द्रियों की शक्ति जाग्रत होती है।

भ्रमण के बाद दातुन-मञ्जन आदि से मुँह साफ करना चाहिये। आँखें, गला नाक आदि भी भली प्रकार साफ करने चाहिये।

तेल मालिश एवं व्यायाम—किसी कारण भ्रमण न करने की दशा में या भ्रमण के बाद तेल-मालिश एवं व्यायाम का अभ्यास करना चाहिये। तेल-मालिश से शरीर में जीवनी शक्ति का संचार होता है। तेल रोम-कूपों द्वारा शरीर में पहुँच कर अंग प्रत्यय को सुन्दर, सुडौल, व सुगठित बनाता है इसके साथ ही रक्त संचरण सुधरता है—

जल-सिक्तस्य वर्धन्त यथा मूलेङ्कु रास्तरोः।
तथा धातु विविद्धिहि स्नेह सिक्तस्य जायते॥

जिस प्रकार जल सींचने से वृक्ष की जड़ें, पत्ते टहनियां तथा अँकुर फैलते व बढ़ते हैं उसी प्रकार तेल से सींचे हुये शरीर में रस रक्तादि सभी धातुओं की वृद्धि हो जाती है। आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि से भी बलिष्ठ बने रहने के लिये तेल-मालिश की उपयोगिता असंदिग्ध है। व्यायाम के बाद ही तेल-मालिश अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। व्यायाम के विषय में पृथक से लिखा जा चुका है। यहाँ इतना लिखना पर्याप्त है कि व्यायाम और तेल-मालिश के 30 मिनट बाद ही स्नान करना चाहिये।

स्नान—शरीर को स्वस्थ और शुद्ध रखने के लिये स्नान एक सर्वसुलभ साधन है। नित्य शीतल जल से स्नान करने से स्नायुमण्डल सशक्त होता है, शरीर में बल तथा शक्ति का संचार होता है तथा मानसिक शान्ति व प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। जिन दिनों हम स्नान करते हैं, उन दिनों में हम इसके लाभ को प्रत्यक्ष अनुभव कर लेते हैं। स्नान न करने से दिन भर आलस्य एवं खिन्नता रहती है। अथर्ववेद में कहा गया है—

'अपस्वन्तरममृतमप्सु भेपजम्'

अर्थात् जल में औषधि तथा अमृत विद्यमान है। एक अन्य स्थान पर वर्णन आया है—

'भिषग्यो भिषत्तरा आपः'

अर्थात् जल सम्पूर्ण औषधियों की परम औषधि है। महर्षि चरक ने स्नान का महत्व इस प्रकार स्पष्ट किया है—

पवित्रं वृषणयमायुष्मं श्रम स्वेद मलापहम,
शरीर वलसन्धानं स्नानभोजस्करं परम् ।

अर्थात् स्नान पवित्रता कारक, वीर्य वर्धक, दीर्घ आयु प्रदाता, थकावट व पसीना नाशक, मल को दूर करने वाला, वल को वढ़ाने वाला और ओज व तेज को प्रदान करने वाला है ।

स्नान के विशाद विज्ञान की चर्चा न करके यहाँ इतना लिखना आवश्यक है कि सर्दी लगने आदि के मिथ्या भय से या आलस्यादि के कारण जो प्रकृति के इस अमूल्य वरदान का उपयोग नहीं करते, स्वास्थ्य और दीर्घायु उनसे दूर रहते हैं।

प्रार्थना—स्नान के पश्चात अपनी उपासना-पद्धति के अनुसार ईश्वर के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिये । शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्ति प्राप्त करने, सुख, शान्ति व सन्तोष को प्राप्त करने के लिए प्रभुभक्ति एक अव्यर्थ उपाय है। प्रार्थना के विषय में अयन्त्र लिखा जा चुका है, यहां इतना लिखना पर्याप्त है कि आज के भौतिकवादी युग में दैनिक प्रार्थना को अपनी दिनचर्या का मुख्य अंग अवश्य वना लेना चाहिए । प्रार्थना, ध्यान, संकल्प आदि की संजीवनी-शक्तियों के सामने आज के अशान्ति और तनाव का ठहरना असम्भव हैं ।

दिनचर्या में खेल-कूद, मनोरंजन और स्वाध्याय को स्थान मिल जाने से व्यक्ति तरोताजा और स्वस्थ वना रहता है । चित्रकला, संगीत, वागवानी, प्रकृति निरीक्षण, कविता, नाटक आदि रस के भण्डार होते हैं । अपनी रुचि के अनुसार किसी एक के साथ दोस्ती कर लीजिए । ये ऐसे साथी हैं जो आपके जीवन के खालीपन को तो भरेंगे ही स्वर्गीय आनन्द भी प्रदान करायेगे ।

घर में व्यवसाय या ऑफिस को अपने ऊपर लादे रहने से घर की सुख-शांति छिन जाती है । वच्चे समाज को वही देते हैं जो वे अपने माता-पिता और समाज से प्राप्त करते हैं । अतः वच्चों पर अपना प्यार वरसाइये—ममता से उनकी झोली भर दीजिए । छोटा-सा घर स्वर्ग वन जायेगा ।

सोने से 2–3 घण्टे पहले रात का भोजन कर लेना स्वास्थ्य के लिए उपयोगी रहता है । देररात तक जागने से स्वास्थ्य पर अनिष्टकर प्रभाव पड़ता है । आज के दिन के साथ आपने पूरा न्याय किया है और इसका सन्तोष आपके चेहरे पर है । व्यक्ति के सुख-दुख, पुष्टि-कृशता, वल-अवल सव नींद के अधीन हैं—जैसा कि चरक संहिता में अग्रलिखित लिखा है—

"निद्रायत्तं सुखं दुखं पुष्टिः कार्श्यं वलावलम् ।"

सोने से पूर्व दिन भर के कार्यों पर विचार करते हुए एवं ईश्वर का स्मरण करते हुए सो जाइये । स्वास्थ्य और सुख-शान्ति के द्वार आपको हमेशा खुले मिलेंगे।

7

ऋतुओं के गर्भ में छिपा है स्वास्थ्य का अमृत कलश

आयुर्वेद व्यक्ति को स्वस्थ, सुखी और दीर्घजीवी बनाने वाली एक विशिष्ट जीवन पद्धति का नाम है। यह जीवन-पद्धति भारत के जन-जन में किस प्रकार रमी हुई है, इसकी दो घटनाएं मुझे आज भी याद हैं—एक बार जून के तपते दोपहर में मुझे एक मजदूर से मिलने का मौका मिला। वह प्याज के साथ भोजन कर रहा था। मैंने उनको कुरेदना चाहा कि तुम प्याज के साथ भोजन क्यों कर रहे हो, और भी अच्छी और सस्ती चीजें हैं। उसने मुझे समझाना चाहा कि आप पढ़े-लिखे लोग हो शायद इसलिए नहीं जानते। तपती लू और गर्मी में प्याज तो 'अमिरत' होता है। बात आई-गई हो गई। मैं इस प्रसंग को भूल जाता यदि पड़ौस में रहने वाली बुढ़िया माँ मुझे मैंथी के लड्डू न खिलातीं। सर्दियों की बात थी। बुढ़िया माँ का लाड़ला पौत्र बीमार था। मैं उसे देखने उनके घर गया। भली प्रकार निरीक्षण-परीक्षण करके मैंने उसके लिये दवा की योजना की और खान-पान सम्बन्धी कुछ निर्देश दिये। इसी बीच बुढ़िया माँ का स्वर सुनाई दिया—वैद्य जी ! मैथी की लड्डू खाकर जाइयेगा। मैंने घर पर ही बनाये हैं। उनकी यह बात सुनते ही मेरे आन्दर का चिकित्सक जाग्रत हो गया। मैंने कहा, "आप मैथी के लड्डू क्यों बनाती है ?" उन्होंने जो उत्तर दिया उसे सुनकर मेरा मन प्राचीन आयुर्वेदज्ञ महर्षियों के प्रति कृतज्ञता से भर गया। उन्होंने कहा, "वैद्य जी ! एक तो बुढ़ापा, दूसरे सर्दी की ऋतु और उस पर वात का दर्द। इससे अच्छी और क्या दवा हो सकती है—"नाश्ते का नाश्ता, दवा की दवा।" मैं उनके आयुर्वेद-ज्ञान पर विस्मयविमुग्ध रह गया। बुढापे में व्यक्ति में आयु का प्रकोप होता है, सर्दी में भी वायु के रोग प्रकुपित होते हैं और वह स्वयं वात-रोगी थीं ही।

हमारे प्राचीन महर्षियों ने ऋतुचर्या का जो स्वास्थ्य कलश हमें दिया है, वह अमृत से भरा हुआ है। यह ऋतुचर्या एक जीवन पद्धति है जिसे अपनाकर व्यक्ति स्वस्थ, सुखी और दीर्घायु हो सकता है। मौसमी रोग, 'वायरल फीवर' आदि का प्रभाव उन्हीं व्यक्तियों पर पड़ते देखा गया है, जो ऋतुओं के अनुसार अपने खान-पान और रहन-सहन में परिवर्तन नहीं करते। ऋतुचर्या का अर्थ ही है—ऋतुओं के विज्ञान को समझकर अपनी दिनचर्या, खान-पान एवं रहन-सहन निश्चित करना।

समय भगवान है—हमारे प्राचीन महर्षियों ने काल को भगवान कहा है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय—सब काल के अधीन हैं। समयानुसार कार्य करने से ही सुफल की प्राप्ति होती है और जो कालचक्र के विज्ञान को बिना समझे कार्य करते हैं उनको उनका अनिष्टकारी परिणाम भुगतना पड़ता है। किसी कवि ने कहा है।

काल को जिसने न समझा है, उसे मिटना पड़ा है।
बच गया तलवार से तो, फूल से कटना पड़ा है॥

स्वास्थ्य का भवन तो पूरी तरह ऋतुचर्या की नींव पर ही टिका है। 'यत्पिण्डे तत्ब्रह्माण्डे' अर्थात् जैसा हमारा शरीर है, वैसा ही यह ब्रह्माण्ड है। हमारे शरीर की रचना पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश और वायु तत्व से हुई है। यह ब्रह्माण्ड भी इन्हीं तत्वों से बना है। अतः स्वस्थ रहने और दीर्घ जीवन पाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति का रहन-सहन, खान-पान आदि प्रकृति और ऋतुओं के अनुसार हो, उनमें सामञ्जस्य बना रहे। चरक सूत्र अ. 7–60 में चरकाचार्य लिखते हैं–

आहाराचारचेष्टासु सुखार्थी प्रेत्य चेह च।
परं प्रयत्नमातिष्ठेद् बुद्धिमान् हितसेवने॥

अर्थात् इस संसार में सुखी जीवन जीने की इच्छा रखने वाले बुद्धिमान पुरुष को अपने आहार आचार और सभी चेष्टायें हितकारक रखने का प्रयत्न करना चाहिए। आयुर्वेद आयु के हित-अहित, सुख-दुःख आदि के अमर सन्देश से भरा पड़ा है। चरक सूत्र. अ. 7–55 में लिखा है कि विद्वान पुरुषों के उपदेशों का पालन कर मनुष्य रोगों से बचता है और उत्पन्न हुए रोगों को शान्त करता है। जैसा कि स्पष्ट है—

आप्तोपदेश प्रज्ञानं प्रतिपत्तिश्च कारणम्।
विकाराणामनुत्पत्तावुत्पन्नानां च शान्तये॥

उचित आहार-विहार का महत्त्व–हमारे प्राचीन ग्रन्थ पथ्य पालन और सम्यक् आहार-विहार के गौरवगान से भरे पड़े हैं। आधुनिक युग में भी अनुभवी और [illegible] चिकित्सक पुराने और कठिन रोगों के इलाज में दवाइयों से अधिक महत्त्व [illegible]

विहार, पथ्यपालन आदि को देते हैं। असाध्य समझे जाने वाले रोगों में अनन्त प्रभा द्वारा संचालित 'आरोग्य धाम' भी दवाइयों के साथ योगासन, आहार-विहार आदि को भी महत्त्व देता है। इससे कठिन रोग ठीक करने में बहुत मदद मिलती है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ **वैद्य जीवन** में लिखा है—

पथ्ये सति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणैः ॥
पथ्येऽसति गदार्त्तस्य किमौषध निषेवणैः ॥

अर्थात् जो पथ्य को पालन करता है उसे दवा सेवन की क्या आवश्यकता ? पथ्यपालन और सम्यक् आहार-विहार अपनाने से वह पहले तो बीमार नहीं होता, अत: दवा की भी आवश्यकता नहीं पड़ती, और दुर्भाग्य से यदि बीमार भी पड़ जाये तो पथ्यपूर्वक रहने से एक तो बीमारी का आक्रमण साधारण होता है, दूसरे पथ्यपालन करने से बीमारी अपने आप ठीक हो जाती है। अतः दवा इसके लिए व्यर्थ है। इसके विपरीत जो पथ्यपालन नहीं करता उसके लिए भी दवा व्यर्थ है। अच्छी से अच्छी दवा सेवन करते हुए यदि पथ्यपालन न किया जाये तो दवा फायदा नहीं करेगी। क्योंकि रोगों का कारण—अपथ्यपालन और मिथ्या आहार-विहार के रहते हुए और कारण के नष्ट किये बिना रोग को जीत पाना असम्भव है। **चरक संहिता** में भी यही बात कही गई है—

विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्तते ।
न तु विहीनानां भेषजानां शतैरपि ॥

अर्थात् परहेजपूर्वक औषधि सेवन करने से ही रोगी स्वस्थ हो सकता है। परहेज न करने पर सैकड़ों औषधियाँ भी उसे अच्छा नहीं करतीं।

ऋतुओं का प्रभाव—ऋतुओं का व्यक्ति के शरीर पर गहरा प्रभाव पड़ता है। सर्दी आते ही व्यक्ति की इच्छा गर्म और गहरे रंगों के कपड़े पहनने की होती है, जबकि गर्मी में वह हल्के रंगों के सूती कपड़े पहनना चाहता है। गर्मी में उसे लस्सी-शर्बत अच्छे लगते हैं, जबकि सर्दी में गर्म पेय उसे अपनी ओर खींचते हैं। क्यों ? गर्मी व वर्षा में उसकी पाचन शक्ति या पाचकाग्नि मन्द हो जाती है जबकि सर्दी में अग्नि तेज हो जाती है। यही स्थिति त्रिधातुओं या त्रिदोषों की होती है। ऋतुओं के अनुसार निम्नांकित सारिणी से समझा जा सकता है—

दोष	संचय	प्रकोप	शमन
वायु	ग्रीष्म	वर्षा	शरद
पित्त	वर्षा	शरद	हेमन्त
कफ	हेमन्त	वसन्त	ग्रीष्म

जैसा कि सुश्रुत स्थान से स्पष्ट है—

हरेद्वमन्ते श्लेष्माणं पित्तं शरदि निर्हरेत ।
वर्षा शमयेद्वयुं प्राग्विकारसमुच्छ्रियात् ॥

अर्थात् वसन्त में प्रकुपित श्लेष्मा का, शरद में पित्त का और वर्षा में वायु का प्रशमन करना चाहिए । और यदि संचय काल से ही ऐसी चर्या रखी जाये जिससे दोष संचय ही नहीं हो तो रोग होने का प्रश्न ही नहीं होगा ।—स्पष्ट है—

यास्मिन्य स्मिननृतौ ये ये दोषा कुप्यन्ति देहिनाम् ।
तेषु-तेषु प्रदातव्या रसास्ते ते विजानता ॥।

सु. उ. त.

इसी प्रकार जड़ी-बूटियों और खाद्य पदार्थों के भी अपने प्रभाव होते हैं । स्वास्थ्य के लिए इन वात-पित्त-कफ में सन्तुलन व सामंजस्य स्थापित करना पड़ता है । उदाहरण के लिए वर्षा ऋतु में शरीर में पित्त का संचय होता है और वर्षा के बाद शरद में पित्त दोष प्रकुपित होता है, यदि वर्षा और शरद में पित्त को संचित और प्रकुपित करने वाले पदार्थों का सेवन किया जाये तो दोष वैषम्य' (वात-पित्त-कफ में विषमता-असन्तुलन) होकर रोग पैदा हो जायेगा । जैसा चरक संहिता सूत्र 9/4 में लिखा है—

विकारो धातु वैषम्य साम्य प्रकृति रुच्यते ।

अर्थात् धातुओं (वात-पित्त-कफ) में विषमता होने से रोग और धातुओं की साम्यावस्था प्रकृति या स्वास्थ्य है । सुश्रुत संसिता सूत्र स्थान 15/49 से भी स्पष्ट है—

समदोष समाग्निश्च समधातुमल क्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रिमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

अर्थात् जिस व्यक्ति के दोष (वात-पित्त-कफ) समान दशा में हैं, अग्नियाँ समान स्थिति में हैं (अग्नियाँ न विषम हैं, न तीक्ष्ण हैं और न मन्द हैं ।) रसरक्तादि सातों धातुयें समान रूप से पुष्ट हैं (रक्त कम है और चर्बी बढ़ी हुई हैं यह स्थिति रोग का प्रतीक है), मल मूत्र विसर्जन की क्रिया ठीक हो, इन्द्रियाँ, मन और आत्मा प्रसन्न दशा में हो, वही व्यक्ति स्वस्थ है ।

ऋतुचर्या के विज्ञान को समझ लेने पर स्वस्थ और निरोग रहते हुए हो वर्ष की आयु प्राप्त की जा सकती है ।

ग्रीष्म ऋतु में स्वस्थ कैसे रहें

सुश्रुताचार्य ने स. सूत्र 6–31 में ग्रीष्म ऋतु का चित्रण करते हुए लि

ग्रीष्मेतीष्णांशुरादित्यो मरुतो नैऋतोऽसुखः ।
भूस्तप्तासरितस्तव्यो दिशः प्रज्वलिता इव ।।

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में सूर्य तेज किरणों वाला हो जाता है, नैर्ऋत्य कोण (दिशा) का जलाने वाला भीषण त्रासदायक पवन चलता है । पृथ्वी तपने लगती है, नदियाँ सूखने लगती हैं और सभी दिशायें अग्नि के समान जलती हुई मालूम होती हैं । सम्पूर्ण जड़-चेतन एवं वायुमण्डल पर इस ऋतु का निम्न प्रभाव होता है—

1. वातावरण में एवं प्राणियों-वनस्पतियों में जलीय अंश सूखने लगता है ।

2. शरीर की स्वाभाविक स्निग्धता एवं गुरुता के स्थान पर रूखापन बढ़ जाता है, फलस्वरूप शरीर में कफ धातु की कमी हो जाती है और वायु का संचय होने लगता है । शरीर एवं वातावरण में उष्णता मौजूद रहने के कारण वायु का प्रकोप नहीं होने पाता ।

ऐसी स्थिति जल या अधिक जलीय अंश रखने वाले, उष्णता निवारण के लिए शीतल प्रभाव रखने वाले, रूक्षता व लघुता के दुष्परिणामों को रोकने के लिए स्निग्ध व मधुर प्रभाव वाले आहार-विहार का सेवन करना चाहिए । **चरक संहिता सू. 6—27** में इस ऋतु की विशेषताओं व आहार-विहार का चित्रण करते हुए लिखा है—

मयूखैर्जगतः स्नेहं ग्रीष्मे पेपीयते रविः ।
स्वादुशीतं द्रवं स्निग्धमन्नं पानं तदा हितम् ।।

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी तेज किरणों से जड़-चेतन जगत का स्नेह (द्रव अंश) सोख लेता है । अतः इस काल में मधुर, शीतगुण वाले, स्निग्ध व द्रव पदार्थों का अधिक सेवन करना चाहिए । **अष्टांङ्ग हृदय** के अनुसार भी मधुर रस वाला, लघु (हल्का और सुपाच्य) स्निग्ध (चिकनाई युक्त) शीतल व तरल पदार्थों का सेवन करना चाहिए स्पष्ट है—

भजेन्मधुरमेवान्नं लघु स्निग्धं हिमं द्रवम् ।

द्रव, मधुर-स्निग्ध-शीतल भोजन

ग्रीष्म ऋतु में हमारे शरीर का जलीय अंश कम हो जाता है । वातावरण में भी आर्द्रता की कमी हो जाती है । हरे-भरे मैदान, तालाब आदि भी सूखने लगते हैं अतः यह आवश्यक है कि हम जल, शर्बत, छाछ, दूध, गन्ने का रस, फलों के रस, लस्सी, शिकंजी व रसदार पदार्थों का अधिक सेवन करें । कृत्रिम व रासायनिक पदार्थों से बने पेय पदार्थ इन वस्तुओं की तुलना में कहीं नहीं ठहरते । वस्तु स्थिति तो यह है कि इन कृत्रिम पेयों का शरीर पर कुप्रभाव पड़ता है और मोतियों की तलाश में हमारे हाथ कंकड़-पत्थर ही लगते हैं ।

इस ऋतु में मधुर व चिकनाई युक्त भोजन करना चाहिए। भोजन सुपाच्य और शीतल प्रभाव वाला होना चाहिए। इस प्रकार के भोजन से न केवल गर्मी से शरीर की रक्षा होगी, अपितु भीषण गर्मी भी शरीर की शक्ति क्षीण नहीं कर पायेगी। इसके साथ ही इस प्रकार के भोजन करने से कफ भी अपनी सम स्थिति में आ जायेगा और वात-पित्त-कफ में समानता स्थापित हो जायेगी। फलस्वरूप रोगों का आक्रमण भी नहीं हो पायेगा। दूध, दही, छाछ, लस्सी, सत्तू, गेहूँ, मूंग की दाल, गन्ने का रस, सन्तरा, ककड़ी, तरबूज, परवल, टिण्डे, लौकी, कच्चा नारियल, (मिश्री या बतासे के साथ) शिकंजी, पोदीना, आंवले का मुरब्बा, सूखे आंवले का चूर्ण, गुलकन्द, पेठे की मिठाई, ठण्डाई, फलों के रस, कच्चे आम का पन्ना, काली मिर्च, जीरा, इलायची, धनिया इन सब पदार्थों का इस ऋतु में विशेष रूप से सेवन करना चाहिए। इनके सेवन से न केवल गर्मी के कुप्रभाव से शरीर की रक्षा होती है अपितु मनुष्य स्वस्थ और बलशाली बना रहता है।

त्याज्य आहार—इन दिनों में खट्टे, कड़ुए, तले हुए, मिर्च, तेज मसाले वाले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए। उड़द, चना व मसूर की दाल, अरबी, बैंगन, शहद, लहसुन, तिल तैल आदि भी वर्जित पदार्थ माने गये हैं। शराब, अण्ड़े, मांस, आदि का प्रयोग रोग बुलाने वाला है।

सम्यक् विहार—इस ऋतु में शीतल, सुगन्धित और खस की टट्टियों से आवृत्त घर या सघन वृक्षों की छाया में रहना उत्तम रहता है। प्रातः ताजा हवा में घूमना व स्नान का विशेष महत्त्व है।

दिन में दो बार शीतल जल से स्नान करना स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा रहता है। ग्रीष्म ऋतु में सोना और विश्राम करना ही श्रेष्ठ होता है। धूप में बाहर निकलने से पूर्व नींबू की शिकंजी या पर्याप्त जल अवश्य पीना चाहिए। इससे धूप व गर्मी से शरीर बचा रहेगा। धूप से बचने के लिए छाते का प्रयोग करना चाहिए। तौलिया या टोपी आदि से सिर ढक कर ही बाहर निकलना चाहिए। शाम को बाग-बगीचे पार्क हरे-भरे स्थानों पर चाँदनी में रहने से तन-मन दोनों स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते हैं।

अनुचित विहार—सुश्रुत संहिता (उत्तर 64-40) में ग्रीष्म ऋतु में वर्जित आहार-विहार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

व्यायाममुष्ण मायासं मैथुनं परिशोषिच।
रसांश्चाग्निगुणोद्रिक्तान निदाघे परिवर्जयेत॥

अर्थात् ग्रीष्म ऋतु में व्यायाम, अग्नि व धूप का सेवन, अधिक श्रम, मैथुन, देह का शोषण करने वाला आहार-विहार, पित्तवर्द्धक कटु, अम्ल और लवण [illegible]

पदार्थों का सेवन वर्जित होता है। उपवास, गर्मजल से स्नान, गर्म हवा में बाहर घूमना, भय, क्रोध आदि इस ऋतु में त्याज्य होते हैं। पसीना सुखाकर ही पानी पानी चाहिए।

सामान्य औषधीय प्रयोग—सूखे आंवले का चूर्ण 1–1 तोला प्रातः सायं लेना हितकर रहता है। रात्रि को सोतें समय गुलकन्द का सेवन निन्द्रादायक, शीतल व कब्जनाशक होता है। पके वेल का शर्वत भी इस ऋतु में पथ्य माना गया है। आंवले का मुरब्बा ग्रीष्म ऋतु में विशेष फलदायक सिद्ध होता है।

वर्षा ऋतु में स्वस्थ कैसे रहें—

अष्टांग हृदय सूत्र 3/42–44 में वर्षा ऋतु के विषय में कहा गया है—

आदानग्लानवपुषामग्नि सन्नोऽपि सीदति।
वर्षासुदोषैर्दुष्यन्ति तेऽम्वुलम्वाम्बुदेऽम्वरो॥
सतुषारेण मरुता सहसा शीतलेन च।
भूवाष्पेणाम्ल पाकेन मलिनेन च वारिणा॥

अर्थात् वर्षा काल में वातावरण, भूमि एवं शरीर आर्द्र रहते हैं, शीतवायु के प्रभाव से ग्रीष्म में संचित हुई वायु प्रवल और पित्त संचित होने लगता है, जठराग्नि मन्द पड़ जाती हैं तथा वर्षा में उत्पन्न अन्न-औषधियाँ अल्प प्रभावशाली होती है।

जलीय अंशों में वृद्धि—वर्षा ऋतु में वातावरण में जलीय अंश में वृद्धि हो जाती है। सूर्य वदलों से ढका रहता है, वर्षा होती रहतीं है अतः वातावरण नम और आर्द्र हो जाता है। सर्वत्र जल ही जल दिखाई देता है। किन्तु दूसरी ओर आकाश वादलों से आच्छादित रहता है, धरती पर हरियाली हो जाती है, नदियां और जलाशय पानी से भर जाते हैं। जल सर्वत्र नव जीवन का संचार कर देता है। कवियों के मन प्रफुल्लित हो उठते हैं और वे गा उठते हैं—

वर्षाकाल मेघ नभ छाये।
गरजत लागत परम सोहाये॥
× × × ×
घन घमण्ड नभ गरजत घोरा।
प्रिया हीन मन डरपत मोरा॥ —तुलसीदास

यह जल जहां तन-मन में नव प्राणों का संचार करता है वहां वातावरण को नम या आर्द्र वनाकर मनुष्य को वीमारी की ओर भी ढकेलता है।

पाचकाग्नि मन्द—शरीर में जलीय अंश की वृद्धि हो जाने के कारण पाचकाग्नि मन्द हो जाती है। खाना-पीना ठीक प्रकार से हजम नहीं होता और भूख भी

कम हो जाती है । वातावरण की आर्द्रता और पाचकाग्नि के दुर्बल हो जाने से त्रिदोष (वात, पित्त व कफ) का सन्तुलन बिगड़ जाता है । ग्रीष्म ऋतु में संचित हुई वात इस ऋतु में प्रकुपित हो जाती है । और बीमारियां घेर लेती हैं । गैस, भूख की कमी, अपच आदि पाचन-संस्थान के रोग एवं वात रोग इस ऋतु में विशेष रूप से हो जाते हैं । चक्रदत्त सूत्राधिकार–32 में उपर्युक्त तथ्यों की ओर ही संकेत किया है—

भू वाष्पत्मेघ निष्यन्दात पाकादम्लाज्जलस्यच ।
वर्षास्वग्नि वले-क्षीणे कूप्यन्ति पवनादय: ।।

उचित आहार—वर्षा ऋतु में पाचकाग्नि में वृद्धि करने वाले और वात को नष्ट करने वाले आहार का सेवन करना चाहिए । अम्ल (खट्टे) तीखे, मधुर और कषाय रस वाले पदार्थों का सेवन इस ऋतु में हितकारी रहता है । जिन पदार्थों में कम जलीय अंश हो उनका सेवन ही इस ऋतु में करना चाहिए । कम मात्रा में घी आदि का सेवन उपकारी रहता है । जौ, गेहूं, पुराने शाली चावल, तोरई, मूँग, सहजना, ताजा दही, छाछ, मीठा आम, दलिया, खिचड़ी, परवल नीम्बू, लौकी अदरक, तुलसी-पत्र, पोदीना आदि का सेवन इस ऋतु में उपयोगी रहता है । वातावरण में अधिक नमी आने पर एक-दो पुती लहसुन का उपयोग लाभप्रद सिद्ध होता है । इस ऋतु में शहद का प्रयोग भी गुणकारी माना गया है ।

इसके अतिरिक्त इस ऋतु में जल पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए । वर्षा ऋतु में जल प्राय: अशुद्ध हो जाता है अत: उबालकर ठण्डा किया हुआ या दुपट साफ कपड़े से छना हुआ जल प्रयोग में लाना चाहिए । जल में थोडी-सी फिटकरी भी डाली जा सकती है । तुलसी की साफ पत्तियां डालकर जल का उपयोग अति श्रेष्ठ रहता है ।

विहार—इस ऋतु में शरीर का घर्षण, उबटन. तेल मर्दन, स्नान, गन्धयुक्त पदार्थों का लेप, हल्के व स्वच्छ सूती वस्त्र धारण करना चाहिए । चारपाई या ऊँचे स्थान पर सोना उचित रहता है । इसके साथ ही इस ऋतु में संयमित जीवन बिताना चाहिए । मच्छरदानी लगाकर सोना या सोने से पूर्व थोड़ा-सा सरसों का तेल मलना चाहिए । स्मरण रखिये कि ऑडोमास या जहरीला धुआं हानिकारक होते हैं ।

सामान्य घरेलू प्रयोग—वर्षा ऋतु में तुलसी सोंठ, दालचीनी और लोंग की चाय का सेवन अच्छा रहता रहता है । पंचकोल चूर्ण, हिग्वाष्टिक चूर्ण, लवण भास्कर चूर्ण आदि का प्रयोग भी भोजन के बाद उपयोगी रहता है । दिन में किसी भी समय तुलसी के 5–7 पत्ते खाना मलेरिया का उत्तम प्रतिषेधक उपाय है । एक-एक चम्मच मैथीदाने का चूर्ण इन दिनों 1-2 सप्ताह अवश्य सेवन करें । इससे वात का शमन हो जायेगा ।

निषेध—वर्षा ऋतु नव जीवन का संचार करती है । अतः जहां पशु-पक्षी और वनस्पतियों के लिए यह जीवन-दाता है वहां अनेक प्रकार के हानिकारक छोटे-छोटे जीव-जन्तु, कीटाणु आदि भी इस ऋतु में खूब पनपते हैं । अतः वासा, रखा हुआ, खुला हुआ भोजन इस ऋतु में वर्जित होता है । इस ऋतु में गन्दगी से बचाव विशेष रूप से करना चाहिए । अधिक व्यायाम, अधिक जल या जलीय अंश रखने वाले पदार्थों का सेवन, दिन में सोना, ओस में सोना, असंयम, धूप में घूमना, अधिक गरिष्ट भोजन करना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक माने गये हैं ।

इस प्रकार सम्यक् आहार-विहार के सेवन करने और अनुचित आहार-विहार के त्यागने से वर्षा ऋतु में पूर्ण स्वस्थ रहकर प्रसन्न मन से इसके मनोहारी दृश्यों और प्रकृति की अनुपम छटा का आनन्द लिया जा सकता है ।

शरद ऋतु में स्वस्थ कैसे रहें—

वर्षा ऋतु के बाद शरद ऋतु आती है । इस ऋतु में सूर्य की किरणें तेज हो जाती हैं । फलस्वरूप वर्षाकाल में संचित हुए पित्त का प्रकोप होने लगता है । वमन, उबकाई व पित्त से पैदा हुए वायरल फीवर, मलेरिया आदि का भी इन दिनों प्रकोप होता है । इसके लिए पित्त नाशक पदार्थों एवं आहार-विहार का सेवन करना चाहिए ।

पित्त दोष कैसे दूर करें— वर्षाकाल समाप्त होते ही एक दिन का उपवास करें और इस दिन फलों के रस, सब्जियों का सूप, नींबू की शिकंजी, दोपहर से पहले ताजा छाछ का सेवन करें अथवा एक समय थोड़ी-सी खिचड़ी खायें । रात को गर्म जल से 10 ग्राम पंचसकार चूर्ण सेवन करें । दो-तीन दिन बाद फिर यही क्रम दोहरायें । इससे पेट साफ हो जायेगा और संचित पित्त भी दूर हो जायेगा । पित्त दोष दूर करने के लिए दूसरा उपाय यह है कि प्रातः उठते ही 1–2 गिलास जल पियें और शौचादि से निवृत्त होकर गले में अंगुली डालकर जल को बाहर निकालने का प्रयत्न करें । दो-चार दिन बाद यह क्रिया पुनः करें । सितम्बर-मास में रात को 50 ग्राम गुलकन्द खाकर ऊपर से गर्म दूध पियें । यह प्रयोग दो तीन बार करें । श्वेत कांच की बोतलों में पानी भरकर चांदनी रात में रख दिया करें और प्रातः काल उसका सेवन करें । नींबू और आंवले का मुरब्बा या चूर्ण (मिश्री मिला हुआ) पित्त-शमन करने के लिए श्रेष्ठ रहते हैं । शीतऋतु शक्ति संचय करने ऋतु मानी जाती है । अतः शीत आने से पहले अपने शरीर को उर्वरा बना लेना चाहिए । तात्पर्य पित्त दोष व शरीर में जमा गन्दगी दूर कर देनी चाहिए । प्रातःकाल ठण्डे जल के साथ और रात को गर्म जल या दूध के साथ एक-एक चम्मच त्रिफला चूर्ण मिश्री मिलाकर सेवन करने से उक्त दोष दूर हो जाते हैं और व्यक्ति का शरीर हेमन्त और शिशिर का स्वागत करने को तैयार हो जाता है ।

शीत ऋतु-शक्ति संचय की ऋतु

हेमन्त और शिशिर ऋतुओं को सर्दी का मौसम माना जाता है । अगहन से फाल्गुन (नवम्बर से फरवरी) तक का मौसम स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए सबसे अधिक उपयोगी माना जाता है । वुद्धिमान व्यक्ति इस ऋतु में पर्याप्त शक्ति का संचय कर लेते हैं । इस ऋतु में हमारी पाचन शक्ति अत्यन्त तीव्र हो जाती है । खाने-पीने में हमारी रुचि बढ़ जाती है । हम जो कुछ खाते-पीते हैं, वह अपेक्षाकृत अच्छी तरह से पच जाता है । अत: इस समय आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

उपयुक्त आहार—इस ऋतु में जठराग्नि प्रवल होने के कारण पौष्टिक आहार का सेवन करना चाहिए । घी, दूध, मलाई, वादाम व अन्य सूखे मेवे, सेव, केले, खजूर, शहद, गुड़, गजक, मूंगफली, उड़द, रवड़ी, छैना आदि का आवश्यकतानुसार सेवन करना चाहिए । पौष्टिक चीजों का सेवन धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए । इस सम्बन्ध में निरन्तर ध्यान रखना चाहिए कि कब्ज न हो पाये । इसलिए पौष्टिक चीजों के साथ-साथ शोधक वस्तुओं का सेवन भी करते रहना चाहिए । गाजर, मूली, मैथी, पालक, वथुआ, पपीता, अमरूद, चीकू, सन्तरा आदि सब्जियों और फलों के सेवन करने से शरीर का शोधन होता रहेगा, कब्ज नहीं रहेगी और पौष्टिक पदार्थों के सेवन का पूरा लाभ मिलेगा ।

पौष्टिक औषधियां—शीतऋतु में असगन्ध, मूसली, शतावरी, वंगभस्म, कौंच के बीज, शिलाजीत चन्द्रप्रभावटी, च्यवनप्राश आदि पौष्टिक दवाओं का सेवन करते समय निरन्तर यह ध्यान में रखना चाहिए कि कब्ज तो नहीं रहती भूख लगती है या नहीं आदि ।

सूत्र रूप में इस ऋतु में मधुर, स्निग्ध (चिकनाई युक्त), गर्म और पौष्टिक पदार्थों का सेवन हितकारी होता है । कड़वे, चरपरे, कषैले, रूखे, शीतल और वायु कारक पदार्थों का सेवन इस समय सर्वथा त्याज्य होना चाहिए । चरक संहिता में इन पदार्थों का सेवन न करने का स्पष्ट निर्देश है—

कटुतिक्तकषायाणि वातलानि लघूनि च ।
वर्जयेदन्न पानानि शिशिरे शीतलानि च ॥

चरक सूत्र 6–21

रोग निवारण के लिए घरेलू दवायें—इस समय छोटी हरड़ व पीपल का चूर्ण सुवह-शाम 3–3 ग्राम जल से लेते रहने से कफ, खांसी, वुखार आदि का प्रकोप नहीं होता । इसके साथ पाचन शक्ति भी तीव्र रहती है और खाया-पिया अंग को लगता है । तुलसी, लौंग, अदरक, सौंठ, दाल-चीनी, मुलहटी, वड़ी इलायची आदि का सेवन भी इस ऋतु में उपयोगी होता है । शीतऋतु में कफ का संचय होता है जो

वसन्त में प्रकुपित होकर रोग पैदा करता है। इसके लिए हरड व छोटी पीपल का प्रयोग अति श्रेष्ठ उपाय है।

व्यायाम—यह ऋतु व्यायाम के समस्त लाभ प्रदान करती है। इससे न केवल पाचन शक्ति बढ़ती है अपितु सर्दी में खाये हुये पौष्टिक पदार्थ पचते हैं। और पेट भी साफ रहता है। ग्रीष्म ऋतु में गर्मी अधिक पड़ती है अतः हल्के व्यायामों की आवश्यकता है। सर्दी में सभी प्रकार के व्यायाम करने चाहिये। भ्रमण, सूर्य नमस्कार, योगासन, दण्ड बैठक व सभी प्रकार के खेलों को इन दिनों उचित स्थान देना चाहिये। प्रातःकालीन धूप में तेल की मालिश विशेष लाभदायक होती है। एक सप्ताह की मालिश ही अपना चमत्कार दिखा देती है। इससे त्वचा स्निग्ध, (रूखापन समाप्त होता है) कोमल व कान्तियुक्त बन जाती है। हड्डियां लचीली और शरीर पुष्ट हो जाता है। सप्ताह में एक दिन उबटन करके स्नान करना भी श्रेष्ठ फल देता है।

स्नान—स्नान करने से पूर्व अपनी हथेलियों से सम्पूर्ण शरीर को रगड़ लेना चाहिए। वृद्ध, कमजोर, रोगी और बालकों को छोड़कर यदि ताजा जल से स्नान करें तो स्नायुमण्डल अधिक सशक्त बनता हैं और स्नान के पूरे लाभ मिलते हैं। सर्दी में स्नान न करना सर्दी को निमन्त्रण देने के समान है। अतः सर्दी के भय से स्नान न करना बुद्धिमानी नहीं है।

वस्त्र—सर्दी में सामान्यतः ऊनी या रुई युक्त वस्त्र धारण करने चाहिए। किन्तु हर समय वस्त्रों से लदा रहना भी ठीक नहीं है। जहां वायु का प्रवेश अधिक न हो वहां कम वस्त्रों में धूप का सेवन अत्यन्त उपयोगी रहता है। शरीर की स्वाभाविक रोग प्रतिरोधक शक्ति क्षीण न हो, इसका ध्यान रखना चाहिए। अधिक सर्दी हवा व रात में बाहररहना हानिप्रद है। हर समय घर के अन्दर स्वयं को रजाइयों व हीटरों में बन्द रखना भी बुरा है। सर्दी में पैरों को पानी व ठण्ड से बचाना बहुत आवश्यक है क्योंकि ठण्ड का असर प्रायः पैरों के माध्यम से होता है।

त्वचा—सर्दी में ठण्डी हवाओं का त्वचा पर हानिकारक प्रभाव होता है। त्वचा रूखी हो जाती है और फट जाती है। अतः ठण्डी हवा से बचाव तो आवश्यक है ही, साथ ही वैसलीन, क्रीम आदि का प्रयोग भी उचित है। गुलाबजल 50 ग्राम, ग्लीसरीन 25 ग्राम व नींबू रस साढ़े बारह ग्राम इन सबको मिलाकर रखलें। रात्रि को सोते समय इसका प्रयोग करने से सर्दीली हवाओं से त्वचा की रक्षा होती है और त्वचा कोमल चिकनी और कान्तियुक्त बनी रहती है।

दिन में सोना व कार्य—सर्दी में दिन में नहीं सोना चाहिए। इससे कफ प्रकोप होता है। आलस्य, सिर दर्द व अरुचि पैदा होते हैं। इस ऋतु में खूब परिश्रम व कार्य करके धन-धान्य व सफलता अर्जित करनी चाहिए। शरीर, मन, बुद्धि, मौसम हर दृष्टि से यह ऋतु अनुकूल रहती है।

सामान्य घरेलू उपचार—1. बच्चों को प्राय: इस ऋतु में सर्दी, बुखार, खांसी, कफ के प्रकोप अधिक रहते हैं। ऐसी स्थिति में तुलसी के दो पत्ते व पान के दो पत्ते, अदरक 5 ग्राम का रस, लौंग दो, बड़ी इलायची के 10 दाने पीसे हुये व शहद 10 ग्राम। 3 वर्ष से अधिक के बच्चे को दिन में तीन बार और इससे कम आयु के बालक को इससे आधी खुराक देने पर उपर्युक्त रोग दूर होते हैं। हरड, पीपल, लौंग व जायफल समभाग मिला-पीसकर आयु के अनुसार आधा ग्राम तक दिन में तीन बार शहद से देने से सर्दी के सभी रोग दूर होते हैं।

इस ऋतु में बड़े व्यक्तियों को भी खांसी, जुकाम, बुखारादि हो जाते हैं। उनके लिए एक अति श्रेष्ठ उपाय है—गुलबनपसा, अडूसा, खूबकला, मुनक्का व लिसोढ़ा समभाग लेकर 1 तोला दवा का काढ़ा बनाकर पीने से उक्त रोग दूर होते हैं।

इस प्रकार उचित आहार-विहारादि अपनाने से शीत ऋतु धन-धान्य, स्वास्थ्य, बुद्धि, स्मृति एवं सदाचरण प्राप्त करने वाली मानी गई है।

आपके जीवन में भी वसन्त की बहारें

शीतऋतु के बाद ऋतुराज वसन्त का आगमन होता है। इस ऋतु में प्रकृति अपने पूरे यौवन पर होती है। शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन चलता है। कहीं कोयल की कुहू-कुहू मन को लुभाती है तो कहीं भौंरों का मधुर गुंजार हृदय में संगीत रस भर देते हैं। पालास, कमल, मौलश्री, आम्र आदि वृक्षों के मन का उत्साह फूल बनकर डालियों पर अठखेलियां करने लगता है। प्रकृति का यह अद्‌भुत श्रृङ्गार और रूप निखार व्यक्तियों के मन को भी आनन्दित करता है। आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत संहिता सूत्र 6–28 में यही उल्लेख है—

वाति कामिजनान्द जननोऽनंग दीपन:।
दाम्पत्योमानभिदुरो वसन्ते दक्षिणोऽनिल: ।।

यह उल्लेख किया जा चुका है कि शीतऋतु में सम्यक आहार विहार अपनाने से कफ का संचय नहीं हो पाता। किन्तु शीतऋतु की यह स्वाभाविक प्रवृति है कि यह शरीर में कफ संचित करती है जो वसन्त में सूर्य की तीव्र किरणों व गर्मी के कारण प्रकुपित होता है और खांसी, जुकाम, वायरल फीवर एवं अन्य श्लेष्मिक बीमारियों को जन्म देता है। जैसा कि अष्टांग हृदय सूत्र अ. 12–21 में उल्लेख है—

"शीतेनयुक्त स्निग्धाद्या: कुर्वते श्लेष्मणश्चयम्"

इसी अध्याय में आगे कहा गया है कि स्निग्धादि गुणों का उष्ण गुण से संयोग होने से कफ का प्रकोप होता है—'उष्णेन कोप' (वही)। यही बात महर्षि चरक ने भी कही है—

वसन्ते निचित: श्लेष्मा दिनकृद्भाभिरी रित ।
कायाग्नि बाधते रोगांस्तत: प्रकुरुते बहुन ।।

चरक सूत्र6–22

अर्थात् हेमन्त में संचित हुआ कफ वसन्त में सूर्य–किरणों से प्रेरित होकर जठराग्नि मन्द कर देता है और अनेक प्रकार के कफज रोगों को जन्म देता है।

कफ का शमन करें—कफ के संचय को रोकने एवं शमन करने हेतु जनवरी के अन्तिम पन्द्रह दिन और फरवरी के पहले 15 दिन सेवन करने के लिए एक अति श्रेष्ठ निर्भय उपाय दिया जा रहा है। **इसके प्रयोग से कफज रोग, मौसमी रोग व वायरल फीवर पास नहीं फटक सकते। जनवरी में त्रिफलाचूर्ण 5–5 ग्राम व छोटी पीपल 1–1 ग्राम पिसी हुई सुबह और रात गर्म पानी के साथ पन्द्रह दिन सेवन करें। फरवरी माह के प्रथम सप्ताह में रात्रि में दो तोला एरण्ड तेल दूध में मिलाकर पीयें या गर्म पानी के साथ पंचसकार चूर्ण एक तोला का सेवन करें।** इस दिन रात्रि को नाम मात्र का हल्का भोजन करें। तीसरे दिन से त्रिफला चूर्ण 5–5 ग्राम व शुद्ध शहद 10–10 ग्राम सेवन करें आधा घण्टा बाद गर्म जल या गर्म दूध पियें। आयुर्वेद ने वसन्त के आहार-विहार के सम्बन्ध में सन्देश दिया है—

गुर्वम्लस्निग्धमधुरं दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ।।

अर्थात् वसन्त में भारी-गरिष्ठ, चिकने व मीठे पदार्थों का सेवन एवं दिन में सोना बन्द कर देना चाहिए। फल और हरी सब्जियों का प्रयोग अधिक करना चाहिए। क्योंकि फल व हरी सब्जियां कफ निस्सारक होते हैं। सौंठ, अदरक, लौंग, तुलसी, अजवायन, हल्दी, मैथी आदि का प्रयोग हितकारक होता है। प्रात: पर्याप्त मात्रा में जल पीकर शौचादि के बाद गले में अंगुली डालकर जल को वमन करने का प्रयत्न करना चाहिए। दो-चार दिन के अभ्यास से पिया हुआ जल पेट से निकलने लगता है। इस क्रिया से कफ दोषों का शमन हो जाता है।

प्रभावी औषधीय प्रयोग—मौसमी रोगों व वायरल 'फीवर से बचने के लिए प्रात:काल सौंठ, पीपल और काली मिर्च पीसकर रख लें। यह त्रिकुटा चूर्ण है। 3 ग्राम प्रात: काल ताजा जल से लें और रात को इतनी ही मात्रा में 5 ग्राम त्रिफला-चूर्ण में मिलाकर गर्म पानी के साथ सेवा करें। यह एक चमत्कारी घरेलू प्रयोग है और अनेक बार का आजमाया हुआ है।

आयुर्वेद का प्रसिद्ध सूक्त है—

ऋतुनां लक्षण ज्ञात्वात तस्व द्विधामाचरेत

अर्थात् ऋतुओं के लक्षण जानकर उनके अनुसार आचरण करने से व्यक्ति स्वस्थ, सुखी और निरोग रहकर "जीवेत शरद शतकं" की उक्ति चरितार्थ करता है। समुद्र के मथने पर अमृतकलश निकला था। ऋतुओं के गर्भ में भी स्वास्थ्य का अमृत कलश छिपा है। □

8
आहार प्राणियों का प्राण है

अच्छा स्वास्थ्य, दीर्घ जीवन और सच्चा सन्तोष पाने के लिए हमें सबसे पहले स्वास्थ्य के आधारभूत स्तम्भों पर विचार कर लेना चाहिए।

भोजन स्वास्थ्य का पहला स्तम्भ है।

भोजन के विषय में आयुर्वेद में कहा गया है कि—

आहारः प्राणिनः सद्यबल कृच्छेद्धारकः।
आयुस्तेजः समुत्साह् स्मृत्योजोऽग्निवर्धनः।।

अर्थात् भोजन ही प्राणियों को नया बल और देह धारण करने की शक्ति देने वाला है। आहार से आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज तथा शरीराग्नि की वृद्धि होती है।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए भोजन की आवश्यकता और महत्व से प्रायः सभी परिचित हैं। केन्द्रीय खाद्य अनुसंधान विभाग के पूर्व निदेशक डॉ. स्वामीनायन ने एक बार कहा था, "पिछले पचास साल में आहार और पोषण सम्बन्धी जो नया ज्ञान हमें मिला है, उससे यह सिद्ध हो गया है कि पौष्टिक आहार स्वास्थ्य की रक्षा, व्यक्तिगत शक्ति और चुस्ती बढ़ाने के लिए नितान्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में जो छानबीन भारत में की गई है, उससे पता चलता है कि सर्व साधारण के खान-पान में अनेक प्रकार की त्रुटियां हैं, जिनके कारण यहां का व्यक्ति बीमार और परेशान रहता है।"

सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. सतीश चन्द्र दास का कथन भी इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण है। वे लिखते हैं, "मेरी राय में स्वास्थ्य की पहली सीढ़ी भोजन है, पर इसकी ओर लोग बिल्कुल ध्यान नहीं देते। अच्छे स्वास्थ्य के लिए भोजन बिल्कुल दुरुस्त होना चाहिए। इससे मेरा अर्थ है—1. भोजन की किस्म अच्छी हो, 2. मात्रा उचित हो, 3. खाने वाले को यह पता हो कि किन-किन खाद्यों का आपस में मेल है और किन-किन का नहीं। भोजन के इन नियमों में से यदि किसी की भी अवहेलना की जायेगी तो रोग अवश्य होगा।

सुप्रसिद्ध भोजन शास्त्री अर्नाल्ड इहरिट ने अपनी विख्यात पुस्तक आहार चिकित्सा में लिखा है—"........इसलिए जब तक आहार पर पूरा ध्यान नहीं दिया जायेगा, तब तक सारी चिकित्सा पद्धतियां आरोग्य प्रदान करने से विफल होती रहेंगी।

आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित 'भोजन के विज्ञान' तक आज का विज्ञान भी नहीं पहुंच पाया है। इस दिशा में पर्याप्त प्रयत्न हुए हैं, यह प्रसन्नता की बात है। गीता जैसे अध्यात्म और दर्शन की कृति में भगवान कृष्ण ने भोजन को मन की प्रवृत्तियों के अनुसार तीन भागों में विभक्त किया है।

सात्विक भोजन—वे कहते हैं कि आयु, सात्विकता, बल, आरोग्य, सुख और रुचि बढ़ाने वाले रसदार, चिकने, पौष्टिक और मन को रुचिकर आहार सात्विक लोगों को प्रिय होते हैं।

'आयुः सत्त्वबलारोग्यं सुख प्रीति विवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धा स्थिराह्या आहाराः सात्विक प्रियाः॥
—गीता

घी, दूध, छाछ, मक्खन, दही, फल, सब्जी, अन्न, दालें, मेवे आदि भोजन इस कोटि में आते हैं। इस प्रकार का भोजन सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

राजस भोजन—तीखे, खट्टे, खारे, बहुत गर्म, चरपरे, रूखे, दाहकारक आहार राजस लोगों को प्रिय होते हैं और वे दुःख शोक तथा रोग उत्पन्न करने वाले होते हैं।

कटुम्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्ण रूक्ष विदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्ट दुःख शोकामयप्रदाः॥ —गीता

तामस भोजन—पहर भर से पड़ा हुआ, नीरस, दुर्गन्धित, बासी जूठा, और अपवित्र भोजन तामसी प्रकृति के लोगों को प्रिय होता है—

यातयामं गतरसं पूति पर्यूपितं च यत्।
उच्छिष्ट मपि चामेध्यं भोजन तामसप्रियम्॥ —गीता

इस प्रकार गीता में श्रेष्ठ, मध्यम और निकृष्ट तीनों प्रकार के भोजन का सुन्दर चित्रण हुआ है। इसके साथ ही एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथ्य की ओर संकेत किया गया है। वह तथ्य है कि भोजन मनुष्य के विचारों को भी प्रभावित करता है। सात्विक भोजन से सात्विकी प्रवृत्ति बनती है और तामसिक भोजन से तामसी प्रवृत्ति। एक प्रसिद्ध उक्ति भी है—**जैसा खाये अन्न, वैसा होये मन**। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यक्तित्व के निर्धारण में भोजन की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

भोजन कैसा हो—भगवान कृष्ण ने गीता में सात्विक मनुष्यों के लिए जिस भोजन का उल्लेख किया है, वह सर्वश्रेष्ठ भोजन है और हर कसौटी पर खरा सिद्ध

होने वाला है । यह सात्विक भोजन शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य के लिए हितकारी है और मन में सात्विक वृत्ति का विकास करने वाला है । गीता में वर्णित सात्विक भोजन को दो भागों में बांटा जा सकता है—1. परिणाम के आधार पर—अर्थात् जो भोजन आयु, बल, सत्व, आरोग्य, सुख और आनन्दप्रद है, वही भोजन श्रेष्ठ है । 2. प्रकार के आधार पर—अर्थात् जो भोजन रसदार, पौष्टिक, चिकना और रुचिकर हो वही श्रेष्ठ है ।

इन आधारों पर यदि आदर्श आहार की एक तालिका बनाई जाये तो वह अनिवार्यतः आधुनिक भोजनशास्त्रियों, शरीर विज्ञानियों और प्रकृतिशास्त्रियों के अनुरूप होगी । घी, दूध मक्खन, दही, छाछ, फल, सब्जियां, अन्न आदि भोजन इसी कोटि में आयेगा और यह भोजन हर कसौटी पर आज भी सर्वोत्तम है ।

भोजन सन्तुलित हो—आधुनिक शरीर शास्त्रियों ने मनुष्य की शारीरिक मानसिक आवश्यताओं को देखते हुए सन्तुलित भोजन की आवश्यकता पर बल दिया है । वसा, प्रोटीन, शर्करा, खनिज लवण, विटामिन आदि सभी तत्वों की मनुष्य-शरीर को आवश्यकता होती है । किसी एक या अधिक तत्वों की अधिकता या न्यूनता रोगों को जन्म देती है और मनुष्य कमजोर हो जाता है । अतः आवश्यकतानुसार सभी तत्व सन्तुलित मात्रा में मनुष्य को खाद्य पदार्थों के माध्यम से मिलने चाहिए, तभी वह स्वस्थ रहेगा । यही भोजन सन्तुलित भोजन कहलाता है ।

मानव-शरीर वस्तुतः एक मोटर की तरह है । जिस प्रकार मशीन को अपना कार्य करने के लिए ईंधन, कोयला, तेल, बिजली आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार शरीर को भी कैलोरीज (शक्ति या ईंधन) की आवश्यकता है । भोजन से उसे शक्ति मिलती है । एक दिन के लिए आवश्यक 'कैलोरीज' यदि कोई मनुष्य केवल घी से प्राप्त करे तो वह अस्वस्थ हो जायेगा । इसलिए सन्तुलित भोजन में विभिन्न प्रकार के एवं सभी खाद्य-तत्वों को प्रदान करने वाले खाद्य-पदार्थों को शामिल किया जाता है ।

सन्तुलित भोजन की विशेषतायें

शरीर बनाने वाला भोजन—इसमें वह भोजन आता है जो प्रोटीन-बहुल होता है, जैसे—दूध, दही, पनीर, दालें, सोयाबीन, अण्डे आदि ।

शक्तिप्रद भोजन—इसमें वसा युक्त व शर्करा युक्त खाद्यान्न आते हैं । घी, तेल, गेहूं, चावल, अन्न, गुड़, चीनी, शहद आदि ।

सुरक्षाप्रद भोजन—ऐसा भोजन जो रोगों से हमारी रक्षा करता है सुरक्षा प्रद भोजन होता है । प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण जिन पदार्थ

वही सुरक्षाप्रद भोजन होता है। दूध,फल, सब्जियां आदि इसी प्रकार के खाद्य पदार्थ हैं।

विविधतायुक्त भोजन—अनाज, दालें, चावल, दूध और दूध, के उत्पाद, फल, सब्जियां, सूखे मेवे आदि सबका समावेश सन्तुलित भोजन में होता है।

भोजन दोषों में समानता स्थापित करने वाला हो

पहले लिखा जा चुका है कि आयुर्वेद के अनुसार दोषों (वात-पित्त-कफ) की सामानता पर ही शारीरिक स्वास्थ्य निर्भर है। दोषों के अनुसार भोजन के अनेक प्रकार होते हैं—वात वर्धक, पित्त वर्धन, कफ वर्धक, वात नाशक, पित्त नाशक, त्रिदोष नाशक आदि। इसी प्रकार भोजन के छः रस होते हैं—मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा), तिक्त (तीखा), कषाय (कसैला), कटु (कड़ुआ) और लवण (नमकीन)। किस ऋतु में किस दोष से सम्बन्धित और किस रस से युक्त भोजन करना चाहिये। इसका विशद विवेचन हम इसी लेखमाला के अन्तर्गत 'ऋतुचर्या' में करेंगे। यहां **चरक संहिता, सूत्रस्थान**, अ.–8 का यह कथन उल्लेखनीय है—

"यदाहारजातमग्निवेश ! समांश्चैव शरीर धातून् प्रकृतौ स्थापयति विषमांश्च समीकरोतीत्येतद्धितं विद्धि" अर्थात् जो आहार समावस्था में स्थित शरीर की धातुओं (वात, पित्त, कफ तथा रस रक्तादि धातुओं) को प्रकृति अर्थात् ठीक अवस्था में रखता है और विषम हुए धातुओं को समअवस्था में ले आता है, वही उत्तम है।

भोजन में अम्ल-क्षार का सन्तुलन हो

प्राकृतिक चिकित्सा के विशेषज्ञों के अनुसार फल, सब्जियां, दूध आदि पदार्थ शरीर में क्षार बनाते हैं और चीनी, मिठाइयां, गरिष्ठ और तले हुए पदार्थ अम्ल बनाते हैं। अम्ल बनाने वाले पदार्थों का अधिक सेवन ही आधुनिक युग में मानव स्वास्थ्य का सबसे बड़ा दुश्मन और रोगों का प्रमुख कारण है। अतः स्वस्थ रहने के लिए हमें ऐसा भोजन करना पड़ेगा; जिससे शरीर में अम्ल और क्षार का सन्तुलन बना रहे।

अतः आयु, बल, देश, काल, ऋतु, आरोग्य आदि को ध्यान में रखते हुए ऐसा भोजन लेना चाहिए जिससे अग्नि सम रहे, धातुओं व दोषों में समानता रहे, इन्द्रियों में निर्मलता रहे और मानसिक एवं आत्मिक प्रसन्नता की अनुभूति हो।

भोजन के विज्ञान पर चर्चा करते समय यह समझना आवश्यक है कि भोजन के प्रमुख तत्त्व क्या हैं, मनुष्य के शरीर के लिए उनका क्या महत्त्व है, वे किन-किन खाद्य पदार्थों में पाये जाते हैं तथा उनकी कमी से कौन-से रोग हो जाते हैं ?

आहार के प्रमुख तत्व

1. प्रोटीन—शरीर के विकास के लिए यह आवश्यक है। चोट, बीमारी, अधिक श्रम आदि से नष्ट हुए तन्तुओं का पुनः निर्माण करना इसका प्रमुख कार्य है।

दूध, दही, पनीर, गेहूं, दालें, सोयाबीन, अंडा, मांस-मछली इसके अच्छे स्रोत हैं।

शरीर को यदि उचित मात्रा में प्रोटीन न मिले तो व्यक्ति का विकास रुक जाता है, भार कम हो जाता है और शरीर में सूजन भी हो जाती है।

2. वसा—इससे शरीर को शक्ति, ऊर्जा और ताप मिलता है। घी, तेल, दूध, तिल, काजू, बादाम, मूंगफली, अखरोट आदि से वसा प्राप्त होती है।

इसकी कमी से शारीरिक भार कम हो जाता है और त्वचा शुष्क हो जाती है। बहुत कम परिश्रम से ही मनुष्य थक जाता है।

यह दुष्पाच्य होती है, अतः आयु, बल, पाचकाग्नि, परिश्रम करने की वृत्ति आदि को ध्यान में रखकर ही इसकी मात्रा निश्चित करनी चाहिए। इसका अन्धाधुन्ध प्रयोग हानिकारक रहता है।

3. कार्बोहाइड्रेट्स या कार्बोज—यह शक्ति का साधन है। श्रम करने पर सबसे पहले कार्बोज का ही उपयोग होता है। इसके साथ ही थक जाने पर यह मनुष्य को तुरन्त शक्ति देता है।

चीनी, गुड़, गन्ना, आलू, केला, खजूर, अंगूर, शहद, मुनक्का, शकरकन्द, चुकन्दर आदि से मनुष्य-शरीर को प्रचुर मात्रा में कार्बोज प्राप्त होता है।

इसकी कमी से दुर्बलता, मूर्छा तथा शरीर भार में कमी हो जाती है।

4. विटामिन्स—मनुष्य को स्वस्थ और निरोग रखने के लिए विटामिनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। भोजन में इनका अभाव रहने पर हमारी जीवन-शक्ति या रोगप्रतिरोधक क्षमता तेजी से घटने लग जाती है। शरीर भी क्षीण और दुर्बल हो जाता है। सम्भवतः इन्हीं गुणों के कारण इनको जीवन-तत्त्व या खाद्य प्राण के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

(i) विटामिन 'ए'—आंखों की अच्छी रोशनी और स्वस्थ त्वचा के लिए यह आवश्यक है। दांत और अस्थियों में संक्रमण के विरुद्ध प्रतिरोधक क्षमता का विकास करती है।

दूध, दही, मक्खन, घी, पालक, गाजर, सेम, बथुआ, चौलाई, पपीता, हरी-पीली सब्जियां, मछली का तेल, आम आदि पदार्थ विटामिन 'ए' के अच्छे स्रोत हैं।

इसकी कमी से त्वचा, खुरदरी और शुष्क हो जाती है। अतिसार, रतौंधी, सर्दी, फ्लू, खाँसी, न्यूमोनियाँ, आँखों की रोशनी में कमी और प्रकाश के प्रति संवेदनशीलता आदि लक्षण इस विटामिन की कमी से प्रकट होते हैं।

(ii) विटामिन 'बी' समूह—थायमिन, रिवोफ्लेविन, निकोटीनिक एसिड, पाइरिडोक्सिन, विटामिन बी 12 आदि—ये सब विटामिन 'बी' समूह में आते हैं। मुँह, जीभ, होंठ, त्वचा, आँखों, पाचन संस्थान आदि को स्वस्थ और सबल रखने के लिए इस समूह के विटामिनों का प्रयोग उपयोगी है।

दूध, दही, खमीर, अनाज, अंकुरित दालें, हरी-पत्तीदार शाक-सब्जियाँ, बिना पालिश का चावल, गेहूं का चोकर आदि पदार्थों में यह विटामिन प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

बेरी-बेरी, अजीर्ण, कब्ज, भूख न लगना, खून की कमी आदि रोग इस विटामिन 'बी' समूह की कमी के कारण पैदा हो जाते हैं।

(iii) विटामिन 'सी'—हड्डियों तथा दाँतों के निर्माण में विटामिन 'सी' की प्रमुख भूमिका रहती है। इसके साथ ही यह बीमारियों से हमारी रक्षा करता है और हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ता है।

आँवला इसका सर्वोत्तम स्रोत है। इसके अतिरिक्त नींबू, टमाटर, सन्तरा, मौसमी, अमरूद, अनानास, खीरा आदि पदार्थों में भी यह बहुतायत से पाया जाता है।

स्कर्वी नामक बीमारी इस विटामिन की कमी से होती है। मसूड़े फूलना, रक्त बहना, दाँत और हड्डियों का उचित विकास न होना आदि रोग इसी विटामिन की कमी से होते हैं।

(iv) विटामिन 'डी'—दाँतों के स्वास्थ्य और हड्डियों की रचना तथा इनके पोषण के लिए विटामिन 'डी' का सेवन आवश्यक है।

इसकी कमी से बच्चों को **रिकेट्स** और स्त्रियों को **'आस्टियोमेलासिया'** रोग हो जाते हैं। इसके साथ दाँतों में कीड़ा लगना, हड्डियों का कमजोर या टेढ़ा पड़ जाना आदि हड्डी सम्बन्धी रोग भी इस विटामिन की कमी के प्रतीक हैं। कैलसियम, फास्फोरस आदि लवण जातीय पदार्थों के शोषण और परिपोषण के लिए भी विटामिन 'डी' के सेवन की आवश्यकता रहती है।

दूध, अण्डे का सफेद भाग, लिवर आयल, मछली का तेल, सूर्य की किरणें, हलकी धूप में तेल मालिश—इनके सेवन से शरीर को पर्याप्त मात्रा में विटामिन 'डी' प्राप्त हो जाता है। बच्चे और गर्भवती महिलाओं के लिए इस विटामिन की विशेष रूप से आवश्यकता होती है।

(v) विटामिन 'ई'—प्रजजन के लिए यह आवश्यक है। इसके अभाव में गर्भस्राव हो जाता है। गर्भस्थ शिशु की मृत्यु भी इसी की कमी से होती है।

नारियल, केला, दूध, अण्डा, हाथ की चक्की का आटा, मूँगफली, सोयाबीन आदि पदार्थ इसके अच्छे स्रोत हैं।

(vi) विटामिन 'के'—चोट लगने या अन्य कारणों से जब रक्त बह रहा होता है तो यह रक्त को गाढ़ा-थक्का (क्वाटिंग) बनाकर उसके प्रवाह को रोक देता है। इसकी कमी से शरीर से अधिक रक्त निकल सकता है और मनुष्य खून को कमी, मूर्छा, कमजोरी आदि का शिकार हो सकता है।

5. खनिज लवण—कैलसियम, फास्फोरस, लोहा, आयोडीन, सोडियम, क्लोराइड, फ्लोराइड, पोटाशियम इत्यादि की गिनती प्रमुख खनिज लवणों में की जाती है। ये रोगों और कमजोरी से शरीर की रक्षा करके मनुष्य को स्वस्थ रखने में सहायक होते हैं। इसीलिए इनको रक्षक पदार्थ भी कहते हैं।

आधुनिक विज्ञान के द्वारा आविष्कृत इन खनिज लवणों की जानकारी हजारों वर्ष पहले हमारे आयुर्वेद-मनीषियों को थी। शंखभस्म, प्रवाल भस्म, शुक्ति भस्म, कौड़ी भस्म, मोती भस्म—ये सभी दवाइयाँ कैलशियम का श्रेष्ठतम और सौम्यतम रूप हैं। इसी प्रकार लौह भस्म, मण्डूर भस्म आदि दवायें आधुनिक भाषा में 'आयरन' हैं। ये दवायें अत्यन्त सुपाच्य हैं और इनका बहुत कम भाग मलादि के साथ निकलता है जबकि आधुनिक आयरन के कैपसूल अत्यन्त दुष्पाच्य होते हैं और उनको रोगी सहन भी नहीं कर पाते।

दाँतों और हड्डियों के निर्माण और स्वास्थ्य के लिए, रक्त के निर्माण और उसको स्वस्थ रखने के लिए, गल ग्रन्थि को स्वस्थ रखने के लिए–इन खनिजों पदार्थों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती हैं। दूध, दही, छाछ, पनीर, हरी-पत्तीदार शाक-सब्जी दालें, अनाज, मेवे, फल, गुड़, प्याज आदि में ये खनिज लवण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

आदर्श खाद्य पदार्थों का चयन

मनुष्य के शारीरिक स्वास्थ्य और मानसिक प्रसन्नता के लिए भोजन के प्रमुख तत्वों की जानकारी होना और अपनी आयु, ऋतु, व्यवसाय, शक्ति आदि के अनुसार उपयुक्त पदार्थों का चयन करना आवश्यक है। उपर्युक्त जानकारी को यदि हम संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करें तो आदर्श खाद्य पदार्थों की हमारी तालिका इस प्रकार की होगी—

1. अन्न—अनाज, दालें चावल आदि।
2. दूध, दही, छाछ, मक्खन, पनीर, घी-तेल आदि।

3. हरी पत्तेदार व अन्य प्रकार के शाक-सब्जियाँ तथा आलू, प्याज, चुकन्दर आदि ।

4. मौसमी फल ।

5. सूखे मेवे, गिरियाँ, मूँगफली आदि ।

माँस-अण्डों-मछली आदि के सम्बन्ध में हमारा मत है कि ये पौष्टिक होते हुए भी शरीर पर अपना हानिकारक प्रभाव छोड़ते हैं । इसके सेवन से शरीर में विजातीय पदार्थों, विषों और गन्दगी का संग्रह हो जाता है । इसके साथ ही रक्त अम्लीय बनाकर शरीर को रोगी बनाने में भी इन पदार्थों का हानिकर प्रभाव सामने आया है ।

ये तामसिक प्रधान भोजन की श्रेणी में आते हैं अतः मन को तामसी वृत्ति का बनाकर अनेक प्रकार के विकार पैदा करते हैं ।

इसके साथ ही **अहिंसा परमोधर्म** के देश में इन पदार्थों का सेवन उचित नहीं ।

इस सम्बन्ध में आयुर्वेद ने सामान्य स्थिति में माँसादि-सेवन को उचित नहीं माना । किन्तु देश, काल, परिस्थिति, रोग आदि की आवश्यकता को देखकर इन पदार्थों के सेवन को उचित बताया है ।

आयुर्वेद के इस मत की व्याख्या करें तो कह सकते हैं कि क्षयी (टी. बी. का रोगी) को अण्डा, मछली, माँस का सूप उपयोगी रहेंगे,—क्योंकि ऐसे रोगी की जीवन-रक्षा ही सबसे प्रथम उपाय है । इसी प्रकार जहाँ चावल–मछली अधिक होते हैं, वहाँ इन पदार्थों का सेवन उचित माना जा सकता है । किन्तु सभ्यता की अन्धी दौड़ में बहकर इनका सेवन तन-मन को विकारग्रस्त ही बनाता है ।

विविधता आवश्यक

उपर्युक्त पाँचों श्रेणियों में से आवश्यकतानुसार अपने और अपने परिवार के लिए उपयुक्त खाद्य पदार्थों का चयन कर लेना चाहिए किन्तु प्रत्येक श्रेणी के खाद्य पदार्थों में भी विविधता आवश्यक है । जैसे गेहूं को मुख्य अन्न मानते हुए जौ, चना, मक्का, बाजरा आदि का प्रयोग भी आवश्यकता और मौसम के अनुसार करना चाहिए । कई अनाज मिलाकर या दालें मिलाकर भी उपयोग में लाई जा सकती हैं । फलों और सब्जियों की सलाद, सूप आदि को भोजन में उचित स्थान देना चाहिए । जिस मौसम में जो वस्तु पैदा होती है, उसे प्रकृति का अमूल्य वरदान समझकर अपनी प्रकृति के अनुसार अवश्य सेवन करना चाहिए ।

इन बातों को अपनाने से भोजन न केवल रुचिकर लगेगा अपितु पौष्टिकता और आरोग्य प्रदान करने वाला भी होगा ।

भोजन की गुणवत्ता

अच्छे खाद्य पदार्थ ही उपयोगी होते हैं। सड़े-गले, वासी, खुले रखे हुए, अधिक कच्चे या कृत्रिम रूप से गैस से पके हुए, अग्नि पर कम या अधिक पकाये हुए, छिलके उतारे हुए, उबले हुए, ऐसी द शा में अनेक खाद्य पदार्थ अपनी गुणवत्ता को खो देते हैं। अतः खाद्य पदार्थों के चयन से लेकर भोजन पकने और भोजन करने तक की सम्पूर्ण प्रक्रिया में यह ध्यान रखना आवश्यक है भोजन की गुणवत्ता वनी रहनी चाहिए।

भोजन की मात्रा

आहार पुष्टिदायक और तुरन्त वल देने वाला है। देहधारक अर्थात् शरीर को टिकाने वाला है। आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज और अग्नि को वढ़ाने वाला है। एक ही वाक्य में कहें तो कह सकते हैं कि **भोजन प्राणियों का प्राण है।** किन्तु भोजन सम्वन्धी नियमों का पालन न किया जाये, तो यही भोजन प्राणघातक विष वन जाता है, अतः भोजन कैसा हो, यह जान लेने के वाद दूसरा महत्त्वपूर्ण चरण है भोजन की मात्रा निर्धारित करने की। इस सम्वन्ध में आयुर्वेद और सुप्रसिद्ध आहार शास्त्रियों का एक ही मत है—**जो हम खाते हैं, ताकत उससे नहीं मिलती, वल्कि** हमें ताकत मिलती है उससे, जिसे हम पचाते हैं। इसलिए भोजन के सम्वन्ध में हमारा स्वर्णिम सूत्र है—**"खाइये कम और पचाइये ज्यादा।"**

आयुर्वेद में इस सम्वन्ध में तीन प्रकार के आहारों का वर्णन मिलता है—हीनाहार, मिताहार अतिआहार। हीनाहार से तात्पर्य भूख, आवश्यकता और अग्नि से कम भोजन करने से है। मनुष्य की अग्नि आहार को पचाती है, आहार के क्षीण या कम होने से वह दोषों को पचाती हैं, दोषों के क्षीण होने पर वह धातुओं को और धातुओं के क्षीण होने पर वह मनुष्य को ही खा जाती है। अतः हीनाहार त्याज्य है। हीनाहार से वल, सौन्दर्य और ओज की हानि होती है, अतः हीनाहार त्याज्य है। तो क्या अति आहार (भोजन की अधिक मात्रा) उचित है ? इस सम्वन्ध में आयुर्वेद के दृष्टिकोण को समझ लेना आवश्यक हैं। आयुर्वेद के अनुसार अधिक भोजन करने से व्यक्ति के आमाशय, यकृत, आंते आदि अंग कमजोर हो जाते हैं और उनमें भोजन को पचाने की शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगती है। कब्ज, अजीर्ण, मन्दाग्नि और अरुचि रोग आ घेरते हैं। शरीर, मल और विजातीय द्रव्यों का भण्डार गृह वन जाता है। और इस प्रकार यह संग्रह हुआ मल प्रकुपित होकर त्रिधाधुओं (वात-पित्त-कफ) में असंतुलन पैदा करके रोग पैदा कर देता है—जो भोजन प्राणियों के [illegible] था वही विष वन जाता है। इस प्रकार आयुर्वेद ने हीनाहार और

दोनों को ही प्राणघातक और रोगोत्पादक माना है और परिमित आहार को श्रेष्ठ बताया है।

परिमित आहार क्या है—अब प्रश्न उठता है कि यह कैसे जाना जाये कि परिमित आहार क्या है, हम परिमित आहार कर रहे हैं या नहीं। इस सम्बन्ध में आयुर्वेद का मत है कि भोजन की जितनी मात्रा सुगमता से पच जाये, वही परिमित आहार है। भोजन की उचित मात्रा निर्धारित करने के लिए तीन प्रकार के महत्त्वपूर्ण कारकों को समझ लेना चाहिए। **पहला कारक है भोजन करने वाला**। भोजन की मात्रा निश्चित करने से पहले व्यक्ति को अपनी भूख, बलाबल, अग्नि, आयु, व्यवसाय आदि कारकों पर विचार कर लेना चाहिए। कम भूख लगने पर, कमजोरी में, मन्दाग्नि के रोगी को या मानसिक श्रम अधिक करने वाले व्यक्ति को भोजन की मात्रा कम रखनी चाहिए। इसके विपरीत स्थिति में भोजन की मात्रा में वृद्धि की जा सकती है। भोजन की मात्रा के सम्बन्ध में कुछ व्यक्तियों को भ्रम रहता है। वे चपातियों या कचौड़ियों की संख्या से भोजन की मात्रा निश्चित करते हैं। यह दोषपूर्ण है। **दूसरा महत्त्वपूर्ण कारक है भोजन का प्रकार**। भोजन—सम्बन्धी नियमों का कड़ाई के साथ पालन करते हुए भी अनेक स्थितियां ऐसी उत्पन्न हो जाती हैं जब हमें हमारा मनचाहा भोजन नहीं मिलता और भोजन सम्बन्धी सारे नियम धरे के धरे रह जाते हैं। एक सामाजिक प्राणी के रूप में और आज के जटिल युग में व्यक्ति अनेक शादी–उत्सवों में भाग लेता है, उसे यात्रायें करनी पड़ती हैं, ऐसी स्थिति में उसे अपने खान-पान में अनिवार्य रूप से परिवर्तन करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में अधिक वसायुक्त, गरिष्ठ और तला हुआ भोजन कम मात्रा में खाना खाना चाहिए और दूसरे दिन उपवास, फलाहार या खिचड़ी-दलिया आदि अर्द्ध ठोस आहार लेना चाहिए। भोजन की मात्रा निश्चित करने के लिए समय, **ऋतु या वातावरण की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है**। गर्मियों में कम भोजन जिसमें तरल पदार्थ अधिक हों किन्तु सर्दियों में उतने भोजन से काम नहीं चलेगा। इसी प्रकार रात में कम भोजन करना चाहिए।

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए भोजन की मात्रा के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि 75% भाग भोजन से और शेष की पूर्ति वायु और जल से की जानी चाहिए। कुछ प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञानी आहार, जल और हवा का अनुपात 50 और 25-25 रखना उत्तम स्वास्थ्य के लिए आवश्यक मानते हैं।

आदमी न तो खाने के लिए पैदा हुआ है और न उसे खाने के लिए जीना ही चाहिए। स्वास्थ्य और निरोग शरीर उसके शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता और आत्मिक शान्ति का आधार है तथा इसी से पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति की जा सकती है, यह सोचकर उसे भोजन की मात्रा निश्चित करनी चाहिए।

भोजन कब खायें— भोजन के समय के विषय में हमारे आयुर्वेदज्ञों ने अत्यन्त सारगर्भित मत व्यक्त किया है। आयुर्वेद के अनुसार व्यक्ति को पूर्व में किये गये भोजन का अच्छी तरह पाचन होने और खूब भूख लगने पर भोजन करना चाहिए। महात्मा गांधी के 'भोजन सम्बन्धी मेरा दर्शन' में व्यक्त विचार इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण हैं। वे लिखते है—"जब मैं अपने पुराने दिनों पर विचार करता हूं, तो मुझे हँसी आती है। और कुछ बातों पर तो लज्जा आती है। उन दिनों प्रातः मैं चाय पीता, दो-तीन घण्टे बाद नाश्ता करता, एक बजे भोजन करता, 3 बजे चाय पीता और शाम को 6–7 बजे भोजन करता। उस समय मेरी दशा बड़ी दयनीय थी। मेरे शरीर पर बहुत-सी अनावश्यक चरबी थी और दवा की बोतलें सदा मेरे साथ रहती थीं। ठीक-ठीक खा-पाने के लिए यदा-कदा जुलाब लेता रहता था। यद्यपि उस समय मेरी पूरी जवानी थी, किन्तु आज के मुकाबले एक तिहाई काम भी मैं नहीं कर सकता था। प्रसिद्ध आहारशास्त्री श्री बर्नर मैकफैडेन कहते है—"इसमें सन्देह नहीं कि, आहार सम्बन्धी भूलों में सिरताज है, बिना भूख के खाना। यह पेट के प्रति सरासर अन्याय है।" केवल इसलिए भोजन गले के नीचे उतार लेना कि खाने का समय हो गया है, स्वास्थ्य के प्रति खिलवाड़ है। अधिकांश व्यक्ति एक मिथ्या धारणा के शिकार रहते हैं कि ताकत बनाये रखने के लिए या रोग प्रतिरोधक शक्ति बढ़ाने के लिए खाना आवश्यक है। आधुनिक पाश्चात्य विज्ञानियों ने यह भ्रम और भी बढ़ाया है। इस सम्बन्ध में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि पूर्व में किए गये भोजन के पचने और भूख लगने पर किया गया सम्यक आहार ही बल, स्मृति, ओज और रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ाने वाला होता है। इसीलिए हमारे आचार्यों ने इसे 'प्राण' की संज्ञा दी है। लेकिन इसकी विपरीत स्थिति में यही भोजन विष बन जाता है।

मानव की कृत्रिम सभ्यता से दूर पशु-पक्षियों के प्राकृतिक जीवन को यदि हम देखें तो पायेंगे कि बीमार होने या भूख न लगने पर पशु-पक्षी पहला काम यह करते हैं कि वे भोजन करना छोड़ देते हैं। सामान्य अवस्था में भी भूख लगने पर ही भोजन करना उनकी सहज प्रवृत्ति होती है। किन्तु आज के मनुष्य-जीवन को देखकर ऐसा लगता है, मानों वह खाने के लिए ही जी रहा है। इससे यह प्रश्न भी जुड़ा हुआ है कि भोजन कितनी बार करें। इस सम्बन्ध में एक विचार प्रकट करना कठिन है। इस सम्बन्ध में आयु एक महत्त्वपूर्ण घटक है। छोटे बच्चों और बढ़ते हुए बच्चों को अधिक बार भोजन करना चाहिए। शारीरिक श्रम करने वाले, व्यायाम-अभ्यासी और खेलकूद में रुचि रखने वाले व्यक्तियों को दिन में 3–4 बार भोजन करना चाहिए जबकि मानसिक श्रम या कार्यालयों में काम करने वाले व्यक्तियों को 2 बार से अधिक भोजन नहीं करना चाहिए। एक भोजन से दूसरे भोजन के

चार से छः घण्टे का अन्तर अवश्य रहना चाहिए।

भोजन कैसे करें–डॉ. जान हार्वेकेल्लाग ने अपनी आहार शास्त्र की प्रसिद्ध कृति 'द न्यू डायटेटिक्स' में लिखा है—"भोजन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में इस अन्तिम प्रक्रिया का सवसे अधिक महत्व है। यदि आप भोजन के सम्पूर्ण लाभों को प्राप्त करना चाहते हैं तो इसके विज्ञान को समझना होगा।

जहां तक भोजन करने के स्थान का प्रश्न है, यह अत्यन्त स्वच्छ, सुन्दर और सात्विक वातावरण से युक्त होना चाहिए। इससे भोजन में रुचि उत्पन्न होती है और मन प्रसन्न होता है। भोजन प्रारम्भ करने से पूर्व हाथ-मुँह अच्छी तरह से साफ कर लेने चाहिए अन्यथा गन्दगी और रोग के कीटाणु भोजन के साथ पेट में चले जाते हैं और मनुष्य को रोगी वनाने में सहायक वनते हैं। भोजन के समय मन सात्विक विचारों से भरा रहना चाहिये। चिन्ता, क्रोध, तनाव या दुःख की दशा में हमारी अन्तःस्रावी ग्रन्थियों से जो रस निकलते हैं वे भोजन में मिलकर उसे विषाक्त बना देते हैं अतः भोजन के समय मन प्रसन्न और शान्त होना चाहिए। प्रसिद्ध आहार शास्त्री **डॉ. वर्नर मैकफैडेन ने लिखा है—"भोजन के समय उचित मानसिक वृत्ति का अत्य-धिक महत्व है।"** भोजन के समय पूरी तौर से भोजन का स्वाद लीजिए। कुछ और मत सोचिए या करिए। अखवार पढ़ना या गम्भीर वार्तालाप करने से पाचन क्रिया में वाधा पड़ती है। **भोजन करते समय आनन्दित रहने या स्वाद ले लेकर भोजन करने से रसों की स्रोतस्विनी ग्रन्थियां जाग्रत रहती है और भोजन वरदान बन जाता है।**

भोजन का पूरा लाभ लेने के लिए भोजन को अच्छी तरह चवाने के वाद ही निगलना चाहिए। इससे भोजन अच्छी तरह पच जाता है और इससे रस, रक्तादि धातुओं का शीघ्र निर्माण होता है। मुख के 32 दांत इस वात के संकेत हैं कि एक ग्रास को कम से कम 32 वार चवाया जाना चाहिए। भोजन की प्रक्रिया में चवाने का इतया अधिक महत्व है कि भारत के लोक जीवन में इस प्रकार की अनेक उक्तिय प्रचलित हैं। **'आंतों के दांत नहीं होते' और भोजन को पीना चाहिए–दूध को खान चाहिए**—ये दोनों कथन भोजन को चवाने के महत्व पर प्रकार डालते हैं। भोजन को इतना अधिक चवाया जाना चाहिये कि वह पीने लायक हो जाये और दूध क धीरे-धीरे घूँट-घूँट करके पीना चाहिये। इससे लार की ग्रन्थियों से निकला हुअ उपयोगी रस भोजन में मिलकर इसे अधिक उपयोगी और पचने में सरल बना देत है। हड़वड़ी में या जल्दी में कम चवाया हुआ भोजन ज्यादा देर से पचता है औ उचित परिणाम में रस, रक्तादि धातुयें भी नहीं वनती। आज की 'पार्टियों' में भोज रस और स्वाद लेकर नहीं किया जाता अपितु भोजन झपटा जाता है। **डॉ. मैकफैडे कहते है कि भोजन का पूरा लाभ लेने के साथ-साथ भोजन का पूरा आनन्द और रस भी इसे चवाकर खाने से ही प्राप्त होता है।**

आयुर्वेद ने भोजन के बाद जल पीने को मेदकारक मोटापा बढ़ाने वाला और अच्छे पाचन में बाधक माना है। इससे अधिक कफ बनता है और प्रज्ज्वलित पाचकाग्नि मन्द पड़ जाती है। पाचकांगों को अधिक श्रम करना पड़ता है और भोजन का परिपाक भी अच्छी तरह नहीं होता। वास्तव में जो व्यक्ति हड़बड़ी में बिना अच्छी तरह चबाये हुए भोजन करते हैं उन्हें भोजन के समय अधिक पानी पीने की आवश्यकता पड़ती है। प्यास का अनुभव होने पर भोजन के मध्य में या अन्त में एक-दो घूंट पानी पीना उचित रहता है। अधिक पानी पीना निश्चित रूप से उचित नहीं। भोजन करने के एक डेढ़ घण्टे बाद बड़ी जोर से प्यास लगती है और उस समय पानी असीम आनन्द का स्रोत बन जाता है। भोजन में तरल पदार्थ न होने पर पानी पीने में हानि नहीं होती। यदि आप भोजन के समय पानी पीने के अभ्यासी हैं तो भोजन से पन्द्रह-बीस मिनट पूर्व थोड़ा सा गुनगुना पानी पीजिए। इससे आपको लाभ मिलेगा।

'भूख लगने पर भोजन करना चाहिए,' इस कथन में जितनी सच्चाई है, उतनी ही सच्चाई इस कथन में है कि भोजन नियमित समय पर करने से भूख खूब लगती है। निश्चित समय पर पाचक अंग सक्रिय हो उठते हैं और भोजन अच्छी तरह पच जाता है। हमारे आयुर्वेद शास्त्री और आधुनिक युग के प्रसिद्ध आहार-विज्ञानी स्वास्थ्य के लिए भोजन की नियमितता की वकालात करते हैं। किन्तु सुप्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. बर्नाड का मत इससे भिन्न है। उनका कहना है कि भोजन का निश्चित समय होने से व्यक्ति भोजन पर टूट पड़ते हैं और अधिक खा जाते हैं। किन्तु उनका यह विचार मनोवैज्ञानिक समस्या से सम्बन्ध रखता है। 'अधिक न खाना और बिना भूख के न खाना,' यह तो भोजन-शास्त्र का पहला स्वर्णिम सूत्र ही है।

भोजन के सम्बन्ध में एक अन्य महत्वपूर्ण बात का उल्लेख करना भी आवश्यक है। भोजन का पूरा लाभ लेने और उसका पाचन अच्छी तरह से होने देने के लिए यह आवश्यक है कि कि शारीरिक-मानसिक श्रम करने के तुरन्त बाद भोजन न किया जाये। इसके लिए कम से कम आधा घण्टे का विश्राम आवश्यक है। इसी प्रकार भोजन करने के एक घण्टे बाद ही मानसिक श्रम या हलका शारीरिक श्रम करना चाहिये। शरीर-शास्त्र के अनुसार जिस समय शरीर का जो अंग अधिक कार्यशील रहता है, हृदय उसी अंग तक तेजी से रक्त पहुंचाना चाहता है। इस स्थिति में भोजन का पाचन भली प्रकार नहीं होता।

भोजन का विज्ञान वस्तुतः स्वास्थ्य का विज्ञान है। इसको समझकर आचरण करने से व्यक्ति सुखी, स्वस्थ और दीर्घजीवी बन सकता है। तैत्तरीय उपनिषद् का कथन है कि अन्न ही सर्वश्रेष्ठ औषधि है। इसे बुद्धिमान विचार पूर्वक खाते हैं। अविचारी और असंयमी इस अन्न के द्वारा ही खा लिए जाते हैं।

6

स्वास्थ्य के अमोघ अस्त्र

निद्रा, शिथिलन और विश्राम

महर्षि चरकाचार्य ने सुख-स्वास्थ्य के लिए नींद के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है—निद्रायुत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यबलाबलम् अर्थात् सुख-दुःख, पुष्टि-कृशता, बल और अबल नींद के अधीन हैं। उचित प्रकार से सेवन की गई नींद उसी प्रकार सुख और जीवन देती है जैसे यथार्थ सिद्धि से योगी को तत्व-ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'Why we are tired' में डॉ. जोसलिन ने लिखा है—'थकान स्वयं में एक रोग है। यह भी उतनी ही विषाक्त औरहानिकारक है, जितना रोग का विष। नाड़ी मण्डल का कमजोर होना, अन्तस में धँसी थकान, जीर्ण-शीर्ण दौर्बल्य तथा अन्तः शक्ति की कमी आदि एक तरह से थकान के वाइरस हैं ओर यह वाइरस स्वास्थ्य और प्रसन्नता के लिए अन्य वाइरसों की अपेक्षा सबसे अधिक घातक हैं।" इसी प्रकार सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. इमर्सन ने भी अपनी कृति Health for the Having में लिखा है कि थकान इतनी भयानक होती है कि इससे वैसे ही भागने का प्रयास करो जैसे शैतान को देखकर भागते हैं।

क्या थकान से भागना सम्भव है—मनुष्य एक कर्मशील प्राणी है। उद्यम, परिश्रम और कार्य ही उसकी पूजा है। कर्मशीलता सृजन का तीर्थ है। हमारे मनीषियों ने स्पष्ट स्वर में घोषणा की है—"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं" अर्थात् हम कर्म करते हुए सौ वर्ष जीने की इच्छा करें। मानव जीवन की सार्थकता ही कर्म करने में है और कर्मशील रहना उसका स्वभाव है। भगवान ने मनुष्य को यह शरीर कर्मशील रहने के लिए ही दिया है। परिवार, राष्ट्र और समाज को उन्नति की ओर ले जाने वाली महाशक्ति का दूसरा नाम ही कर्मशीलता है। हिन्दी के यशस्वी साहित्यकार नीरज ने श्रम की महत्ता प्रतिपादित करते हुए लिखा है—

"धरती ही है अन्नपूर्णा और श्रम ही भगवान है।
श्रमनिष्ठा के दीप जलें तो घर-घर स्वर्ग समान है॥"

इस प्रकार मनुष्य श्रम से और अन्ततः थकान से तो भाग नहीं सकता। किन्तु डॉ. इमर्सन जब थकान को शैतान समझते हैं तो उनका तात्पर्य है—अपने काम में रस और आनन्द लो, मस्तिष्क को सकारात्मक चिन्तन और विचारों का सतत प्रवाहमान झरना बना लो और उतना कार्य करो कि थकान आप पर हावी न हो पावे।

थकान से मुक्ति का उपाय—जीवन विज्ञान के महान् आचार्य महर्षि चरक ने निद्रा को थकान का अमोघ उपचार माना है। वे कहते हैं—

यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः।
विषयेभ्यो निवर्तन्ते तदा स्वपिति मानवः॥

अर्थात् मन के थक जाने पर जब इन्द्रियां (कर्मेन्द्रियां-ज्ञानेन्द्रियां) अपने-अपने कार्यों से विमुख हो जाती हैं, तब निद्रा आकर उन्हें पुनर्जीवित करती है।

मनुष्य अपने दैनिक जीवन में अनेक प्रकार के कार्य-व्यापार करता है। इन क्रियाओं और चेष्टाओं में उसकी शक्ति निरन्तर क्षीण होती रहती है। उठना-बैठना, पढ़ना-लिखना, काम करना, सोचना, चलना आदि प्रत्येक कार्य शारीरिक और मानसिक रूप से व्यक्ति को थकान की ओर ढकेलता है। इन क्रियाओं से शरीर के घटक और रस-रक्तादि धातु निरन्तर क्षीणता को प्राप्त होते रहते हैं। प्रकृति ने निद्रा के रूप में मनुष्य को ऐसा अद्भुत वरदान दिया है कि परिश्रम से थके और क्लान्त तन-मन निद्रा देवी के क्षणभर के स्पर्शमात्र से ताजगी और स्फूर्ति से भर जाते हैं। वैद्यनाथ के संस्थापक और सुप्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ वैद्य रामनारायण शर्मा ने विश्राम और नींद के प्रसंग में इन्जन का उदाहरण दिया है। वे अपनी प्रसिद्ध कृति आरोग्य प्रकाश में लिखते हैं—"एक कुशल और समझदार ड्राइवर 20–30 मील के सफर के बाद इन्जन की गर्मी को दूर करने के लिए, उसे 5–10 मिनट का विश्राम जरूरी समझता है। इस जरा से विश्राम से ही इन्जन की अनावश्यक गर्मी शान्त होकर उसे नई ताकत मिल जाती है। **जब एक निर्जीव यन्त्र के लिए इतनी सावधानी और विश्राम की आवश्यकता है, तब मानव शरीर तो एक सजीव यन्त्र है, जिसे काम करने के साथ-साथ सोचना भी पड़ता है।**

शरीर स्वस्थ और तरोताजा बना रहे और मन शान्त और निर्विकार रहे, इसके लिए नींद से बढ़ कर कोई दूसरा सर्वसुलभ और प्राकृतिक उपाय नहीं है। स्वस्थ शरीर और शान्त मन ही संसार का सबसे बड़ा सुख है और यह सुख व्यक्ति को निद्रा से प्राप्त होता है। महर्षि चरक ने कहा है—**निद्रायत्तं सुखम्** अर्थात् निद्रा पर सुख निर्भर है। निरन्तर पौष्टिक भोजन का सेवन करते रहने पर भी यदि व्यक्ति को सुख-चैन की नींद प्राप्त नहीं है, तो सपने में भी उसे सुख-चैन नहीं मिल सकता। नींद की कीमत उनसे पूछिए जो सारी रात करवटें बदल-बदल कर गुजार देते हैं। यदि किसी कारण से 1–2 दिन भी जागना पड़ जाये, तो शरीर और मन की क्या स्थिति हो जाती है, यह हम सभी जानते हैं। अनेक धन-कुबेर ऐसे मिल जायेंगे, जो सहस्रों मुद्रायें खर्च करने के बाद भी सुख-शान्ति भरी नींद के लिए तरसते रहते हैं।

शिथिलीकरण—शिथिलीकरण तनाव और थकान का अव्यर्थ उपाय है। मनुष्य तो एक विचारशील प्राणी है अतः शिथिलीकरण के महत्त्व को सम[illegible]है।

किन्तु पशु-पक्षी इसके महत्त्व को न समझते हुए भी शिथिलीकरण करते हैं। घोड़ा लम्बी दौड़ लगाने के बाद जमीन पर निढाल होकर लेट जाता है। इस अवस्था में वह अपने शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ देता है। कुत्ते और बिल्ली भी जब अधिक थक जाते हैं तो खड़े-खड़े ही पहले शरीर को तानते हैं और एकदम ढीला छोड़ देते हैं। ऐसा करने से मांसपेशियों को पूरा आराम मिल जाता है और थकान दूर हो जाती है। कार्य करते-करते जब मन थकने लगे, शरीर के अंग और मांसपेशियाँ अपनी सक्रियता खोने लगें, तब इस अव्यर्थ उपाय को अपनाना चाहिए। सीधे चित्त लेट जाइये और सारे शरीर को एकदम ढीला या शिथिल करके छोड़ दीजिए। मस्तिष्क को भी धीरे-धीरे विचार शून्यता की ओर ले जाइए। यदि प्रारम्भिक दिनों में यह सम्भव न हो तो मन को प्रसन्नता और उत्साह से भर लीजिए और विचार कीजिए कि आपकी थकान दूर हो रही है और आप स्फूर्तमान हो रहे हैं। थोड़ी देर के बाद जब आप उठेंगे ताजगी और स्फूर्ति आपके चेहरे पर अठखेलियाँ कर रही होगी। कार्यालय में भी जहाँ लेटना सम्भव न हो, कुर्सी पर बैठे-बैठे ही जम्हाई लीजिए और कुछ झपकी लेते हुए शरीर को ढीला छोड़ दीजिए। कुछ क्षणों में ही आप ताजगी से भर जायेंगे। सामान्यतः प्रति तीन-चार घण्टे बाद शिथिलीकरण का अभ्यास करके शरीर व मन को विश्राम देना चाहिए। इससे आप नाड़ी मण्डल की उत्तेजना और थकान जो रोगों की जड़ है और धीरे-धीरे शरीर को खोखला बना देती है, से भी बचे रहेंगे और अपने कार्य और व्यवसाय में भी आपको आनन्द आयेगा।

डॉ. सेलयी का कथन भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। वे कहते हैं कि **थकान और तनाव के कीड़ों को कभी अपने पास मत फटकने दो। यदि इनका इन्फैक्शन होने ही लगे तो शिथिलीकरण के एण्टीबायोटिक्स से इनका खातमा करते रहो। आहार-विहार और विचारों को शुद्ध रखो। ऐसा करने से आप सरलता से जीवन के सौ वसन्त देख सकेंगे।** विंस्टन चर्चिल ८0 वर्ष की आयु में भी अपने पद पर रहते हुए सभी दायित्वों को भली-भांति निभाते रहे थे। उन्होंने एक बार कहा था "मैं ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मेरे मन में दिन में दो बार शिथिलीकरण करने की प्रेरणा जगाई।"

अन्त में हम आपको यही सुझाव देंगे कि अपेक्षा से अधिक श्रम न करें—न अधिक काम और न अधिक खेल तथा दिन में दो बार 12–1 बजे और 4–5 बजे के लगभग दस से बीस मिनट तक शिथिलीकरण का अभ्यास अवश्य करते रहें—चाहे तो लेटकर अन्यथा कुर्सी पर बैठे-बैठे ही। ऐसा करते रहने से सुख-स्वास्थ्य के सुन्दर सुमन आपकी जीवन-बगिया में खिलते रहेंगे, और आपका जीवन प्रसन्नता और आनन्द से महक उठेगा।

नींद–प्रकृति का वरदान

नींद प्रकृति माता का सभी प्राणियों को दिया गया एक अनुपम वरदान है। ऐसा लगता है कि नींद के खजाने को दोनों हाथों से लुटाकर प्रकृति ने अपनी असीम ममता का परिचय दिया है। सरल, सहज और स्वाभाविक रूप से प्राप्त होने वाली नींद के लिए मनुष्य को तरसना पड़े यह सचमुच लज्जा की बात है। रात को यदि नींद न आये तो दिन का चैन छिन जाता है और वह व्यक्ति संसार का सबसे निरीह और निर्धन व्यक्ति है जिसके नसीब में न रात की नींद है और न दिन का चैन। पाश्चात्य देशों में ऐसे निरीह लोगों की संख्या करोड़ तक पहुँच चुकी है। भारत में भी लाखों व्यक्ति तारे गिन-गिन कर या करवटें बदल-बदल कर आधी-अधूरी नींद के सहारे दिन काट रहे हैं। एक शोध के अनुसार नींद की दवाओं के उत्पादन में पिछले दशक में जितनी तेजी से वृद्धि हुई है, उतनी ही वृद्धि उससे पूर्व के पचास वर्षों में भी नहीं हुई।

स्थिति इतनी भयानक बनती जा रही है कि दवाओं के अभ्यस्त व्यक्तियों के लिए दवायें बेकार सिद्ध होती जा रही हैं। वैद्यनाथ के संस्थापक प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ स्व० रामनारायण शर्मा ने आरोग्य प्रकाश में लिखा है—"विलासिता के इस मशीन-युग में अन्य महारोगों की तरह अनिद्रा भी समूचे विश्व को अपने भयानक जबड़ों में कसती जा रही है। काम, क्रोध आदि मानसिक विकारों का ताण्डव आज मनुष्य के मस्तिष्क को इतना अशान्त बना चुका है कि उसे प्रकृति के एक स्वाभाविक अवदान नींद के लिए भी तरसना पड़ता है।"

अनिद्रा का भस्मासुर—नींद की समस्या ने वैज्ञानिकों की नींद उड़ादी है। वैज्ञानिक ज्यों-ज्यों इस समस्या को सुलझाना चाहते हैं त्यों-त्यों गुत्थी उलझती जाती है? अनिद्रा के भस्मासुर ने आज व्यक्ति को तो जकड़ ही रखा है, परिवार, राष्ट्र और समाज को भी इसके दुष्परिणाम भुगतने पड़ रहें हैं। कब्ज, प्रमेह, भूख की कमी, निरुत्साह, थकान, खून के विकार, सिरदर्द, तनाव, रक्त चाप आदि बीमारियाँ अनिद्रा की मानस-सन्तानें हैं। वाग्भट के अनुसार—

> निद्राया मोह मूर्धाक्षी गौरवालस्य जृम्भिका।
> अंग मर्दस्य…………………… ॥

अर्थात् नींद के अभाव से मन में मोह, मस्तक व आँखों में भारीपन, आलस्य, जम्भाई और शरीर टूटने जैसे लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसी ग्रन्थ में आगे वर्णन है—

> जाड्यंग्लानिर्भ्रमा त्पक्ति तन्द्रा रोगाश्च वातजाः

अर्थात् शारीरिक जड़ता के साथ मानसिक ग्लानि होने लगती है, मस्तिष्क भ्रमित होने लगता है, पाचन शक्ति अव्यवस्थित हो जाती है और वात सम्बन्धी अनेक रोग पैदा हो जाते हैं।

नींद क्या है—शरीर की चार अवस्थायें होती हैं। जागृत अवस्था में मन और सम्पूर्ण इन्द्रियाँ अपने दैनिक क्रियाओं और जीवन-व्यापारों में लगे रहते हैं। इस अवस्था में अन्तःकरण-बुद्धि (Mind) मेधा (Sub-Conscious Mind) मन और चित्त सभी जागृत अवस्था में रहते हैं—अपने कार्य-व्यापार करते हैं। मन, कामना या संकल्प करता है और ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ भी अपने कार्यों में प्रवृत्त रहती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मनुष्य इस अवस्था में अपने शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक—सभी प्रकार के कार्य-व्यापार करता है।

स्वप्नावस्था में सभी इन्द्रियाँ विश्रामरत रहती हैं और मन क्रियाशील रहता है। निद्रावस्था या सुपुप्तावस्था शरीर की वह स्थिति है, जब मन सहित सम्पूर्ण इन्द्रियाँ कार्यशील नहीं रहतीं। दूसरे शब्दों में मन सहित सभी इन्द्रियों का पूर्ण विश्राम ही निद्रा है। स्वास्थ्य के प्रसंग में निद्रा का प्रसंग केवल सो जाने से नहीं है अपितु परिश्रम से थके-हारे शरीर को पूर्ण विश्राम देने से है। वास्तव में निद्रा शरीर का अनिवार्य पौष्टिक भोजन और चित्त की एक निश्चित वृत्ति है।

नींद के तीन रूप—आयुर्वेद शास्त्र में नींद के तीन रूप बताये गये हैं—1. तामसी या तमोभवा नींद वह है जो मन-शरीर के थक जाने पर कफ के द्वारा पैदा होती है। 2. नशा-सेवन, चोट, सन्निपात आदि रोगों के कारण प्राप्त हुई नींद को **आगन्तुकी नींद** कहते हैं। और **भूतदात्री नींद** सभी प्राणियों का कल्याण करने वाली रात्रि की स्वाभाविक नींद है।

वैज्ञानिक-परीक्षणों से यह भली-भांति सिद्ध हो गया है कि स्वास्थ्य के लिए भोजन के बाद दूसरा स्थान नींद का ही है। थके-हारे मन-शरीर को शक्ति और नवस्फूर्ति प्रदान करने के लिए नींद से अच्छा कोई दूसरा साधन उपलब्ध नहीं है। नवजात शिशु पूरे दिन में लगभग 20–22 घण्टे सोते हैं। माता के अमृतोपम दूध के बाद उनका सबसे अधिक विकास नींद ही करती है। इतना ही नहीं, नींद, जख्म भरने, रोग दूर करने और रोगाणुओं को निष्क्रिय करने का अत्यन्त सुलभ और प्रभावी साधन है। पागलपन, ज्वर, गठिया आदि रोगों में तो नींद का आना एक शुभ लक्षण माना जाता है। आयुर्वेद में नींद की महिमा मुक्त-कण्ठ से गाई गई है। नींद को स्वास्थ्य और आरोग्य की जननी, शक्ति का स्रोत और रोगों को दूर करने वाला माना गया है। चरक संहिता में लिखा है—'**निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम्**' अर्थात् सुख-दुःख, पुष्टि-कृशता और बल-अबल, सब नींद के ही अधीन है। किन्तु ये सारे लाभ गाढ़ी नींद से ही प्राप्त होते हैं। महर्षि चरकाचार्य इसी सन्दर्भ में लिखते हैं—

सैवयुक्ता पुनर्युङ्क्ते निद्रा देहं सुखायुषा ।
पुरुषं योगिनं सिद्ध्या सत्या बुद्धि रिवागता ।।

अर्थात् उचित प्रकार से सेवन की गई नींद उसी प्रकार सुख और जीवन देती है, जैसे यथार्थ सिद्धि से योगी को तत्व ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है ।

नींद का उचित समय—स्वास्थ्य के लिए अच्छी नींद का महत्त्व आज सभी एक मत से स्वीकार करते हैं । किन्तु यह अत्यन्त खेद का विषय है कि आज 'रात को खाओ-पीयो, दिन को आराम करो' की 'कल्चर' मनुष्य से उसकी रात की नींद छीनती जा रही है । प्रकृति ने काम करने के लिए दिन और आराम के करने के लिए रात बनाई है । दिन में सोना और रात में खाना-पीना, मनोरंजन करना या अन्यान्य कार्य करना 'निशाचरी संस्कृति' के प्रतीक हैं । पशु-पक्षी प्रकृति के सबसे अधिक निकट हैं और शाम होते ही वे अपने-अपने घरों को लौटने लगते हैं और रात होते ही सो जाते हैं । इस प्रकार सोने का सबसे उपयुक्त समय रात ही सिद्ध होता है ।

भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः । गीता–5/14

अर्थात् सत्त्व, रजस् और तमस् प्रकृति से उत्पन्न होने वाले तीन गुण हैं । 'नींद तमोगुण प्रधान है और रात में भी तम का साम्राज्य छाया रहता है, अतः सोने के लिए सर्वोत्तम काल रात ही है । सतोगुण प्रधान कार्य सात्विक वातावरण में, रजोगुण प्रधान कार्य राजसिक वातावरण में और तमोगुण प्रधान कार्य तामसिक वातावरण में ही सफलता पाते हैं । अतः स्वास्थ्य और आरोग्य के अभिलाषी को रात्रि जागरण का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए । अंग्रेजी कहावत भी यही निष्कर्ष निकालती है—"Early to bed and eary to rise, makes a man healthy, wealthy and wise."

जागरूक बनें—यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि आज जन-साधारण धीरे-धीरे अपने भोजन विषयक ज्ञान में वृद्धि करता जा रहा है । क्या खायें, कब खायें, कैसे खायें ? आदि बातों के प्रति उसकी जिज्ञासा बढ़ी है । किन्तु यह अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण है कि 'नींद के विज्ञान' के प्रति प्रबुद्ध वर्ग भी अभी अधिक जागरूक नहीं है । यह एक चौंका देने वाला तथ्य है कि बालकों और ग्राम-निवासियों को अलग करने के बाद शेष जनसंख्या में से केवल 15% व्यक्ति ही गाढ़ी नींद का आनन्द ले पाते हैं । अतः आरोग्य और स्वास्थ्य के इस अमोघ वरदान का पूरा-पूरा लाभ उठाने की आवश्यकता है ।

नींद की मात्रा—भोजन की मात्रा की तरह नींद की निश्चित मात्रा भी निर्धारित नहीं की जा सकती । नवजात शिशु के लिए 20–22 घण्टे

आवश्यकता है तो वृद्धावस्था में यह अवधि घटकर 4–5 घण्टे भी मुश्किल से होती है। कठिन शारीरिक श्रम करने वालों के लिए 8 घण्टे चाहिए जबकि बुद्धिजीवियों के लिए 6 घण्टे ही पर्याप्त हैं। बढ़ती आयु में नींद की अधिक आवश्यकता होती है जबकि ढलती आयु में कम नींद ही पर्याप्त मानी जाती है। सामान्यतः वयस्क स्त्री-पुरुषों को अलग-अलग परिस्थितियों में 6 से 8 घण्टे तक अवश्य सोना चाहिए।

अनिद्रा के कारण—अनिद्रा के रोगी हर युग में रहें हैं किन्तु वर्तमान समय में इन रोगियों की संख्या में दिन प्रतिदिन तेजी से वृद्धि हो रही है। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के सुन्दर समन्वय का नाम ही मनुष्य है। इस सन्तुलन के गड़-बड़ाने से व्यक्ति में नाना प्रकार की शारीरिक व मानसिक विकृतियाँ जन्म लेती है।

चरक संहिता का कथन है—

कायस्य शिरसश्चैव विरेचश्छर्दनं भयम।
चिंताक्रोधस्तथा धूमो रक्तमोक्षणं॥
उपवासोऽसुखाशय्या सत्वौदार्यं तमोजयः।
निद्रा प्रसंगमहितं वारयन्ति समुत्थितम्॥
एत एवं च विज्ञेया निद्रानाशस्य हेतवः।
कार्यकालो विकारश्च प्रकृतिर्वायुरेवच॥

अर्थात्—शरीर या शिर का विरेचन, वमन, डर, चिन्ता, क्रोध, आँखों में धुँआ घुसना, अधिक व्यायाम, बुढ़ापा, शरीर या मन के रोग, विविध प्रकार के शूल आदि कारण नींद में बाधा डालते हैं।

इस प्रकार नींद न आने के दो प्रमुख कारण हैं—शरीर सम्बन्धी और मानसिक कारण। आज के समय में देव मन्दिर शरीर तो व्याधि-मन्दिर बन ही गया है, व्यक्ति का मन भी विकार ग्रस्त बनता जा रहा है। वह भौतिक सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने की होड़ में अपने आपको भूलता जा रहा है। चिन्ता, तनाव, क्रोध, भय आदि के कारण वह न सुख की नींद सो पाता और न दिन में चैन से रह पाता।

बढ़ती हुई भोगच्छाओं ने उसके मन की श्रेष्ठता और आत्मा के ऐश्वर्य को उससे छीन लिया है। शान्ति और सन्तोष की छाया तक का स्पर्श ऐसे व्यक्तियों को प्राप्त नहीं होता। दिनों दिन वह संकुचित और स्वार्थी बनता जा रहा है। वह भूल चुका है कि जो सुख देने में है—आत्मदान में है वह सुख प्राप्त करने में नहीं—स्वार्थ में नहीं। सुन्दर सृष्टि हमेशा आत्म-बलिदान चाहती है। अपने प्राणों को संकट में डालकर दूसरों के प्राण बचाने से जो स्वर्गीय सुख मिलता है वह करोड़ों स्वर्ण मुद्रायें

देकर दे भी नहीं खरीदा जा सकता। सदाचार के उपवन में ही सुख, शान्ति और आनन्द के पुष्प महकते हैं। यही उसकी अक्षय निधि है। अपनी इस अक्षय निधि से वह जितनी दूर जायेगा, वह मेले भी अपने आपको अकेला पायेगा; दिन का चैन और रात की नींद उसे स्वप्न में भी नहीं होगी।

आ जा री निंदिया—अच्छी नींद मानव जीवन के लिए अमृत के समान है। दिन के समय कार्य करते रहने से जो शक्ति क्षय होती है, रात्रि को भरपूर नींद लेने से वह समस्त शक्ति पुनः प्राप्त हो जाती है इसलिए गहरी व स्वप्न रहित प्राकृतिक नींद को मनुष्य के सुख-स्वास्थ्य के लिए आवश्यक माना है अतः प्रकृति के इस सहज और अद्‌भुत खजाने का भरपूर उपयोग प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिए। आजकल मानव मन हर समय अशान्त और तनावग्रस्त रहता है। कार्य की व्यस्तता और हर समय का निरर्थक और नकारात्मक चिन्तन मनुष्य की जीवन-बगिया में चुपके से पतझर के बीज डाल आता है और धीरे-धीरे प्रसन्नता और आनन्द के महकते फूलों से लदा उसका जीवन सूखा ठूँठ बनता चला जाता है संवेदनाओं से रहित यन्त्र मानव की तरह।

पिछले पृष्ठों में अनिद्रा के आधारभूत कारणों का उल्लेख किया जा चुका है। अच्छी नींद के लिए उन कारणों का सर्वथा परित्याग तो आवश्यक है ही, साथ ही नीचे लिखे कारणों को भी त्याग देना चाहिए।

अनिद्रा के अन्य कारण—जीवन के प्रति आपका दृष्टिकोण सकारात्मक है या नकारात्मक, आप की दृष्टि व्यक्तियों के गुणों पर अधिक रहती है या उनके दोषों पर। यदि आप नकारात्मक दृष्टि वाले हैं तो स्मरण रखिये हमेशा दुःख, तनाव, क्रोध, द्वेष और अनावश्यक विचारों से आप का मस्तिष्क भरा रहेगा और सुनिद्रा धीरे-धीरे आपसे किनारा कर लेगी।

वस्तुतः जीवन एक सन्तुलन का नाम है। कार्य, अभिरुचि, स्वाध्याय, खेल, मनोरंजन, दैनिक कार्य, नींद आदि सभी को दिन-चर्या में उचित स्थान मिलना चाहिए। कार्य की अधिकता से प्रायः मस्तिष्क असन्तुलित हो जाता है। यह असन्तुलन अनियमितता को भी जन्म देता है। फलस्वरूप व्यक्ति अपने कार्यों को उचित समय पर नहीं कर पाता। यह आदत कालान्तर में अनिद्रा को जन्म देती है।

सोने से पहले मन में अनावश्यक विचारों के आने से भी नींद भाग जाती है। कई व्यक्तियों को दिमाग में किसी कारण वश गर्मी इकट्ठी हो जाती है। आयुर्वेद की भाषा में यह पित्त प्रकोप है। पित्त का प्रकोप भी अनिद्रा का जनक है।

क्या करें यदि निंदिया रानी रूठ जाये

भोजन सम्बन्धी उपाय—1. सात्विक और सन्तुलित आहार अच्छी नींद का पहला सोपान है। फल, सब्जियां, सलाद, सूप, रस, दूध, दही, छाछ आदि

का सेवन करने का अभ्यास बना लेना चाहिए। इससे शरीर स्वस्थ और मन प्रसन्न रहता है। मन की वृत्ति भी सात्विक बनती है। कुछ लोग यह भौंड़ा तर्क देते हैं कि माँस, मदिरा आदि तामसिक प्रकार के भोजन से अच्छी नींद आती है। हमारे विचार से यह स्थिति **'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की'** कहावत को चरितार्थ करती है। मांस-मदिरा के घातक दुष्परिणामों से आज सभी सुपरिचित हैं। नींद का सम्बन्ध प्रमुख रूप से स्नायुतंत्र से है। शराब लिवर आदि अंगों को निष्क्रिय करके और अनेक भयंकर रोगों को जन्म देकर शरीर को खोखला तो कर ही देती है, स्नायुतंत्र को भी बेकार कर देती है। नशीले पदार्थों से नींद का इलाज जीवन के साथ खिलवाड़ और मृत्यु को बुलावा देने के समान है। हाँ, क्षणिक लाभ और जीवन भर का सुख-चैन गँवाना हो तो शराब अच्छा उपाय है।

गरिष्ठ, तले हुए और भारी पदार्थों का अधिक सेवन भी कब्ज, अजीर्ण आलस्य आदि रोगों को जन्म देता है। इन रोगों के रहते अच्छी नींद के सपने देखना मृग मरीचिका के ही समान है। अतः इन पदार्थों का त्याग भी आवश्यक है।

2. भोजन के विज्ञान को पूरी तरह ध्यान में रखें। भूख लगने पर खाना, कम खाना, चबा-चबा कर खाना और प्रसन्न मन स्थिति में खाना—ये चार भोजन के स्वर्णिम सूत्र हैं।

3. सोने के समय तक भोजन का परिपाक-पाचन हो जाने से नींद अच्छी आने में सहायता मिलती है। अतः भोजन सोने (10 बजे) से 2-3 घण्टे पूर्व कर लेना चाहिए। सोने के समय चाय-कॉफी का प्रयोग वर्जित है। हाँ! गुनगुना दूध पिया जा सकता है।

सम्यक विहार—1. प्रातःकाल नियमित रूप से ओस लगी घास पर नंगे पैर टहलना अच्छी नींद का एक श्रेष्ठ उपाय है। शिथिलीकरण या शवासन का अभ्यास अच्छी नींद का एक श्रेष्ठ उपाय है। प्राचीन ऋषियों का यह वरदान तनाव अनिद्रा, चिन्ता, पागलपन आदि मानसिक बीमारियों का अव्यर्थ उपाय है। अनिद्रा की इससे अच्छी दवा संसार की किसी भी पैथी में कोई दूसरी नहीं है।

2. दोपर के भोजन के बाद आधा से एक घण्टे तक विश्राम और रात्रि के भोजन के बाद 1–2 किलोमीटर घूमना नींद लाने में विशेष सहायक होते हैं।

3. सोने से पहले हाथ, पैर और मुँह ठंडे जल से अवश्य धोयें, आँखों को बन्द कर धीरे-धीरे 2–4 मिनट ठण्डे जल के छपके मारें। फिर साफ तौलिये से पोंछ कर लेट जायें। सोने से पूर्व मूत्र त्याग का अभ्यास नियमित रूप से डालें। सोने से पूर्व मूत्रेन्द्रिय को शीतल जल से धोने से अनिद्रा के रोगियों को चमत्कारी लाभ होता है।

4. 'Early to bed and early to rise' अर्थात् 'जल्दी सोना और जल्दी उठना' के सिद्धान्त का पालन अनिद्रा के रोगियों को सदैव करना चाहिए। सुनिद्रा के इच्छुक व्यक्ति को 10 बजे निश्चित रूप से सो जाना चाहिए। नाच-गाना टी. वी.-सिनेमा आदि का कोई भी आकर्षण यदि 10 बजे बाद तक जगने को लुभाये, तो उससे बचना ही श्रेष्ठ है।

5. आयुर्वेद की लोकप्रिय कृति 'आरोग्य प्रकाश' में लिखा है कि शरीर की माँस पेशियों की हरकत अपने आप एक कला है। यह शरीर को सुन्दर, स्वस्थ, और स्फूर्तिवान बनाती है। व्यायाम व खेलों के द्वारा ये लाभ तो मिलते ही हैं, साथ ही शरीर में ऐसी मीठी हल्की थकान भी आती है कि नींद का निमन्त्रण अपने आप मिल जाता है। यही कारण है कि किसान और मजदूर को नींद के लिए कभी तरसना नहीं पड़ता।

सम्यक विचार— आयुर्वेद ने 'प्रज्ञापराध' को रोगों का जनक कहा है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार आदि दुर्गुणों के पाश में जब तक मनुष्य बँधा है, तब तक उसका मन शान्त, और स्थिर नहीं रह सकता। ये मनोवृत्तियाँ अशान्ति चिन्ता, तनाव आदि को जन्म देती हैं और इनके रहते अच्छी नींद सपने में भी नहीं आ सकती। अतः मन सद्विचारों से भरा रहे और अवगुण देखने की प्रवृत्ति या नकारात्मक चिन्तन पूर्णतः नष्ट हो जाये। इससे मन प्रसन्न रहेगा। विशेषकर सोते समय घर-व्यवसाय के झन्झटों को पूरी तरह छुट्टी दे देनी चाहिए। इस समय सत् साहित्य का अध्ययन, ईशस्मरण, अच्छी चौपाई-मन्त्रों आदि का जाप करते रहना चाहिए। इन विचारों का दिव्य प्रकाश आपके मन-मस्तिष्क को जगमगा देगा और आप निद्रा देवी की गोद में गहरी नींद सो सकेंगे।

वैद्यनाथ के संस्थापक वैद्य शिरोमणि रामनारायण शर्मा ने लिखा है, '**विचारों की शुद्धि, संयमित जीवन और परिश्रम मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाता है। ऐसी दशा में मानसिक प्रफुल्लता अपने आप ही बनी रहती है। और अनिद्रा, बेईमानी, पाप, तनाव, अशान्ति आदि किसी का भय नहीं रहता।**

नींद के अन्य प्रभावी उपाय—1. सोने के समय पैरों से लेकर सिर तक सभी अंगों को ढीला छोड़ दीजिए और आराम से अपनी स्वाभाविक स्थिति में साँस लेते रहिये। धीरे-धीरे आँखें बन्द कर लीजिए। सिर पर महानारायण तेल की हल्की मालिश और तलवों पर सरसों के तेल की मालिस करने से धीरे-धीरे नींद आ जाती है।

2. घर में प्रवेश करते ही अपने व्यवसाय या आफिस के कार्य को भूल जाएँ। उस समय आपके घर की लक्ष्मी, आपके आँखों के तारे और आप का घर-आंगन ही आपके लिए स्वर्ग होना चाहिए।

3. सोने के समय यदि आपको नींद न आ रही हो तो नींद बुलाने के लिए सोने का व्यर्थ प्रयत्न मत कीजिए। कोई धार्मिक पुस्तक पढ़िए पढ़ते-पढ़ते नींद आ जायेगी। या कुछ देर टहलिए फिर हाथ-मुँह-पैर-आँखें आदि धोकर ऊपर क्रमांक एक पर लिखा उपाय करिये। ध्यान रखें नींद को अपने ऊपर जबरदस्ती लादने से नींद अपने आप को आपसे मुक्त करने का प्रयत्न करेगी।

4. आपका कमरा स्वच्छ, हवादार और शान्त वातावरण में स्थित होना चाहिए। बिस्तर न अधिक कठोर और न अधिक गुदगुदा हो। सोने से पूर्व ढीले-ढाले कपड़े पहनने की आदत बना लीजिए। मुँह ढक कर मत सोइये। कई बार अधिक थक जाने से भी नींद नहीं आती। ऐसी स्थिति में ऊपर लिखा उपाय 1 व 3 बहुत प्रभावी सिद्ध होते हैं। अपने हाथ, पेट या छाती पर रखकर सोने से भी नींद उचट जाती है। इसी प्रकार सिकुड़ कर सोना भी उचित नहीं। करवट से लेटना ही सुनिद्रा दायक होता। ऐलोपैथी गोलियों से 'ऐडिक्ट' होने का खतरा रहता है अत: इनसे बचें और इन सभी उपायों के बाद भी नींद न आये (यद्यपि इन उपायों से पूर्ण सफलता मिलती है।) तो प्राकृतिक या आयुर्वेदिक औषधियों के प्रयोग को वरीयता दें।

प्राकृतिक चिकित्सा—सोने से पूर्व (खाना खाने के तीन घण्टे) पेड़ू पर मोटे तौलिया की गीली पट्टी (मिट्टी का प्रयोग अधिक प्रभावी रहता है।) रखें। पट्टी कुछ गर्म होने पर पानी में भिगो कर और निचोड़कर पुन: प्रयोग करें। शाम को 'सिज बाथ' का प्रयोग करें। भोजन में फल, सब्जियाँ, दूध, छाछ का ही प्रयोग करें और प्रात:काल शौच के बाद एनीमा लें। माथे पर गीली पट्टी का प्रयोग भी लाभकारी रहता है। इन उपायों को करने से अनिद्रा के किसी भी रोगी को प्रकृति के इस सहज वरदान से निराश नहीं होना पड़ेगा।

यौगिक चिकित्सा—कबीरदास का प्रसिद्ध दोहा है—

कस्तूरी कुण्डलि बसै, मृग ढूढै बन माँहि।
ऐसे घट-घट राम हैं, दुनियाँ देखै नाँहि॥

अर्थात् कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है, किन्तु मृग उसे पाने के लिए वन में इधर-उधर व्याकुल होकर घूमता रहता है। इसी प्रकार ईश्वर भी मनुष्य के घट में समाया हुआ है, किन्तु वह मन्दिर-मस्जिद-तीर्थादि स्थानों में देखता फिरता है। वास्तव में स्वास्थ्य, सुख, शान्ति और नींद का अतुलित खजाना और शक्ति मनुष्य के अन्दर छिपी पड़ी है। प्राचीन ऋषियों ने योग की भेंट देकर मनुष्य जाति का बहुत बड़ा कल्याण किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि आज न केवल भारत अपितु विश्व के अनेक देश के लोग कैमिस्ट्स की दुकानों और विशेषज्ञ चिकित्सकों के दवाखानों से निराश होकर यौगिक केन्द्रों की ओर दौड़ रहे हैं। विश्व के अनेक देशों में 'स्पोर्ट्स मेडिसिन' के रूप में योग की प्रतिष्ठा हो चुकी है। यम, नियम, आसन,

प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि—योग के इन आठ अंगों में मानव जीवन का सम्पूर्ण विज्ञान छिपा हुआ है। तनाव, अशान्ति और अनिद्रा का तो इससे अच्छा उपचार ढूढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। विश्व के जाने-माने चिकित्सक डॉ. डोनाल्ड ई. मिल्कीमैन ने अपने प्रसिद्ध अनुसंधान—"**क्षति पूरक विरोधाभासी निद्रा पर ध्यान का प्रभाव**" में पाया कि 40 घंटों तक नींद से वंचित और तनाव ग्रस्त व्यक्तियों को ध्यान का अभ्यास कराया गया। ध्यान के बाद उनको गहरी नींद आयी और वे अपने को स्वस्थ अनुभव करने लगे। प्रसिद्ध मनोविज्ञान शास्त्री **फिलिप सी. फर्गुसन और जॉन सी गोदान** के अध्ययन के अनुसार 6-7 सप्ताह तक नियमित रूप से ध्यान का अभ्यास करते रहने पर व्यक्ति चिन्ता और तनाव से मुक्त हो गये और वे नींद का भरपूर आनन्द लेने लगे।

शवासन, सर्वांगासन और शीर्षासन तो नींद न आने की अव्यर्थ दवायें है। शवासन में मनुष्य का उत्तेजित स्नायुमण्डल शांत और स्वाभाविक स्थिति में आ जाता है और मनुष्य को प्रगाढ़ नींद आ जती है। सर्वांगासन और शीर्षासन से रक्त की गति मस्तिष्क की ओर तेजी से दौड़ती हैं और वे सभी अंग जिनका सम्बन्ध नींद से होता हैं, सजीव और सक्रिय हो उठते हैं। इन आसनों को सिद्ध करने के लिए प्रतिदिन मात्र 10 मिनट का समय पर्याप्त है। अतः समय न होने की बात मात्र अपने आपको छलना ही है। शवासन तो एक ऐसा आसन है जो उठते-बैठते, कार्यालय में—कहीं भी किया जा सकता है और इसके अपूर्व लाभों को प्राप्त किया जा सकता है।

होम्योपैथिक चिकित्सा—फेरमफास 3× और कालीफास 3× नींद न आने की अच्छी दवायें है। किन्हीं भी अन्य दवाओं का प्रयोग करने से पूर्व बायोकैमिक की इन दवाओं का प्रयोग अवश्य कर लेना चाहिए। **काफिया 6** नींद न आने की प्रधान दवा है। मन की उत्तेजना के कारण यदि नींद न आये तो इसे याद करना चाहिए। **इग्नेशिया 30** उस समय प्रयोग में लाई जाती है, जब रोगी दुख और मनस्ताप से घिरा हो और चीख उठने के कारण नींद उड़ जाती हो। **नक्सवोमिका 30** भी अनिद्रा की अच्छी दवा है। अधिक खाने, कब्ज, अधिक पढ़ने, नशा करने या अजीर्ण के कारण नींद न आये तो यह दवा लाभ करती है। पैसिफ्लोरा इन्कारनेटा दवा की 1 बूंद से 2 बूंद की मात्रा अनिद्रा के रोगी को अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुई है। कलकत्ता के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. भट्टाचार्य के अनुसार एक ऐसे व्यक्ति का अनिद्रा रोग इस दवा से पूरी तरह अच्छा हो गया था, जो पिछले 10 साल से बिल्कुल नहीं सोया था।

आयुर्वेदिक औषधि—आयुर्वेदिक औषधियों की यह विशेषता है कि इनके प्रयोग से शरीर और मस्तिष्क की शक्ति का सम्वर्द्धन हो जाता है और अनिद्रा रोग नष्ट हो जाता है। वास्तव में स्नायुओं शक्ति बढ़ाकर नींद लाना सर्वोत्तम रहता है। नशा या

मादक द्रव्यों के द्वारा अनिद्रा की चिकित्सा अति आवश्यक होने पर ही करनी चाहिए। आयुर्वेद दवाओं का एक और प्रमुख लाभ है—इनसे मस्तिष्क की उष्णता का शमन होता है, पित्त का प्रकोप दूर हो जाता है और चित्त शान्त होकर प्रगाढ़ नींद आती है। जो व्यक्ति तनाव, चिन्ता और अनिद्रा में जीते है उनको नीचे लिखी दवाओं का निरन्तर सेवन करते रहना चाहिए। ये दवायें हृदय के लिए भी बलशाली सिद्ध हुई हैं—

प्रातः रात्रि—सूतशेखर रस सदा एक गोली ब्रह्मरसायन 10 ग्राम में मिलाकर सेवन करें। रात्रि को ऊपर से दूध पीना चाहिए। दवा का सेवन भोजन के दो घंटे बाद करें और भोजन जल्दी करलें।

भोजनोपरान्त—भोजन के बाद द्राक्षासव, सारस्वतारिष्ट, अश्वगन्धारिष्ट—इनमें से कोई एक या दो आसव कुल दवा 20 ग्राम में समभाग जल मिलाकर सेवन करना चाहिये।

योगेन्द्र रस,स्वर्णसूतशेखर, वृहत्त वात चिन्तामणि आदि दवायें भी प्रातः-रात्रि सेवन की जा सकती हैं।

इन दवाओं के सेवन से मन प्रसन्न, चित्त शान्त और शरीर स्फूर्तिमान बनता है। आज के जटिल जीवन में मस्तिष्क के विकारों में इन दवाओं का सेवन अत्यन्त गुणकारी है। □

10

स्वास्थ्य के लिए व्यायाम

ज्ञान, भावना और क्रिया के सुन्दर समन्वय का नाम ही जीवन है। ज्ञान के द्वारा व्यक्ति उचित-अनुचित या सत्य-असत्य की पहचान करता है। भावना उस विश्वास का नाम है, जो व्यक्ति को सत्य पर अडिग रहने की शक्ति प्रदान करती है। सत्य के मार्ग पर चलने का नाम क्रिया है। दूसरे शब्दों में उचित और करणीय कार्यों को करना क्रिया कहलाती है। ज्ञान के अभाव में मनुष्य अन्धा, भावना के अभाव में हृदयहीन और क्रिया के अभाव में पंगु है।

स्वास्थ्य के सन्दर्भ में एक बार इक्कीस परिवारों पर एक शोध किया गया। मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि 21 में से 20 व्यक्तियों को स्वास्थ्य के नियमों एवं सिद्धान्तों का सामान्य ज्ञान था। किन्तु जब भावना और क्रिया के सम्बन्ध में मैंने उन निष्कर्षों को देखा तो चौंक उठा। स्थिति ठीक विपरीत थी। इक्कीस में से सोलह परिवार के सदस्य स्वास्थ्य के नियमों का न तो अच्छी तरह से पालन करते थे और न उनमें उस प्रकार की दृढ़ भावना शक्ति ही थी। मैंने सभी परिवारों के बच्चों से पूछा की टी. वी. पर प्रसारित होने वाले कौन-से कार्यक्रमों को आप स्वास्थ्य के लिए अच्छा मानते हो। 'योग फॉर बैटर लिविंग' और 'दस कदम' को सभी बच्चों ने अच्छा बताया, किन्तु जब उनसे पूछा गया कि आप के परिवार में से योगासन, प्रातः कालीन भ्रमण या व्यायाम कौन-कौन करते हैं? तो सबके मुँह देखने लायक थे।

शिक्षित परिवारों में किये गये इस शोध के बाद मैंने अशिक्षित व अर्द्ध-शिक्षित इक्कीस ग्रामीण परिवारों पर शोध किया। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि इन परिवारों के निष्कर्ष पूर्व शोध के निष्कर्षों से सर्वथा विपरीत थे। इन परि-वारों के सदस्य यह नहीं जानते थे कि खेलना या व्यायाम करना स्वास्थ्य के लिए कितना और क्यों आवश्यक है या स्वास्थ्य के नियम क्या हैं? किन्तु अधिकांश परिवार के सदस्य स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए दिखे। तात्पर्य स्वा[illegible]

ज्ञान की दृष्टि से वे आधे-अधूरे थे किन्तु भावना और क्रिया की दृष्टि से उनकी स्थिति अत्यन्त श्रेष्ठ थी, किन्तु अधूरापन दोनों में था।

जीवन-शक्ति का आधार—

यहाँ इन शोध-अध्ययनों का उल्लेख इसलिए किया गया कि व्यक्ति के जीवन में ज्ञान, भावना और क्रिया—तीनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। एक के भी अभाव में व्यक्ति स्वस्थ नहीं रह सकता। करणीय (ज्ञान) कर्त्तव्यों (क्रिया) को जब व्यक्ति निष्ठा (भावना) के साथ करता है तो उसको एक अपूर्व आनन्द और दिव्य प्रसन्नता की प्राप्ति होती है! यह प्रसन्नता और आनन्द उसकी सच्ची जीवन शक्ति है। आत्मबल और रोग-प्रतिरोधक शक्ति का वर्द्धन भी इसी से होता है। इसके विपरीत जिन व्यक्तियों के ज्ञान-भावना-क्रिया में विसंगति होती है, वे निरन्तर तनावग्रस्त रहते हैं, तिल तिल टूटते हैं और जीवन के सारे दिव्य आनन्द से वंचित हो जाते हैं। उदाहरण के लिए मान लीजिए कोई व्यक्ति सोचता है कि व्यायाम स्वास्थ्य के लिए उपयोगी है (ज्ञान), वह नियमित व्यायाम करने का संकल्प (भावना) भी करता है, और यह व्यायाम करना भी (क्रिया) प्रारम्भ कर देता है। इस प्रकार उसके जीवन में उक्त तीनों गुणों का समन्वय एवं सन्तुलन होने से उसे असीम प्रसन्नता का अनुभव होने लगता है। व्यायाम के लाभ तो उसे मिलते ही हैं। इसी प्रकार जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी जब वह ज्ञान, भावना और क्रिया में समन्वय स्थापित करता हुआ चलता है तो उसका जीवन समग्र एवं सम्पूर्णता की ओर बढ़ने लगता है। ऐसी दशा में सुख, स्वास्थ्य, प्रसन्नता और आनन्द के सुरभित सुमनों से उसका जीवन महक उठता है। इसके विपरीत जो व्यक्ति समन्वय स्थापित करने की इस कला को नहीं जानते वे जीवन की बाजी हार जाते हैं। उन्हें पल-पल पर दुःख, निराशा, चिन्ता और तनाव के भीषण तूफानों से जूझना पड़ता है। अतः स्वस्थ तन-मन और स्वस्थ जीवन का एक ही उपाय है—इन त्रिदेवों की आराधना। इसकी आराधना जीवन को तीर्थराज बना देती है।

त्रिदेवों की आराधना—

आइये, इन त्रिदेवों की आराधना का आरम्भ व्यायाम से करें। व्यायाम स्वास्थ्य का आधारस्तम्भ है।

जीवित रहने के लिए भोजन का जितना महत्त्व है, उतना ही महत्त्व स्वास्थ्य के लिए व्यायाम का है। शरीर के अंगों की सक्रियता के लिए व्यायाम या शरीर-चेष्टा आवश्यक है। जिस प्रकार किसी यन्त्र का उपयोग न करने पर उसमें जंग लग जाती है, उसी प्रकार की स्थिति शरीर की भी है। यदि शरीर के अंगों को व्यायाम के

द्वारा सक्रिय नहीं किया जाए तो उनकी शक्ति शनैः-शनैः क्षीण होती जाती है। वागभट्ट ने व्यायाम के महत्त्व के विषय में लिखा है—

"लाघवं कर्म सामर्थ्यं दीप्तोऽग्निर्मेदसः क्षयः।
विभक्त घन गात्रत्वं व्यायामादुपजायते ॥

अर्थात् व्यायाम से शरीर में हल्कापन, स्फूर्ति, काम करने की शक्ति और पाचन क्रिया सशक्त होती है, मेद का क्षय होता है और अंगों में सुसन्तुलन एवं घनत्व आता है।

यह एक सामान्य अनुभव की बात है कि शरीर के अंग का जितना अधिक अभ्यास या उपयोग होगा वह उतना ही अधिक सशक्त एवं क्रियाशील होगा। हमारा दाहिना हाथ अधिक सशक्त होता है; पहाड़ी प्रदेशों के निवासियों के पैर अधिक सुदृढ़ होते हैं, लोहार के हाथ अधिक बलिष्ठ हो जाते हैं, आदि उदाहरण इसी बात को स्पष्ट करते हैं। दैनिक व्यायाम के कारण ही सैनिक स्वस्थ एवं स्फूर्तिवान रहते हैं। केवल अच्छा व पौष्टिक भोजन ही स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त होता तो सभी धनवान व्यक्ति स्वस्थ होते।

व्यायाम से रक्त शुद्धि—

हम जो भोजन ग्रहण करते हैं उससे रस बनता है और रस से रक्त। शुद्ध रक्त स्वास्थ्य का सुदृढ़ आधार है। रक्त हमारे शरीर में भ्रमण करता है। रक्त के द्वारा ही शरीर के सभी अंग सक्रिय रहते हैं। इस भ्रमण काल में शरीर के मृतकोष रक्त में मिल जाते हैं और वह रक्त अशुद्ध हो जाता है। हृदय और फेफड़े प्राण-वायु की सहायता से अशुद्ध रक्त को शुद्ध करते हैं और श्वास के बाहर निकलते समय कार्बन-डाइ-ऑक्साइड के रूप में रक्त के दोष भी बाहर निकल जाते हैं। व्यायाम के समय रक्त-परिभ्रमण तेजी से होता है और श्वास-प्रश्वास की गति में भी वृद्धि हो जाती है। इससे रक्त दूषित नहीं रहने पाता। पसीने के रूप में शरीर व रक्त का मैल भी निकल जाता है। यह शुद्ध रक्त यकृत, गुर्दे, आँतें आदि को अधिक सक्रिय एवं सशक्त बनाता है; परिणामस्वरूप किसी भी प्रकार की गन्दगी शरीर में जमा नहीं होने पाती; भोजन का पाचन भली-भांति होता है, रस-रक्तादि धातुएँ ठीक प्रकार से बनती हैं और मनुष्य स्वस्थ रहता है।

सुदृढ़ मांस पेशी—

मनुष्य की शारीरिक दृढ़ता बहुत कुछ मांसपेशियों पर निर्भर रहती है जिनका निर्माण छोटे-छोटे तन्तुओं के द्वारा होता है। ये तन्तु, कोषों से बनते हैं और इन कोषों की उत्पत्ति और स्थिरता रक्त और प्राण-वायु से होती है। व्यायाम के द्वारा शुद्ध रक्त और यथेष्ट प्राण-वायु मिलती है। इससे जहाँ नष्ट हुए कोष शीघ्रता व

सरलता से बाहर निकल जाते हैं, वहाँ सुदृढ़ मांसपेशियों का निर्माण भी होता है जो शारीरिक सुदृढ़ता का प्रमुख आधार है।

व्यायाम और सौन्दर्य—

अच्छा स्वास्थ्य सौन्दर्य का आधार है। रंग-रूप, आकृति आदि से सुन्दर होते हुए भी व्यक्ति स्वास्थ्य के अभाव में सुन्दर नहीं दिखाई दे सकता। ऊँचे कन्धे, उन्नत ललाट, लम्बी भुजायें, चौड़ा सीना एवं सुगठित शरीर वाला व्यक्ति साधारण वेशभूषा में भी तेजस्वी व दीप्तिमान रहता है और शरीर का यह गठन व्यायाम से ही प्राप्त किया जा सकता है। विभिन्न सौन्दर्य-प्रसाधन एवं रंग-विरंगी वेशभूषा के स्थान पर यदि व्यायाम का नियमित अभ्यास किया जाये तो सौन्दर्य प्राप्ति के साथ-साथ स्वस्थ शरीर, जो दुनियाँ के समस्त सुखों का आधार हैं, को भी प्राप्त किया जा सकता है।

व्यायाम से खाद्यतत्व आत्मसात—

कुछ लोगों के मन में यह भ्रामक धारणा व्यापक रूप से घर कर गई है कि पुष्टिकारक खाद्य पदार्थों का सेवन करने से ही शरीर को शक्ति प्राप्त होती हैं। हमारे शरीर के विभिन्न संस्थान जब तक खाद्य पदार्थों के तत्वों को आत्मसात न करें तब तक उनसे शरीर को कुछ लाभ नहीं पहुँचता। शरीर शक्तिशाली नहीं होता। शरीर को शक्तिशाली बनाना तो खाद्य तत्वों को आत्मसात करने पर निर्भर करता है। तथा आत्मसात करने की योग्यता केवल शारीरिक व्यायाम से ही सम्भव हो सकती है।

महापुरुषों के अनुभव और व्यायाम—

"मैं बचपन से दुर्बल रहा हूँ। आज मेरे अच्छे स्वास्थ्य का प्रमुख कारण नियमित भ्रमण एवं आरोग्य-प्राप्ति का दृढ़ आचरण है।" —महात्मा गाँधी

"मानसिक स्वास्थ्य में लिए शारीरिक स्वास्थ्य आवश्यक है। आसन-व्यायाम, मेरी आध्यात्मिक उन्नति में अत्यन्त सहयोगी रहे हैं।" —स्वामी रामकृष्ण परमहंस

"स्वास्थ्य और आरोग्य के लिए मैंने बहुत कुछ अनुभव किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि मनुष्य को प्रतिदिन व्यायाम अवश्य करना चाहिए।"

—रूजवेल्ट

"यदि आज की शिक्षा प्रणाली अध्ययन कक्षों से निकलकर खेल के मैदानों में आ जाये तो यह राष्ट्र का सच्चा कल्याण होगा।" —स्वामी विवेकानन्द

"बहुत से आदमी अपनी निश्चित आयु से पूर्व ही मर जाते हैं। इसका कारण यह है कि वे शरीर को पूर्ण जीवित अवस्था में रखने के लिए व्यायाम नहीं करते। कुछ थोड़े से व्यायाम-व्यसनी विद्यार्थियों को छोड़कर शेष अधिकांश विद्यार्थी अपने शरीर को सुडौल बनाने के लिए व्यायाम नहीं करते।" —मैकफैडन

"चाहे आप दुर्बल हों चाहे सबल, युवा हों अथवा वृद्ध, मेरा आप के लिए परामर्श है कि इस व्यायाम को अभी आरम्भ कर दीजिये और कल से नहीं किन्तु आज से ही ।"
—जे. पी. मुलर

व्यायाम अभ्यासी हेतु स्वर्णिम नियम—

1. हमारे प्राचीन व्यायाम-शास्त्रियों ने लिखा है—

वयो, बल, शरीराणि, देश, कालाशनानिच
समीक्ष्य कुयाद् व्यायाममन्यथा रोगमाप्नुयात् ।

अर्थात् मनुष्य को अपनी आयु, बल, शारीरिक स्थिति, देश काल, भोजन आदि को देखकर व्यायाम करना चाहिये अन्यथा व्यायाम हानिकारक सिद्ध होगा ।

बालकों व वृद्धों को भ्रमण, मनोरंजन खेल, आसन आदि हलके व्यायाम करने चाहिये जबकि युवक कठोर व्यायाम भी कर सकते हैं । व्यायाम करते समय अपने बल का भी ध्यान रखना चाहिये । कमजोर को हल्के एवं सबल को कठोर व्यायाम उपयोगी रहते हैं । शारीरिक शक्ति से अधिक व्यायाम करने से शक्ति का क्षय होता है । विभिन्न देशों की स्थिति एवं जलवायु को देखकर ही व्यायाम निश्चित करने चाहिये । शीत प्रधान देशों एवं शीत ऋतु में व्यायाम की अधिक आवश्यकता है, जबकि गर्म जलवायु वाले स्थान में हल्के व्यायाम ही आवश्यक हैं । व्यायाम के अभ्यासी को अपने भोजन पर विचार करके ही व्यायाम करना चाहिये । जिनको पर्याप्त पौष्टिक भोजन सुलभ है, उनको कठोर एवं जिनको अपेक्षाकृत कम पौष्टिक भोजन सुलभ हो उनको हलके व्यायाम उचित रहते हैं ।

2. शरीर की क्षीणता, प्यास, अरुचि, सिरदर्द, रक्तपित्त, भ्रम, थकावट, खाँसी, ज्वर, दमा आदि के प्रकोप के समय व्यायाम नहीं करना चाहिए । किन्तु योगासन रोगों की अवस्था में भी किये जा सकते हैं । हाँ कुछ तीव्र रोग ऐसे हो सकते हैं, जिनके होने पर योगासन विशेष देख-रेख व परामर्श से ही करने चाहिये ।

3. व्यायाम सदैव खाली पेट शौचादि से निवृत्ति होकर करना चाहिए । व्यायाम के बाद भी 20–25 मिनट तक कुछ नहीं खाना चाहिए ।

4. व्यायाम के अभ्यासी को घी, दूध, फल, मेवे, अंकुरित चने, गुड़, खजूर, केले आदि मौसमी, सस्ते व पौष्टिक फल अवश्य सेवन करने चाहिये ।

5. व्यायाम का लाभ नियमित अभ्यासी को ही मिल सकता है । व्यायाम में अनियमितता होने से रोग पनपते हैं । व्यायाम का समय भी निश्चित होना चाहिए ।

6. प्रारम्भ में कम समय के लिए एवं हलके व्यायाम करें । शनैः शनैः बढ़ाना उचित रहता है ।

7. व्यायाम सदैव खुले स्थान पर ही करने चाहिए। श्वास भी नाग से लेनी चाहिए।

8. विचार-शुद्धता, निश्चिन्तता एवं प्रसन्नता, व्यायाम के लाभ को द्विगुणित कर देते हैं।

9. व्यायाम करते समय जब दम फूलने लगे, मुख सूखने लगे व पसीना आने लगे, उस समय व्यायाम बन्द कर देना चाहिए।

10. व्यायाम के बाद शवासन या शिथिलीकरण क्रिया अवश्य करनी चाहिए। लेट कर, समस्त शरीर को निश्चेष्ट एवं ढीला छोड़ देना तथा मस्तिष्क को विचार शून्यता की ओर ले जाना ही शवासन है। थकान मिटाने एवं नव-स्फूर्ति प्रदान करने में यह आसन बेजोड़ है।

दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ खेल या व्यायाम के मैदान में आने की बात है—सुख और स्वास्थ्य की देवी जयमाला लिए प्रतीक्षारत मिलेगी। □

11

ब्रह्मचर्य ही जीवन है

एक वार एक पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्री से चर्चा हो रही थी। चर्चा का
वषय था ब्रह्मचर्य और स्वप्न दोप। उनका विचार था कि सैक्स या काम की इच्छा
वाभाविक है और स्वप्न दोप की प्रक्रिया भी नेचुरल है। ब्रह्मचर्य की बात कहना
ा स्वप्न दोप को रोग मानना आयुर्वेद और भारतीय चिंतन का मिथ्या प्रलाप है।
ह आयुर्वेद और भारतीय चिंतन पर भारी कटाक्ष था। मुझे अप्रिय लगना स्वाभाविक
ा। मैंने कहा सैक्स या स्वप्न दोप के सम्बन्ध में आपके जो भी विचार हों, मुझे
ोई आपत्ति नहीं, किन्तु आयुर्वेद व भारतीय चिन्तन को मिथ्या प्रलाप कहकर आपने
पनी अज्ञानता का ही परिचय दिया है। आपने सम्भवतः आयुर्वेद को विना पढ़े,
ाने और समझे हुए यह कटाक्ष किया है, जिसे उचित नहीं कहा जा सकता।

उन्होंने प्रतिवाद किया कि यह विज्ञान का युग है। यहाँ सभी बातें प्रयोग-
ाला और कसौटी पर सिद्ध करनी पड़ती हैं। मैंने इस बात को स्वीकार करते हुए
नसे कहा, "विज्ञान जहां समाप्त होता है, अध्यात्म और दर्शन वहां से प्रारम्भ होता
।" आप ऐसे कितने वैज्ञानिकों को जानते हैं जो अपने जीवन के अन्तिम चरण में
ार्शनिक या अध्यात्म शास्त्री नहीं बने। वे कुछ देर सोचते रहे, कुछ न बोले। मुझे
गा कि इस समय उनका मन पूर्व मिथ्या धारणाओं से कुछ-कुछ मुक्त सा हो रहा है,
तः उसी समय मैंने 'गर्म लोहा मानकर हथौड़े से चोट करना' उचित समझा।

मैंने उनसे कहा, डॉ. साहब ! काम या सैक्स के अलावा क्रोध, लोभ, मोह,
ईर्ष्या, द्वेप, भूख, प्यास आदि सभी प्रवृत्तियां या आवश्यकताएं स्वाभाविक या नेचुरल
। किन्तु इन पर विवेक-बुद्धि का अंकुश आवश्यक है, अन्यथा ये मनुष्य को पतन
ी ओर ले जाने वाली सिद्ध होंगी। भूख जैसी अनिवार्य वृत्ति के लिए भी आयुर्वेद
े मर्यादायें बनाई हैं। क्या खायें, कब खायें, कैसे खायें और कितना खायें ? इन
सबका स्पष्ट चित्रण आयुर्वेद में है। कठोपनिषद् में तो यहाँ तक लिखा है कि जो
व्यक्ति भोजन के विज्ञान को विना समझे भोजन खाते हैं, वे वास्तव में भोजन नहीं

खाते अपितु भोजन उनको खाता है। यही स्थिति क्रोध की है। क्रोध स्वाभाविक है अतः आपके अनुसार क्रोध करना स्वाभाविक है यह मानते हुए भी हमें क्रोध की सीमायें निश्चित करनी पड़ेगी। ऋषि-मुनियों की हड्डियों को देखकर भगवान श्रीराम भुजा उठाकर धरती को असुर विहीन करने की प्रतिज्ञा करते हैं, इस प्रकार के क्रोध को सात्विक क्रोध कहा गया है। यह श्रेयस्कर है। राष्ट्र, समाज और प्राणि-मात्र के लिए किया गया क्रोध सात्विक क्रोध होता है। **वास्तव में भूख की वृत्ति को श्रेयस्कर बनाने के लिए भोजन के विज्ञान का जो महत्त्व है वही महत्त्व काम की वृत्ति को श्रेयस्कर बनाने के लिए ब्रह्मचर्य का है।** इसी प्रकार, क्रोध, लोभ, मोह आदि 'नेचुरल' वृत्तियों को सात्विक बनाकर श्रेयस्कर रूप देने की बात भारतीय चिन्तन की विशेषता है। भोगों को भोगने की खुली छूट भारतीय चिन्तन में नहीं है। भोगेच्छायें स्वाभाविक होते हुए भी इन पर विवेक-बुद्धि का अंकुश आवश्यक है। बाढ़ के पानी से भीषण विनाश होता है, किन्तु बांध बनाकर सिंचाई करने से वही विनाशकारी पानी गेहूँ की बाली बनकर सृजन के गीत गाने लगता है। यही स्थिति काम आदि 'नेचुरल' भोगेच्छाओं की है। संयम व साधना के द्वारा मन और इन्द्रियां जब विषयों का चिन्तन न करके आत्म केन्द्रित हो जाती हैं—ब्रह्म में विचरण करने लगती है, तो इसी स्थिति को ब्रह्मचर्य कहते हैं। इस स्थिति को प्राप्त हुआ मनुष्य भोजन तो करता है किन्तु उसकी इच्छा नहीं करता, उसे आवश्यक समझ, ईश्वर का प्रसाद समझ सेवन करता है। भोजन के लिए इसकी जीभ लपलपाती नहीं, वह भोजन के विषय में चिन्तन नहीं करता। इसी प्रकार वह अन्य भोगों को भी भोगता है, किन्तु वह उनमें रमता नहीं, फंसता नहीं। जिस प्रकार कीचड़ और पानी में रहकर भी कमल कीचड़ और पानी से निर्लिप्त रहता है, उसी प्रकार ब्रह्म में विचरण करता हुआ मनुष्य भोगों को भोगता हुआ भी भोगों से दूर रहता है। यह भारतीय तत्व चिन्तन है। यहाँ न दबाव है और न 'सप्रैशन'। यह वह स्थिति है जहाँ पत्नी के मोह में फंसे तुलसीदास का काम (Sex) भी 'राम' बन जाता है—रामचरित मानस बन जाता है। शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से सोचें तो प्रसिद्ध शरीर-शास्त्री, चिकित्सक एवं महान् आयुर्वेदज्ञ सुश्रुत के अनुसार हम जो भोजन ग्रहण करते हैं उसका सबसे पहले रस बनता है, रस से रुधिर, रुधिर से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से इन सबका सार 'वीर्य' बनता है यही वीर्य ओज रूप में महान् तेज बनकर सम्पूर्ण शरीर में चमकने लगता है। वीर्य का शरीर में उतना ही महत्त्व है जितना दूध में घी का। गन्ने में रस की तरह और और दूध में घी की तरह वीर्य सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है। जिस प्रकार घी निकालने के पश्चात् दूध सारहीन हो जाता है, उसी प्रकार वीर्य को नष्ट करने से

शरीर भी निस्तेज एवं खोखला हो जाता है। वीर्य धारण ही मनुष्य का जीवन है। इस प्रकार स्वास्थ्य का आधार ब्रह्मचर्य ही है। जीवन के हर क्षेत्र में ब्रह्मचर्य का महत्त्व स्पष्ट है। काम को नेचुरल मानकर वीर्य को नष्ट करना वस्तुतः आत्म-हत्या ही है।

आयुर्वेद और गीता के इन विचारों का डॉक्टर साहब पर गहरा प्रभाव पड़ रहा था। मैंने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहा कि आप स्वप्नदोष को रोग नहीं मानते। किन्तु बिना अश्लील या वासनापूर्ण स्वप्न के आये स्वप्नदोष सम्भव नहीं। मैंने उनको बताया कि मेरे अब तक के चिकित्सा अनुभव में एक भी स्वप्नदोष का रोगी नहीं आया जिसे बिना बुरे स्वप्न के स्वप्नदोष होता हो। दूसरी बात यह है कि स्वप्नदोष में भी शरीर के सारतत्व वीर्य का क्षरण होता है इसलिए शारीरिक और मानसिक विकास के मार्ग में स्वप्नदोष एक भयंकर व्याधि है। बात सीधी-सी है। दिन में अश्लील विषय-वासनाओं में मन रमेगा तो रात्रि में स्वप्न भी गन्दे आयेंगे फलस्वरूप स्वप्नदोष का रोग होने की सम्भावना बन जायेगी। सात्विक विचार वाला व्यक्ति स्वप्न में भी स्वप्नदोष का रोगी नहीं हो सकता। इसके साथ ही दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या के अनुसार सम्यक आहार-विहार न अपनाने से शरीर में गन्दगी और विजातीय पदार्थ इकट्ठे होने लगते हैं। इससे रस, रक्तादि धातुएं दूषित होती हैं, वात-पित्त-कफ का सन्तुलन समाप्त हो जाता है, इन कारणों का मन पर भी प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार अश्लील कल्पनाएं और अश्लील स्वप्नों के लिए शरीर में इकट्ठे हुए दोष भी प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

बीच-बीच में डाक्टर साहब यदि, परन्तु, क्या आदि शब्दों के द्वारा मेरी बातों का खण्डन करने का प्रयत्न भी करते रहे थे किन्तु वास्तविकता यह थी कि मन ही मन आयुर्वेद के दृष्टिकोण से सहमत होते जा रहे थे और अधिक जानने की इच्छा से ही बीच-बीच में 'यदि', 'परन्तु' और 'क्या' शब्दों का प्रयोग कर रहे थे।

मैंने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहा कि हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों के सारे अनुभव और प्राचीन ग्रन्थ ब्रह्मचर्य के महिमा से भरे पड़े हैं। आरोग्य उपनिषद का कथन है—"एकश्च चतुरोवेदा ब्रह्मचर्य तथैकतः" अर्थात् चारों वेद एक ओर हैं और ब्रह्मचर्य दूसरी ओर। महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्म पितामह ने ब्रह्मचर्य के विषय में कहा है—"हे राजन! ब्रह्मचारी को कुछ भी दुष्प्राप्य नहीं है। ब्रह्मचर्य मनुष्य के समस्त दुःखों को धो देता है।" 'ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" अर्थात् ब्रह्मचर्य और तप से देवताओं ने मृत्यु को भी जीत लिया है। प्रकृति की गोद में

विहार करने वाले प्राणी मात्र वंश या अपनी प्रजाति की रक्षा के लिए ही ब्रह्मचर्य
को तोड़ते हैं। वास्तव में यह एक तरह का ब्रह्मचर्य-पालन ही है क्योंकि वे साधा
मनुष्यों की तरह नित्य विषय-वासना में लीन नहीं रहते अपितु प्राकृतिक मर्यादा
में बंधे रहकर वंश या प्रजाति की रक्षा करते हैं। स्वास्थ्य, सुख, सौन्दर्य और दी
जीवन प्रकृति माता के इन लाड़ले प्राणियों में सहज ही देखा जा सकता है। गुन-
करते भौंरे, कहू-कहू के गीत गाने वाली कोयल और हरे-भरे मैदानों में कुलांचे मा
हुए मृग-शावक इनको न कभी स्वप्ननोष होता है और न इनका मन विषय-वास
से भरा रहता है। ये सच्चे अर्थों में ब्रह्मचारी है, इसलिए सुखी हैं, सुन्दर हैं और
दीर्घजीवी।

कबीरदास जी ब्रह्मविद्या के महान् आचार्य थे। पूर्ण निरक्षर होते हुए उन
समाज का शिक्षक होने का सम्मान प्राप्त था। उन्होंने एक स्थान पर लिखा है
आशा तृणा नहि मरी मरि-मरि गये शरीर। अर्थात् मनुष्य की इच्छाएँ और तृष्ण
कभी समाप्त नहीं होती–शरीर ही नष्ट हो जाता है। भर्तृहरि ने भी इसी प्रकार
विचार प्रकट किये हैं—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता····
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा: ।।"

अर्थात् हमने विषयों को नहीं भोगा, किन्तु विषयों ने ही हमको भोग लिय
तृष्णा का बुढ़ापा नहीं आया अपितु हम ही बूढ़े हो गये। भगवान कृष्ण ने भी गं
में कहा है कि भोगेच्छाएँ समुद्र की लहरों के समान अगणित और अनन्त हैं। जि
प्रकार एक लहर के बाद दूसरी लहर आती है, उसी प्रकार एक इच्छा के पूरा ह
ही दूसरी इच्छा पैदा होती है। वास्तव में भोगों को भोगने से भोग की इच्छायें उ
प्रकार और भी तीव्रता से प्रकट होती हैं, जिस प्रकार घी को अग्नि में डालने
अग्नि की लपटें और भी तेज हो जाती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि **आयुर्वेद
भारतीय चिन्तन ने संयम और ब्रह्मचर्य के शाश्वत सत्य को प्रकट करके मन
निरंकुश प्रवृत्ति पर बुद्धि-विवेक का अंकुश लगाया है और इस प्रकार उसे पतन
से बचाकर श्रेयस्कर मार्ग की ओर अग्रसर किया है।** अब यह मनुष्य पर नि
करता है कि वह अभिशाप और वरदान, दोनों में से किसे चुनता है।

ब्रह्मचर्य का अर्थ—ब्रह्मचर्य संस्कृत का शब्द है। संसार की किसी भाषा
पास इसका पर्यायवाची शब्द नहीं है। इस शब्द की व्युत्पत्ति है—"**ब्रह्मणिचरणि
ब्रह्मचर्यम्।**" अर्थात् मन की प्रवृत्ति का ब्रह्म में विचरण करना ही ब्रह्मचर्य है।
तक शरीर है तब तक आवश्यकताओं की पूर्ति तो करनी ही है किन्तु यह सोच

उनकी पूर्ति उचित है कि यह मानव शरीर ईश्वर का घर है और मोक्ष प्राप्ति का अनन्य साधन है। इसलिए मर्यादा और संयम में रहते हुए अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना उचित है महान् आयुर्वेदाचार्य वाग्भट ने हृदय सूत्र स्थान 29 में लिखा है—

"न पीडये इन्द्रियणि न चैतान्यति लालयेति" अर्थात् इन्द्रियों को दबाकर रखना या खुली छूट देना उचित नहीं।

महात्मा गांधी ने ब्रह्मचर्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है—"ब्रह्मचर्य का ठीक और पूरा अर्थ है 'ब्रह्म की खोज'। ब्रह्म हम सब में व्याप्त है। अतः ध्यान, धारणा और तज्जनित साक्षात्कार की सहायता से हमें उसे अपने अन्दर खोजना चाहिए। समस्त इन्द्रियों के पूर्ण संयम के बिना आत्म-साक्षात्कार असम्भव है, इसलिए ब्रह्मचर्य का तात्पर्य है—मन, वचन और कर्म से हर स्थान में सम्पूर्ण इन्द्रियों का संयम।"

संत विनोबा के अनुसार, "विषय-वासना मत रखो—यह ब्रह्मचर्य का 'नेगेटिव' या अभावात्मक रूप हुआ। सब इन्द्रियों की शक्ति आत्मा की सेवा में खर्च करो, यह उसका भावात्मक रूप है। ऊंचा आदर्श सामने रखना और उसके लिए संयमी जीवन का आचरण करना, इसको मैं ब्रह्मचर्य कहता हूँ। यह हुई एक बात। अब एक दूसरी बात है। किसी एक विषय का संयम और बाकी विषयों का भोग यह ब्रह्मचर्य नहीं है। मिट्टी के घड़े में यदि छोटा-सा छिद्र हो तो क्या उसमें पानी भरेंगे? एक भी छिद्र घड़े में है तो वह पानी भरने के लिए बेकार ही है। ठीक उसी तरह जीवन का हाल है। जीवन में एक भी छिद्र नहीं रहना चाहिए। चाहे जैसा भी जीवन बिताते हुए ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे, यह मिथ्या आकांक्षा है। बात-चीत, भोजन, स्वाध्याय सभी में संयम रखना चाहिए।"

ब्रह्मचर्य के विषय में आचार्य सुश्रुत ने कहा है—

मृत्युव्याधि जरा नाशी पीयुष परमौषधम्।
ब्रह्मचर्य महद्यत्न सत्यमेव वदाम्यहम्॥

अर्थात् मृत्यु, रोग और बुढ़ापे का नाश करने में अमृत तुल्य परम औषधि ब्रह्मचर्य पालन करना ही है। वीर्यनाश की हानियों की ओर संकेत करते हुए महर्षि सुश्रुताचार्य ने लिखा है—

अति स्त्री सम्प्रयोगाच्च रक्षेदात्मानमात्मवान।
शूल कास ज्वरश्वासकार्श्य पाण्ड्वामयक्षया॥

अर्थात् अति स्त्री सेवन से शूल, खांसी, ज्वर, श्वास, निर्बलता, पीलिया आक्षेप, क्षय (टी. वी.) आदि रोग होते हैं। वीर्यनाश वस्तुत- मृत्यु को आमन्त्रण पत्र भेजने के समान है, इसीलिए आयुर्वेद एवं हमारे ग्रन्थों का स्पष्ट उदघोष है— पच्चीस वर्ष तक की आयु ब्रह्मचर्य आश्रम की आयु है। इस आयु में मनुष्य को विद्याध्ययन करना चाहिए। यह आयु जीवन की आधार शिला है। आधार जितना सुदृढ़ होगा जीवन का भवन उतना ही मजबूत होगा। अतः स्वस्थ और दीर्घजीवन के लिए ब्रह्मचर्य अव्यर्थ उपाय है। ग्रहस्थ जीवन में भी संयम व मर्यादा के साथ अपनी वंशरक्षा के उद्देश्य से ईश्वरीय आदेश समझ कर ही ग्रहस्थ धर्म का पालन करना चाहिए।

चाणक्य नीति दर्पण में कहा गया है—

न पश्यति च जन्मान्धो कामान्धो नैवपश्यति।
न पश्यति मदोन्मत्तो स्वार्थी दोषान् न पश्यति॥

अर्थात् जन्म से अन्धे, कामान्ध, मादक पदार्थों का सेवन करने वाले एवं स्वार्थी को कुछ भी दिखाई नहीं देता। इनमें से जन्माध को तो आँखों से कुछ नहीं दीखता, शेष का विवेक भी नष्ट हो जाता है।

सुप्रसिद्ध ग्रन्थ योग रत्नाकर में लिखा है—

अग्निमूलं वलं पुंसां रेतोमूल च जीवितम्।
त स्मात्सर्व प्रयत्नेन वह्नि शुक्र च रक्षयेत॥

शारीरिक वल का आधार पाचकाग्नि और जीवन का आधार वीर्य है। इसलिए अग्नि और वीर्य की रक्षा करनी चाहिए। भोजन के नियमों का पालन करने से अग्नि वढ़ती है और मनुष्य स्वस्थ रहता है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के पालन से मनुष्य को स्वास्थ और दीर्घायु मिलती है।

ब्रह्मचर्य पालन आसान है—

1. मनुष्य अमृतपुत्र है। आहार, निद्रा और मैथुन स्वयं में जीवन के उद्देश्य नहीं हो सकते। ये पशु-जीवन के उद्देश्य हैं। उसने तो किसी विशेष प्रयोजन के लिए जन्म लिया है। वह महान् प्रयोजन क्या है? वह प्रयोजन मनुष्य के अन्दर ठीक उसी प्रकार छिपा है जिस प्रकार मृग की नाभी में कस्तूरी। उसकी तलाश में वह इधर-उधर मारा-मारा फिरता है। जो व्यक्ति अपने अन्दर इस महानता को तलाश कर लेते हैं उनको काम-वासनायें विल्कुल आकर्षित नहीं करतीं।

2. विनोवा कहते हैं कि घड़े में एक भी छिद्र हो तो उसमें पानी नहीं ठहर पाता। यही वात दूसरी तरह से कही जा सकती है—मन श्रेष्ठ व सकारात्मक

विचारों से भरा हो तो उनमें बुरे विचार प्रवेश ही नहीं कर सकते। जहां सूर्य है वहां प्रकाश ही होगा। वहां अन्धेरा नहीं ठहर सकता। या रहीम के शब्दों में 'भरी सराय रहीम लखि पथिक आपु फिरि जाय'।

3. गांधीजी लिखते हैं कि मन जब विषय-वासनाओं का घर बनने लगे तो सच्चे मन से ईश्वर स्मरण चमत्कारिक दवा का काम करता है। इसके साथ ही हाथ-पैर, मुँह-नेत्र आदि इन्द्रियों को ठण्डे जल से धोना चाहिए।

4. काजल की कोठरी में कैसा ही सयाना व्यक्ति प्रवेश करे, उसके धब्बा लगेगा ही। अनेक नवयुवकों का जीवन केवल इसलिए नष्ट हो जाता है क्योंकि बुरी संगत में पड़ जाते हैं या बुरे चित्र देखते हैं और गन्दी किताबें पढ़ते हैं। जिसने जीवन का महान् प्रयोजन खोज लिया हो, मन कल्याणकारी विचारों से भरा हुआ हो और अच्छे साथियों व अच्छे साहित्य का संग हो तो जीवन बगिया में से पतझर खतम होकर स्वास्थ्य और दीर्घजीवन का वसन्त महकने लगता है तथा सुसंगति और सद्-ग्रन्थों के अध्ययन से मन श्रेष्ठ विचारों का निरन्तर बहने वाला झरना बन जाता है।

5. मन में सात्विक विचारों का उदय सात्विक भोजन पर निर्भर है। मन की शुद्धि के लिए भोजन-प्राप्ति का साधन भी शुद्ध एवं सात्विक होना चाहिए। मिर्च-मसाले, मिठाइयाँ, मांस, अंडे, शराब आदि पदार्थ ब्रह्मचर्य के इच्छुक व्यक्ति को बिलकुल छोड़ देने चाहिए। दूध, दही, छाछ, फल, गेहूं, जौ, मूँग, चावल, हरी सब्जियां आदि हलके एवं सुपाच्य पदार्थों के सेवन से न केवल व्यक्ति स्वस्थ रहता है अपितु मन भी शुद्ध बन जाता है— जैसा खाये अन्न वैसा होये मन।

6. प्रारम्भ से ही स्वस्थ रहने की दृढ़ कामना जिन व्यक्तियों में पैदा हो जाती है वे सदैव आसन, व्यायाम, सात्विक भोजन एवं ब्रह्मचर्य-रक्षा के द्वारा शक्ति संचय करते हैं। वे जानते हैं कि अन्न से उससे रस बनता है, रस से रक्त और इस प्रकार सात धातुओं में वीर्य का स्थान अन्तिम तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण है; वीर्य ही जीवन है। इसलिए स्वस्थ रहने के लिए वे ब्रह्मचर्य पालन करते हैं।

7. जिस प्रकार भिक्षा न मिलने पर याचक निराश लौट जाता है, उसी प्रकार जिनका रहन-सहन, भोजनादि शुद्ध और सादा होता है, उनके पास से विषय-वासनायें भी निराश लौट जाती हैं, फैशन, तड़क-भड़क एवं विलास-पूर्ण वस्तुएं कुवि-चारों के अड्डे होते हैं।

8. गांधीजी के तीन बन्दर–बुरा मत कहो, बुरा मत देखो और बुरा मत सुनो–शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का मूलमन्त्र है। ब्रह्मचर्य पालन के लिए बुरी बातें सोचने, कहने, देखने, करने से बचना चाहिये।

9. व्यायाम और खेल ब्रह्मचर्य-रक्षा के अपूर्व साधन हैं। ब्रह्मचर्य रक्षार्थ इनकी उपयोगिता नियमित अभ्यास से ही जानी जा सकती है।

गृहस्थ जीवन को भी हमारे शास्त्रों में धर्म कहा है, अतः 50 वर्ष की आयु तक मर्यादा व संयम के साथ गृहस्थ धर्म निभाना चाहिए। शेष जीवन को समाज-हित और आत्म कल्याण के लिए लगा देना चाहिए। सुख स्वास्थ्य और आत्मसंतोष का इससे अच्छा कोई दूसरा उपाय नहीं है। अन्यथा अशान्ति और तनाव ही हाथ लगते हैं और आत्मा का सारा वैभव नष्ट हो जाता है। अन्त में फिर दो बातें—भोग भोगने से भोग की इच्छायें उसी प्रकार बढ़ती हैं जैसे आग में घी डालने से आग की लपटें तेज हो जाती हैं। और दूसरी उपनिषद का सूक्त—एकश्च चतुरोवेदा ब्रह्मचर्यं तथैकतः अर्थात् चारों वेद एक ओर हैं और ब्रह्मचर्य दूसरी ओर। ब्रह्मचर्य ही जीवन हैं अतः प्रत्येक मनुष्य को अपने शरीर की रक्षा करने के लिए वीर्य की रक्षा करनी चाहिए। हमारे द्वारा किये गये भोजन का सार भाग वीर्य ही है। इसको नष्ट करने से व्यक्ति को अनेक रोग घेर लेते हैं और उसकी अकाल मृत्यु हो जाती है जैसा कि चरक संहिता निदान 6/9 से स्पष्ट है—

आहारस्य परं धाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः।
क्षयो ह्यस्य बहून रोगाभरणं वा नियच्छति॥ □

की आदत डालना बड़ा महत्वपूर्ण है। हंसना प्रकृति का सबसे बड़ा टानिक है। शरीर और मस्तिष्क को उससे नया प्राण प्राप्त होता है। मुस्कराने या हंसने मात्र से हमारा दृष्टि कोण ही बदल जाता हैं। हमारे मस्तिष्क में आच्छादित अन्धकार दूर हो जाता है और जो चीज कुछ मिनट पहले विकट दीखती थी, उसे हम आसानी से हल करने में समर्थ हो जाते हैं।"

तनाव की श्रेष्ठतम दवा—डॉ. होम्स ने एक स्थान पर कहा है, "प्रसन्नता परमात्मा की दी हुई औषधि है। यह ऐसी औषधि है जिससे प्रत्येक व्यक्ति को स्नान करना चाहिए।" विश्व के अनेक डाक्टरों ने विभिन्न रोगियों पर हंसी के परीक्षण किये हैं। डॉ होम्स ने तनाव व रक्तचाप के रोगियों पर परीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला कि हंसी की क्रिया के पश्चात शरीर को वैसी ही ताजगी और स्फूर्ति प्राप्त होती है जैसी गहरी नींद सोने से। हंसी से शरीर के समस्त अङ्गों का तनाव दूर हो जाता है और समस्त शारीरिक तत्व ढीले पड़ जाते हैं, इससे ताजगी आती है और विश्राम मिलता है। अपच व अनिद्रा के रोगियों पर भी परीक्षण किये गये है। इन परीक्षणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रसन्नता इन रोगों की एक कारगर दवा है। यकृत, फेफड़े, रक्त शुद्धि आदि के लिए प्रसन्नता की भूमिका को अब सभी स्वीकारने लगे है। तनाव की तो इससे अच्छी दवा शायद ही अब तक ईजाद हुई हो।

लोकप्रियता की कुन्जी—बीवर ने एक स्थान पर लिखा है, उन लोगों को निकाल बाहर करो जो जीवन जैसी वस्तु को चीखते-चिल्लाते हुए व्यतीत करते हैं। ध्यान रहे जो व्यक्ति हंस नहीं सकता, वह प्रसन्न और सुखी भी नहीं रह सकता।" प्रसन्नमुख व्यक्ति का न केवल सभी स्वागत करते हैं, अपितु उसके साथ भी रहना चाहते हैं। होम्स लिखते हैं—गम्भीरता का लवादा ओढने वाले व्यक्ति मेले में भी अकेले रहते हैं। इसके विपरीत प्रसन्नता का चुम्बक अकेले में भी मेलों का आयोजन कर देता है। हास्य की दैवी शक्ति के कारण ही प्राचीन समय में राज दरबारों में विदूषक रहते थे और राजा महाराजा उनको इनाम दिया करते थे। राजा एडवर्ड द्वितीय के बारे में तो यह प्रसिद्ध है कि वह एक बार हँसाने का एक क्राउन पारितोषिक में दिया करते थे। बीरबल और तेनालीराम की हास्य फुलझड़ियाँ आज भी गुदगुदाती हैं और सारे तनाव और मन की कुन्ठाओं को क्षण भर में छू-मन्तर कर देती हैं।

हँसना ही जीवन है—मुस्कराते हुए फूल सबको अच्छे लगते हैं। अगर वे मुस्कराते नहीं तो शायद अपनी सुरभि से जग-आँगन महका भी नहीं पाते। निर्जन

जंगल में रहकर भी वे मुस्कराते हैं। [illegible] की जेल में [illegible] किसी ने पूछा कि आप जेल में अकेले कैसे रह पाते हैं? उन्होंने उत्साह से उत्तर दिया—निर्मल आत्मा और आनन्दपूर्ण मन के रहते मुझे और क्या चाहिए। दीपक जलता है तो अन्धकार दूर भाग जाता है। प्रसन्नता जीवन का दीपक है जो तन को ही नहीं, मन को भी प्रकाश से भर देता है। प्रसन्नता जीवन का एक ऐसा आभूषण है जो दया, प्रेम, सज्जनता और आत्मदान के नगीनों से जड़ा है। यदि व्यक्ति चाहता है कि यह आभूषण सदा चमकता रहे तो इन नगीनों की देखभाल करनी होगी। फूल जब मुस्कराना बन्द कर देते हैं; दीपक जब टिमटिमाना बन्द कर देता है; पक्षी जब चहचहाना बन्द कर देते हैं; निर्झर जब बहना बन्द कर देता है; उसी क्षण मृत्यु हो जाती है। हंसना जीवन ही नहीं जीवन का शृंगार भी है।

हँसना व्यायाम भी है—हँसना रामबाण औषधि तो है ही, व्यायाम भी है। हँसने की क्रिया में मुँह, गर्दन, छाती और पेट की मांस पेशियों को भाग लेना पड़ता है, जिससे ये क्रियाशील बनती हैं। मस्तिष्क के ज्ञानतन्तु और फेफड़ों का व्यायाम भी हंसने से हो जाता है। मजे की बात तो यह है कि यह एक ऐसा व्यायाम है जो रोग की दशा में भी उतना लाभ करता है जितना स्वस्थ दशा में। पेरिस के एक डाक्टर रोगियों को विभिन्न साधनों से-हँसा कर ही रोग ठीक किया करते थे। जयपुर के प्रसिद्ध डा. के. जी. शारदा ने एक स्थान पर लिखा है कि एक बार एक बुखार के रोगी को डाक्टर ने कड़वी दवा दी। वह दवा रोगी के पालतू बन्दर ने पीली। दवा की कड़ुआहट के कारण बन्दर तरह-तरह के मुँह बनाने लगा। उसकी विचित्र मुखमुद्रायें देखकर रोगी भी हँसने लगा। कुछ देर बाद रोगी का बुखार उतर गया।

जीवन कला का दूसरा नाम—अरस्तु ने एक स्थान पर लिखा है कि प्रसन्नता और कुछ नहीं, जीवन कला का दूसरा नाम है। यह आसमान से नहीं टपकती अपितु, इसका स्रोत भले इंसानों का अन्तर्मन है। पंडित श्री राम शर्मा आचार्य लिखते हैं कि होठों को मनहूसों की तरह बन्द रखना ऐसा है जैसे किसी जीवित मनुष्य को मुर्दे का कफन उढ़ा देना। होठों के बीच [illegible] मुस्कान जब खिलती है तो पूरा व्यक्तित्व उसी प्रकार खिल उठता है, जिस प्रकार सूर्योदय होने पर कमल खिल उठते हैं। डा. मार्टिन गैरट ने अपनी पुस्तक 'दी [illegible]' में लिखा है कि हँसता हुआ व्यक्ति संसार का सबसे बड़ा [illegible] है, जब वह हँसता है तो मोती झरते हैं।

प्रसन्नता का मूल मन्त्र—"हानि-लाभ जीवन मरण यश अपयश [illegible] तुलसी के इस कथन को अपने जीवन का [illegible] बनाने वाले [illegible]

कमल की तरह खिले रहते हैं। जिन क्षणों में उनके होठों की हँसी मन्द पड़जाती है, उस समय भी उनकी आत्मा से जीवन-वीणा के मधुर स्वर निकलते रहते हैं। पंडित श्री राम शर्मा आचार्य लिखते हैं कि **सज्जनता और प्रसन्नता सहोदर बहिनें है। ओछे विचार और हेय काम व्यक्ति को कभी प्रसन्न नहीं रख सकते।** जीवन को खेल समझकर जीना और जो उपलब्ध है उसका सदुपयोग करना आत्म-सन्तोष का सबसे बड़ा उपाय है। सबके साथ हिल-मिल कर रहने और मिल बाँटकर खाने की आदत व्यक्ति में एक ऐसे सामाजिक दृष्टिकोण को जन्म देती है 'जहाँ से प्रसन्नता की निर्झारिणी फूटती है। गुनगुनाना मन की प्रसन्नता का सर्व सुलभ साधन है। भजन, कीर्तन, हास्य रस से युक्त साहित्य. टेप, कवि सम्मेलन, टी. वी., सिनेमा आदि तन ही नहीं मन में भी प्रसन्नता की लहर दौड़ा देते हैं।

इसलिए आपसे आग्रह है—हँसिए, जी खोल कर हँसिए; खिल खिलाकर हँसिए; आपके चेहरे पर गुलाव महकने लगेंगे; आप के जीवन में मधुमास खिल-खिलाने लगेगा। प्रसन्नता इस दुनिया का दिव्य लोक है जो जीवन को स्वर्गीय आनन्द से भर देता है। ☐

१.

कौन कहता है मधुमेह असाध्य है

स्वस्थ शरीर, शान्त मन और मुखमण्डल पर अठखेलियाँ करती प्रसन्नता—जहाँ ये तीनों चीजें होती हैं, जीने का आनन्द आ जाता है। सच बात तो यह है कि विधाता ने ये तीनों ही चीजें मनुष्य को सहज रूप में ही प्रदान की हैं। बच्चों में इनका अनूठा संगम होता है। जो बच्चे ईश्वर के इस अद्भुत वरदान से वंचित भी होते हैं, उसमें उनका दोष नहीं होता, अपितु उनके माता-पिता के द्वारा की गई गलतियों या गर्भावस्था के कारण उनको इन वरदानों से हाथ धोना पड़ता है। मनुष्य जाने-अनजाने अनेक प्रकार की गलतियाँ करता है और सहज रूप से प्राप्त प्रकृति माता के इस अनमोल खजाने से वंचित होता चला जाता है। उसे पता ही नहीं पड़ता कि कब उसकी जीवन-बगिया में पतझड़ ने आकर घेरा डाल दिया है और जब उसकी आँखें खुलती हैं, चिड़िया खेत चुग गई होती है। किन्तु तब भी यदि मनुष्य का विवेक जाग्रत हो जाता है और वह 'देर आयद दुरुस्त आयद' के सिद्धान्त को अपना लेता है, तो भी मधुमेह जैसे भयंकर रोग से छुटकारा पा सकता है।

मधुमेह क्या है? मधुमेह का इतिहास उतना ही पुराना है, जितना मानव जाति का। प्राकृतिक स्वास्थ्य परिषद्, अजमेर के सं० मन्त्री और प्रसिद्ध स्वास्थ्य शास्त्री श्री नृसिंह देव अरोड़ा ने मधुमेह के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि ऐश्वर्य, मोटापा और मधुमेह आदि काल से सदा एक-दूसरे के साथी रहे हैं। कठोर श्रम करने वाले किसान एवं श्रमिक शायद ही इस रोग से पीड़ित होते हैं, जबकि अफसरों, शिक्षा-शास्त्रियों, उद्योगपतियों और व्यापारी-वर्ग के व्यक्तियों में यह रोग अधिक पाया जाता है। पक्वाशय के गोल घेरे में जठर (स्टमक) के नीचे व पीछे तथा प्लीहा (स्प्लीन) की दायीं ओर एक स्वादुपिण्ड यानी पैंक्रियाज नामक क्लोम ग्रन्थि होती है, जो शारीरिक पाचक रस का स्राव करती है। इस रस को क्लोम रस या इन्सुलीन कहते हैं। इस रस से हमारे भोजन में निहित शक्कर तत्व का शरीर में संग्रह होता है और हमें कार्य करने की शक्ति प्राप्त होती है। अनेक कारणों से (जिनका विवरण आगे दिया जायेगा) जब यह ग्रन्थि अस्वस्थ हो जाती है तो इसमें से इन्सुलीन हार्मोन —

हींग (दोनों भुने हुए) से बनाई गई छाछ (रायता) का नित्य प्रति एक बार नाश्ते में या भोजन के साथ अवश्य सेवन करें।

३. आँवला, जामुन, करेला, बथुआ, मैथी, चौलाई, बेल, खीरा, ककड़ी, लहशुन, प्याज, टमाटर, मूली, गाजर, पालक, शाकाहारी सूप, पुदीना, अदरक, टिण्डे, परवल, तोरई, सहजने के फूल या फली की सब्जी, नीबू, चुकन्दर आदि शाक-सब्जी और फलों का सेवन करते रहने से मधुमेह तेजहीन हो जाता है।

खरबूजा, सन्तरा, सेब, नाशपाती, अमरूद, दूध, दही, छेना आदि का प्रयोग सीमित मात्रा में यदाकदा और बिना चीनी के किया जा सकता है।

त्याज्य—आलू, अरबी, शकरकन्द, चावल, चीनी, ग्लूकोज, मीठी चीजें, मिठाइयाँ, शहद, जैम, मैदा व मैदा से बने पदार्थ, गरिष्ठ व तले पदार्थ, घी, मक्खन, शहद टॉफी, बेकरी की सभी चीजें, माँस, मदिरा, अण्डा, मल-मूत्रादि के वेगों को रोकना, दिन में सोना, निठल्ले बैठना या अधिक श्रम, भोजन के साथ अधिक पानी पीना, खजूर, किशमिश, मुनक्का, अंगूर, आम, केला आदि मीठे, गरिष्ठ और कफवर्द्धक पदार्थ व आहार-विहार का सर्वथा परित्याग कर देना चाहिए। धूम्रपान न करें। पानी एक साथ अधिक मात्रा में न करके थोड़ा-थोड़ा घूँट-घूँट कर पीना उचित रहता है। मानसिक श्रम अधिक न करें। इन प्रतिबन्धक उपायों से मधुमेह पर काबू पाया जा सकता है।

सहगामी उपाय :

१. नित्य प्रति प्रातः सायं भ्रमण अवश्य करें।

२. सरसों के तेल या चन्दन बलालाक्षादि तेल से शरीर की मालिश किया करें।

३. संयमित, सादा-जीवन और उच्च विचार के सिद्धान्त को अपनायें।

४. चना, मूँग, मौंठ के अंकुरित दाने अल्पाहार में लें और ऊपर लिखा रायते-छाछ का सेवन करें।

५. प्रभातकालीन हल्की धूप व स्वच्छ वायु का सेवन एक अच्छा मधुमेह निरोधी उपाय है।

६. कुछ दिन घूमने का अभ्यास हो जाने के बाद धीरे-धीरे दौड़ना प्रारम्भ करना चाहिए।

प्रभावशाली घरेलू उपाय एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा :

यहाँ आयुर्वेदिक जड़ी-बूटियों से बना एक अत्यन्त चमत्कारी योग दिया जा रहा है। चिकित्सकों और रोगियों से हमारा आग्रह है कि इस अचूक योग के परिणाम की जानकारी हमें अवश्य दें।

योग—आम की गुठली की गिरी, जामुन की गुठली की गिरी, बबूल की कच्ची फली, गुड़मार बूटी, बेल-पत्र, तेजपात, गिलोय, मैथीबीज, कूठ, छाया में सुखाये

गये करेले का चूर्ण समभाग लेकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण के बराबर त्रिफले का चूर्ण भी इनमें मिला लें। प्रातः सायं ५-५ ग्राम दवा जल के साथ लें। इस दवा में यदि प्रति खुराक १-१ गोली चन्द्र प्रभा वटी भी मिला दी जाये तो दवा और भी चमत्कारी असर दिखाती है। उचित खान-पान, आहार-विहार के साथ इस घरेलू प्रयोग के सेवन से मधुमेह रोग के समूल नष्ट होने की 90% सम्भावना है। सभी जड़ी-बूटियाँ आयुर्वेद की कसौटी पर शताब्दियों से खरी उतरती रही हैं। आजकल भी इनमें से अनेक पर परीक्षण हो रहे हैं। **राष्ट्रीय पोषक अनुसंधान केन्द्र हैदराबाद की खोज के अनुसार दानामैथी का प्रयोग मधुमेह और हृदय रोग पर अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के चिकित्सा विज्ञान संस्थान ने 'तेजपात और मधुमेह' पर खोज की और इसे मधुमेह पर काफी कारगर पाया है। यही संस्थान कूठ (Sausserialappa) पर भी शोध कर रहा है।** प्रारम्भिक निष्कर्षों के आधार पर मधुमेह पर इसे लाभकारी पाया गया है। प्रो० झारखण्डे ओझा, विभागाध्यक्ष (उक्त संस्थान) ने अपने लेख—'कुष्ठ और मधुमेह' में **सर सुन्दरलाल चिकित्सालय में हुए परीक्षण के आधार पर निष्कर्ष निकाला है कि कुष्ठ के प्रयोग से रक्तशर्करा में ह्रास के साथ-साथ मधुमेह जन्य व्रणों के रोपण में भी सहायता मिली है।** हमने ऊपर लिखे गये प्रयोग का परीक्षण अनेक रोगियों पर किया है और इसके आशातीत परिणाम निकले हैं। हम इस प्रयोग के साथ रात्रि को गर्म जल से त्रिफला और भुसी ईसवगोल ५+५ ग्राम भी सेवन कराते हैं।

यदि उपर्युक्त चूर्ण भोजन के बाद और हेमनाथ रस या वसन्त कुसुमाकर १-१ गोली प्रातः सायं त्रिफला क्वाथ या आँवले के रस के साथ सेवन की जाये तो मधुमेह समूल नष्ट हो जाता है। मधुमेह हर योग और मधुमेह दर्पहारी इस रोग की अव्यर्थ दवायें हैं किन्तु ये अफीम योग हैं अतः सुयोग्य चिकित्सक की देखरेख में ही सेवन करने चाहिए। जो रोगी इन्सुलीन के अभ्यस्त हैं उन्हें भी चिकित्सक की देखरेख में इन दवाओं का सेवन करना चाहिए।

हमारा अनेक बार का अनुभव है कि ऊपर लिखा चूर्ण+चन्द्रप्रभा+त्रिफला का योग इन्सुलीन के प्रयोग के साथ-साथ सेवन किया जाये, उचित आहार-विहार आसनादि का अभ्यास किया जाये तो न केवल इन्सुलीन अपितु इस रोग से भी छुटकारा मिल जाता है।

यौगिक चिकित्सा :

मधुमेह के निवारण के लिए ताड़ासन, जानु-शिरासन, सर्वाङ्गासन, पश्चिमोत्तानासन, सर्पासन, शलभासन, धनुरासन, मयूरासन, पवन मुक्तासन व शीर्षासन अच्छे माने गए हैं। सूर्यनमस्कार भी मधुमेह में उपयोगी सिद्ध होता है।

मयूरासन व धनुरासन मधुमेह के लिए अधिक उपयुक्त रहते हैं, लेकिन थोड़े कठिन होने के कारण कई लोग इन आसनों को नहीं कर पाते। खास तौर पर भारी शरीर के लोगों से यह आसन नहीं सध पाता। जो व्यक्ति मयूरासन व धनुरासन न कर सकें वे इनका विकल्प नाभि आसन करें।

यहाँ मयूरासन करने की विधि दी जा रही है :

मयूरासन के लिए दोनों हथेलियों के बीच चार अंगुल जगह छोड़कर दोनों कोहनियों को नाभि के दोनों तरफ जमाते हुए कोहनियों व हथेलियों के बल पर सारे शरीर को ऊपर उठायें। पैर से सिर तक शरीर सीधा खिंचा रहे।

नाभि आसन के लिए पेट के बल लेटकर दोनों भुजाओं को सिर के आगे एक साथ उठाकर फैलाइए। टाँगों को भी परस्पर मिलाए रखें। श्वांस भीतर करते हुए दोनों भुजाओं, सिर, छाती, टाँगों को एक साथ ऊपर उठाइए। स्थिति ऐसी बननी चाहिए कि केवल नाभि व उसके आस-पास का भाग ही जमीन से लगा रहे। भुजाओं, टाँगों और सिर को जितना ऊपर उठाया जा सकता है, उठाना चाहिए। जब तक श्वास को आराम से भीतर रोक सकें, आसन साधे रहें। बाद में श्वांस छोड़ते हुए अंगों को ढीला छोड़ दें। इस आसन को तीन बार करना चाहिए।

इस आसन में अग्न्याशय पर दबाव पड़ता है तथा आगे-पीछे हिलने-डुलने से **अग्न्याशय पर जोरदार हरकत पहुँचती है। जिससे वहाँ रक्त संचार बढ़ता है और ग्रन्थि के निष्क्रिय पड़े हुए कोष्ठ क्रियाशील होकर धीरे-धीरे 'इन्सुलीन' बनाने और निकालने लगते हैं।**

मधुमेह जीर्ण रोगों की श्रेणी में आता है, अतः इसका इलाज भी लम्बा चलता है। दो-तीन महीने तक लगातार उचित आहार लेने तथा नियमित व्यायाम करने के बाद कहीं जाकर रोग से छुटकारा मिलता है। रोग की स्थिति की जानकारी के लिए चिकित्सक से परीक्षा कराते रहना चाहिए और रोग निर्मूल होने के 1–2 माह बाद तक आसनों का अभ्यास करते रहना चाहिए।

होम्योपैथिक चिकित्सा :

प्रसिद्ध होम्यो चिकित्सक सैण्डर के अनुसार नेट्रम-सल्फ–२०० और नेट्रमफास–२०० इस रोग की सिद्ध औषधियाँ हैं। वे लिखते हैं कि मैंने इन दवाओं के द्वारा अनेक मधुमेह रोगियों को ठीक किया है। मधुमेह के साथ गठिया वात होने पर नेट्रम-सल्फ देना चाहिए अन्यथा इन दवाओं को पर्याय क्रम से दो-दो बार सेवन कराना चाहिए।

☐ सिजियम जैम्बोलिनम–६X—यह रोग की सभी अवस्थाओं में लाभ करता है। इससे मूत्र की आवृत्ति में कमी और शक्कर जाना कम हो जाता है।

- टेरिविन्थिना–३ भी इस रोग की अच्छी दवा है। रात के समय पेशाव का वेग अधिक, डकार, तली जमना, कभी गँदला और कभी विना रँग का सफेद पेशाब आदि लक्षणों में यह दवा काम करती है।
- एसिड फास्फोरिक–6—उदासी, सुस्ती, चीनी मिला बहुत अधिक पेशाव, पीठ व मूत्र-ग्रन्थि में दर्द, बहुत अधिक प्यास, ऐसी प्यास जो शान्त होना नहीं जानती, कमजोरी, याददाश्त का घटना आदि लक्षणों में इस दवा को याद करना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा।

प्राकृतिक चिकित्सा जो वास्तव में आयुर्वेद चिकित्सा का ही एक अंग है, से भी मधुमेह को दूर किया जा सकता है।

१. उपवास से इस रोग का इलाज प्रारम्भ करना चाहिए। कम से कम तीन दिन का उपवास आवश्यक है। उपवास काल में शाक-सब्जियों का सूप, ऊपर लिखे हुए फल और ताजा दही से बनी छाछ का सेवन करना चाहिए।

२. उपवास के दिनों में प्रतिदिन एनीमा से पेट साफ करना चाहिए और रात्रि में पेड़ू पर (टुण्डी से नीचे का भाग) गीली मिट्टी का प्रयोग करना चाहिए।

३. इसके बाद धीरे-धीरे भोजन शुरू करना चाहिए। भोजन में ऊपर दिया हुआ पथ्य और परहेज आवश्यक हैं।

४ प्रतिदिन सुबह-शाम १ कि० मी० से घूमना शुरू कर ३–४ कि०मी० तक अवश्य घूमना चाहिए।

५. प्रातः खाली पेट टब वाथ और रात्रि को भोजन के ३ घण्टे बाद गीली मिट्टी का प्रयोग पेड़ू पर करना चाहिए। सप्ताह में दो दिन एनीमा का प्रयोग करना चाहिए।

इस क्रम को ४० दिन तक करने से असाध्य समझा जाने वाला मधुमेह ठीक हो जाता है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि **'यावत् जीवेत सुखम् जीवेत'** की उक्ति को सार्थक करने के लिए ऊपर लिखे आहार-विहार को और औषधि को अपनायें और सदैव स्मरण रखें कि पर्याप्त मात्रा में आँवला खाने वालों, खूब पैदल घूमने वालों और योगासन करने वालों का मधुमेह बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

□

२.

दमा असाध्य नहीं है

बात उस समय की है, जब स्वास्थ्य पत्रिका अनन्तप्रभा का प्रकाशन प्रारम्भ नहीं हुआ था। एक दिन एक दुर्बल, कृश और क्षीणकाय, युवती अपनी चिकित्सा कराने मेरे पास आई। निरीहता उसकी आंखों की कोर-कोर में से टपक रही थी। युवावस्था में ही वृद्ध होती हुई उस युवती के सम्पूर्ण रूप-सौन्दर्य को दमा राहु-केतु बनकर ग्रसे जा रहा था। आते ही बोली, वैद्य जी ! जीवन भार हो गया है, मर सकती नहीं, इसलिए जीना पड़ रहा है। वैसे मैं जानती हूं कि दमा दम के साथ ही जाता है, किन्तु 'जब तक साँस तब तक आस', का विश्वास ही मुझे आपके पास ले आया है : अब तक अनेक वैद्य-डाक्टरों के चक्कर लगा चुकी हूं किन्तु हर जगह निराशा ही हाथ लगी है।"

मैंने पूछा, "क्या तुम ईश्वर पर विश्वास करती हो ? उसने सहज भाव से उत्तर दिया, "कौन भारतीय ऐसा होगा जो ईश्वर को न मानता हो।" मुझे उसके इस उत्तर में से ही चिकित्सा का सूत्र मिल गया। जहाँ तक मुझे याद है, मैंने उससे कहा था, ईश्वर की एक दिव्य धरोहर उसका एक अंश आत्मा के रूप में तुम्हारे पास सुरक्षित है। फिर भय किसका ? तुम्हारे पास एक मन है—संकल्पशाली मन। संकल्प को हमारे शास्त्रों में कल्पवृक्ष कहा गया है। मनोबल और इच्छा शक्ति के अद्‌भुत चमत्कारों का आज वैज्ञानिकों के पास भी कोई उत्तर नहीं। इनसे जो माँगो वही मिलता है।" इसके बाद मैंने यजुर्वेद का यह सूत्र भी सुनाया था—

सप्त ऋषयः प्रतिहिता शरीरे सप्त रक्षन्ति स व अप्रमादम्।"

उस म्लानवदना रोगिणी ने शायद उक्त सूत्र का अर्थ नहीं समझा होगा, किन्तु उसकी आँखों में आशा और विश्वास की एक अपूर्व चमक मुझे दिखाई दी। मैंने उसकी नाड़ी देखी, कुछ अन्य परीक्षण किए और उसके पूरे रोग का विवरण लिया। लगभग ३–३½ माह तक उसने पूरे पथ्य-परहेज के साथ दवाओं का सेवन किया। पूर्ण स्वस्थ होकर जब वह विदा माँगने मेरे पास आई तो पहले दिन की तरह उस दिन भी उसकी आँखों में आँसू थे। किन्तु इन आँसुओं में जीवन-संगीत बरस रहा था।

दमा है क्या—आज दमा एक विश्व व्यापी रोग बनकर समूची मानवता को ही अपने शिकंजे में जकड़ रहा है। दमा-रोगियों के बढ़ते हुए आंकड़ों ने वैज्ञानिकों, आहारशास्त्रियों और चिकित्सा-विज्ञानियों को यह सोचने को विवश कर दिया है कि यदि शीघ्र ही उचित उपाय न किये गये तो आगामी शताब्दी के प्रारम्भ में श्वसन संस्थान के रोगों की बाढ़ रोके न रुकेगी।

दमा, अस्थमा या श्वास श्वसन संस्थान का रोग है शरीर को स्वस्थ, स्फूर्तिवान और जीवित रखने के लिए पर्याप्त प्राणवायु (ऑक्सीजन) की जरूरत होती हैं। भोजन और पानी के अभाव में सामान्य व्यक्ति भी कई दिनों तक जीवित रह सकते हैं, किन्तु प्राणवायु के अभाव में व्यक्ति का जीवन कुछ मिनटों का ही खेल रह जाता है। रक्त शुद्धि के लिए भी प्राणवायु की महती आवश्यकता होती है। आजकल रोगों की जो बाढ़ आई हुई है, उसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि ताजा प्राणवायु की कमी के कारण व्यक्ति का रक्त अशुद्ध बना रहता है। दमे के दौरे का आक्रमण फेफड़ों पर पर होता है। श्वास नालिकाएँ बाँस की तरह गाँठदार बनी हुई होती हैं। इनमें थोड़ी-थोड़ी दूर पर मांसपेशियों की बनी हुई गाठें या छल्ले बने हुए होते हैं। दमा के आक्रमण के समय ये छल्ले सिकुड़ जाते हैं और कुछ मोटे हो जाते हैं। इसी बात को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जब ये छल्ले सिकुड़ते और मोटे होते हैं, तभी दमा का दौरा पड़ता है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति के सांस लेने और निकालने की प्रक्रिया में बाधा पड़ती है। शरीर को प्राणवायु की आवश्यकता होती है, अतः उसकी साँस लेने की गति बढ़ जाती है, किन्तु उसे सांस लेने में रुकावट है। अन्दर की सांस अन्दर ही रहने के कारण उसका दम घुटने लगता है और उसे अपने प्राण निकलते से प्रतीत होते हैं। यही दमा, अस्थमा या श्वास है। आयुर्वेद की भाषा में जब प्रकुपित वायु कफ के साथ श्वास यन्त्र या सांस के मार्ग को रोकने लगती है, तब श्वास रोग होता है। इसके दौरे का कोई निश्चित समय नहीं होता और न कोई निश्चित समय अवधि ही होती है। दौरा समाप्त हो जाने के बाद रोगी काफी कमजोरी अनुभव करता है।

क्यों होता है दमा—१. प्रकृति माता बड़ी ममतामयी है। स्वस्थ रहने और रोगों पर विजय प्राप्त करने के लिए उसने मनुष्य को एक अद्भुत शक्ति प्रदान की है। यह शक्ति है—जीवनी शक्ति, जिसे रोग प्रतिरोधक शक्ति या रेजिस्टेंस पॉवर भी कहते हैं। उचित आहार-बिहार संयमादि के अभाव और दिनचर्या व ऋतुचर्या का पालन न कर पाने के कारण तथा मानसिक दोषों—काम, क्रोध, लोभ, मोह, तनाव, ईर्ष्या, द्वेष, चिड़चिड़ापन के कारण मनुष्य की यह जीवनी शक्ति निरन्तर कमजोर होती जाती है। जीवनी शक्ति कमजोर हो जाने

पर व्यक्ति किसी पदार्थ विशेष या वातावरण से अनुकूलन स्थापित नहीं कर पाता और वह उस पदार्थ या वातावरण के प्रति अतिसम्वेदन शील हो जाता है। इनका उसके शरीर पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञानियों के अनुसार मनुष्य के शरीर में एन्टीवॉडीज (Antibodies) नामक तत्व होते हैं, जो बीमारियों से उसकी रक्षा करते हैं। इनके सम्पर्क में जब कुछ बाहरी विजातीय पदार्थ (Antigen)—अन्न, धूल, गन्ध, हवा आदि आते हैं तो एन्टीवॉडीज और एन्टीजन के मध्य या तो अनुकूलन हो जाता है या एक अति-सम्वेदनशील प्रतिक्रिया हो सकती है। कई बार इन बाहरी पदार्थों या वातावरण को शरीर सहन या स्वीकार नहीं करता, यही एलर्जी है। एलर्जी से नलिकाओं की दीवारों में सूजन हो जाती है। इस शोथ या सूजन से श्वास मार्ग सकरा हो जाता है जिससे साँस लेने में कष्ट होता है और लोहार की धौंकनी की तरह साँस जल्दी-जल्दी चलता है। इस प्रकार एलर्जी दमा का प्रमुख कारण है।

२. कफ कारक पदार्थों के अधिक सेवन से श्वास नलिकाएँ और इसकी शाखाएँ कफ से भर जाती हैं और श्वास मार्ग रुकने लगता है। शरीर इस कफ को निकालने के लिए प्रयत्न करता है। शरीर द्वारा किया गया यह प्रयत्न ही खाँसी है। कफ के अधिक जमा होने, सूख जाने या चिपक जाने से जब शरीर इसे बाहर नहीं निकाल पाता तो साँस लेने में कठिनाई होती है, साँस जल्दी-जल्दी चलने लगती है और दम फूलने लगता है।

३ कई बार दमा वंशानुगत भी होता है और माता-पिता को यह रोग होने के कारण सन्तान में भी दमा होते देखा गया है।

४. अधिक समय तक नजला-जुकाम रहने या पीनस के कारण से भी यह रोग हो जाता है। विशेषकर जब इन रोगों को दबा दिया जाता है, तो दमा होने की सम्भावना अधिक हो जाती है।

५. शरीर में द्वन्द्व सहन करने की अद्भुत शक्ति होती हैं। कुछ लोगों में वर्षा, गर्मी, सर्दी, भूख, प्यास आदि को सहन करने की अधिक शक्ति होती है। **इनको सहने का अभ्यास मनुष्य को शनै-शनै करना चाहिए। इससे द्वन्द्व शक्ति सबल बनती है। इस शक्ति के सबल बन जाने पर व्यक्ति की जीवनी शक्ति बढ़ती है वास्तव में यह द्वन्द्व शक्ति ही जीवनी शक्ति की जननी होती है** किन्तु कुछ लोग मामूली-सी सर्दी-गर्मी आदि को सहन नहीं कर पाते। बहुत अधिक वर्षा या गर्मी-सर्दी में रहने से भी यह द्वन्द्व शक्ति कम हो जाती और वातानुकूलित वातावरण में रहना, फ्रिज, कूलर, मामूली सर्दी में भी गर्म पानी से स्नान या अधिक वस्त्रों का प्रयोग—ये सब कारण भी इस शक्ति को कमजोर बनाते हैं। इस शक्ति

की कमी हो जाने पर व्यक्ति जब वातानुकूलित कमरे से निकलकर बाहर जाता है या कमरे में आता है या इसी प्रकार के कार्य करता है तो उसे प्रायः दमा हो जाता है।

६. रात्रि जागरण, दिन में सोना, अधिक प्रतिस्पर्द्धा, दुस्साहस या शक्ति से अधिक कार्य, दूषित वातावरण में रहना, भोजन सम्बन्धी अनियमितता, उपवास, हृदय-वृक्क-मस्तिष्क पर आघात आदि कारणों से भी दमा रोग होते देखा गया है।

इलाज से पहले क्या करें—किसी रोग को जड़ से नष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि उस रोग के कारणों को ही नष्ट कर दिया जाये—न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। कारण मौजूद रहने पर अमृत भी रोगी को अच्छा नहीं कर सकता, फिर दवा की तो बिसात ही क्या? जिस प्रकार ऊपर से दूब को काटते रहने और उसकी जड़ को खाद-पानी से सेवित करते रहने से दूब कभी नष्ट नहीं हो सकती उसी प्रकार कारणों के मौजूद रहने पर रोग नष्ट होने की कल्पना स्वप्न में भी नहीं करनी चाहिये।

आयुर्वेद चिकित्सा-सूत्र के अनुसार दमा में संशोधन की प्रक्रिया अत्यन्त प्रभावी सिद्ध होती है। संशोधन का अर्थ है शरीर के दोषों, मलों या गन्दगी को निकालकर शरीर को शुद्ध बनाना या शरीर का शोधन करना। इसके लिए वमन, विरेचन, स्वेदन आदि का विधान है। दमा रोग में रोगी के बलाबल को देखकर सबसे पहले वमन कराना चाहिए। इसके लिए १–२ दिन रोगी को खिचड़ी खिलायें। खिचड़ी में ५०–१०० ग्राम तक घी डालें। तीसरे दिन प्रातःकाल गर्म पानी में वच, मैनफल, मुलहटी और सैंधानमक २० ग्राम तक डालकर रोगी को पिलायें। ऐसा करने से वमन द्वारा कफ निकल जायेगा और स्रोत शुद्ध हो जायेंगे। इन दिनों रोगी को कम तथा सुपाच्य भोजन लेना चाहिए। चौथे दिन रात्रि को १० ग्राम पंचसकार चूर्ण गर्म पानी से लेना चाहिए। इससे पेट साफ हो जायेगा। इस प्रकार शरीर का शोधन करने के बाद चिकित्सा करने पर दमा के ८० प्रतिशत रोगी ठीक होते हैं।

दमा रोगियों के लिये सुनहरे नियम—

१. भोजन तीन प्रकार का होता है—कफ कारक, कफ निस्सारक और कफ को खुश्क करके सुखाने वाला। दमा में वात और कफ का विकृत संयोग होता है, अतः पहली आवश्यकता है कफ दोष का प्रकोप शान्त किया जाये। कफ कारक भोजन अधिक लेने से कफ की वृद्धि होती रहेगी—अर्थात् रोग का आधारभूत और निमित्त कारण विद्यमान रहेगा। इसी प्रकार कफ को सुखाने वाला भोजन लिया जाये तो कफ श्वास नलिकाओं में चिपक कर भीषण कष्टकारक बन जायेगा।

इसलिए आवश्यकता है कफ निस्सारक (कफ को पिघलाकर बाहर निकलने वाला) पदार्थों का सेवन अधिक किया जाये। इसके साथ ही ये पदार्थ वायु का अनुलोम करने वाले सुपाच्य होने चाहिए। चोकर युक्त आटे की रोटी, छिलकेदार मूँग-मोंठ की दाल, दलिया, बथुआ, मैथी, लहसुन बकरी या गाय का दूध (दूध में २ छोटी पीपल व थोड़ा जल डालकर उबालें २–३ उबाल आने पर पीपल खा कर ऊपर दूध पीलें। खीरा, ककड़ी चुकन्दर, परवल, लौकी, तोरई, अंजीर, किशमिश, मुनक्का, छुआरा, खजूर, काली मिर्च, लौंग, अदरक, छोटी-बड़ी इलायची, आँवला, अंगूर, सन्तरा, अमरूद, मौसमी, पपीता, शहद आदि पदार्थों का सेवन दमा में लाभकारी सिद्ध होता है। दही, शर्बत, आइसक्रीम, बर्फ या फ्रीज का पानी, बेसन व मैदा से बने पदार्थ, अधिक गारिष्ठ पदार्थ आदि का सेवन नहीं करना चाहिए। आलू, केला, अरबी, फूल गोभी जैसे पदार्थ भी कम खाने चाहिए। हरी या लाल मिर्च, का यथा सम्भव त्याग कर देना चाहिए। तीव्र या ठण्डी हवा में घूमना और ओस में सोना सर्वथा त्याज्य है। शाम को जल्दी, कम मात्रा में और सुपाच्य भोजन लेने का अभ्यास बना लेना चाहिए। दिन में भोजन के बाद कभी न सोयें। भोजन से पूर्व सोना लाभप्रद रहता है।

२. कब्ज की स्थिति दमा के रोगियों के लिए अत्यन्त कष्टकर होती है। अतः भोजन का समय नियमित व निश्चित होना चाहिए। मल-मूत्रादि के वेगों को रोकना रोग को बढ़ाने वाला होता है। शौच दोनों समय जायें। ऊपर लिखे पदार्थों का सेवन करने से प्रायः कब्ज़ नहीं होता। नियमित भ्रमण करने वालों का कब्ज धीरे-धीरे दूर हो जाता है। फिर भी यदि कब्ज रहे तो माह में एक बार पंचसकार चूर्ण १० ग्राम तक रात को गर्म जल से या अमलतास २५ ग्राम को दो कप पानी में उबालकर आधा शेष रहने पर छानकर पीने से कब्ज दूर हो जाता हैं। ऐसी स्थिति में एनिमा सबसे अच्छा उपाय है।

३. जिन पदार्थों या जिस प्रकार के वातावरण से व्यक्ति को एलर्जी हो, उसका त्याग दमा का सर्वश्रेष्ठ उपाय है, किन्तु इसका पता लगाना अत्यन्त कठिन है। आजकल बड़े अस्पतालों में इसके परीक्षण होते हैं। यदि यह सम्भव न भी हो, तो जब छींकें आयें, आँखों या नाक से पानी निकले या अन्य एलर्जी जन्य लक्षण प्रकट हों तो अपने वातावरण व अन्य पदार्थों के विषय में अवश्य विचार करें कि एलर्जी का क्या कारण रहा होगा?

४. मनुष्य जो भोजन करता है, रक्त पर उसकी प्रतिक्रिया अम्लीय होती है या क्षारीय। रक्त में अम्ल और क्षार का सन्तुलन बने रहने पर रोग (विशेषकर दमा) सिर नहीं उठाते। किन्तु रक्त में अम्ल बढ़ जाने से अनेक रोग (दमा विशेष रूप से) व्यक्ति को अपने चंगुल में ले लेते हैं। अतः दमा रोगी को अम्लीय प्रभाव वाले भोजन का कम तथा क्षारीय प्रधान भोजन का अधिक सेवन करना

चाहिए। ऊपर सुनहरी नियम क्रमांक एक में लिखे हुए उपयोगी पदार्थों का सेवन रक्त में क्षार बढ़ाने वाला होता है।

५. प्रातःकालीन शुद्ध हवा का सेवन दमा रोगी को अमृततुल्य होता है। शुद्ध प्राणवायु, हँसते-इठलाते फूल, कलरव करते पक्षी और प्राची में ऊषा की मधुर मुस्कान प्रकृति माता की इस अगाध ममता के सामने तन के तो क्या मन के भी सारे रोग भाग जाते हैं। अतः प्रातःकाल और सायंकाल २–३ कि० मी० घूमना दमा का प्रभावी इलाज है।

6 हिन्दी में एक कहावत है—मन के हारे हार है, मन के जीते जीत। प्रातः सायं अपने इष्टदेव का ध्यान अवश्य कीजिए। इससे मन में अजेय शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। क्रोध और तनाव दमे के अच्छे दोस्त हैं। ध्यान से क्रोध और तनाव भी दूर होता है। इस प्रकार के शुद्ध, सात्विक और अजेय मन से आप जो माँगोगे, वही मिलेगा—अच्छा स्वास्थ्य और रोग से मुक्ति तो मामूली उपहार हैं।

आयुर्वेद में पाँच प्रकार के दमा रोग का वर्णन मिलता है—महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और शुद्ध श्वास। उपर्युक्त उपाय सभी प्रकार के रोगों में लाभप्रद रहते हैं।

श्वास की यौगिक चिकित्सा

१. योग की 'गजकरणी' क्रिया श्वास रोगियों के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। इस क्रिया के करते रहने से श्वास रोग होगा ही नहीं और यदि यह रोग हो गया हो तो धीरे-धीरे इसका प्रकोप कम होकर रोग निर्मूल हो जायेगा। यदि रोगी बहुत अधिक कमजोर न हो तो प्रातः एक गिलास से प्रारम्भ कर दो-तीन गिलास तक (रात्रि में ताम्र पात्र में रखा पानी अधिक उत्तम रहता है, अन्यथा ताजा पानी लें।) पानी (यदि सह सकें तो १ चम्मच सैंधा नमक डालकर) शौच जाने के बाद पीलें। इसके बाद गले में ऊंगली डालकर वमन करें। ऐसा करने से गले आदि में जमा हुआ कफ निकलता रहेगा और धीरे-धीरे रोग शान्त हो जायेगा।

२. दमा से मुक्ति के लिए सर्वांगासन, मत्स्यासन, धनुरासन और भुजंगासन उपयोगी सिद्ध हुए हैं। इन आसनों का अभ्यास करने से श्वास नलिका (ब्रांक्स) फैल जाती है जिससे फेफड़ों में श्वास जाने-आने लगता है और कफ भी निकलने लगता है। एलोपैथी चिकित्सक इन नलिकाओं को फैलाने के लिए ब्रांकोडाइलेटर्स दवायें देते हैं दौरे के समय तत्कालिक आराम के लिए इनको या अन्य उपचारों को काम में लाया जा सकता है। स्थायी लाभ के लिए आसनों का अभ्यास उपयोगी रहता है। हमारे अनुभव में भुजंगासन अधिक लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

भुजंगासन की क्रिया——कम्बल या दरी बिछाकर पेट के बल लेट जाइये। टाँगों को एक दूसरे से मिलाकर रखें और पंजों को फैला दें ताकि तलवे ऊपर की ओर रहें। भुजाएँ कोहनी पर मुड़ी रहें और हथेलियाँ छाती के पास फर्श पर टिकी रहनी चाहिए। हाथ के अँगूठे वक्षस्थल के पास और मस्तक जमीन से छूता हुआ रहेगा।

इसके बाद श्वास भरते हुए सिर से लेकर नाभि तक का हिस्सा धीरे-धीरे ऊपर उठाइये। धड़ उठाने में हथेलियों का हलका-सा सहारा लें। जैसे-जैसे धड़ उठेगा, कोहनियाँ खुलती जायेंगी, पर पूरी नहीं खुलेंगी। गर्दन पीछे की ओर पूरी तन जायेगी। दृष्टि आकाश की ओर रहेगी, जंघा जमीन से लगी रहेगी सुविधानुसार समय तक इस स्थिति में ठहरिये। इस क्रिया को प्रारम्भ में एक बार कीजिए। फिर प्रति सप्ताह एक—एक बार बढ़ाते हुए चार बार तक कीजिए।

३. योग शास्त्र के अनुसार बांयी नसिका से निकलने वाला श्वास का स्वर चन्द्र और दांया स्वर सूर्य स्वर कहलाता है। सूर्य स्वर की कमी से श्वास या दमा रोग होता है। यदि दाहिने स्वर को बढ़ाने का प्रयत्न और अभ्यास किया जाये तो इस रोग पर विजय पाई जा सकती है। विशेषकर प्रातःकाल या अन्य समय जब बायें स्वर प्रधान रूप से चल रहा हो (कौन-सा स्वर चल रहा है, यह जानने के लिए नाक के आगे हाथ रखकर जोर से श्वास बाहर निकालें। जिस ओर के नसिका छिद्र से अधिक तेजी से स्वर निकले, वही स्वर चलता हुआ जानना चाहिए।) तो बायें नसिका छिद्र को बन्द कर देना चाहिए। यह कार्य सहज और सरलता से करना चाहिए। असुविधा होने पर यह क्रिया बन्द कर देनी चाहिए। इस क्रिया के सध जाने से श्वास रोग से मुक्ति मिल जाती है। भस्त्रिका प्राणायाम भी श्वास रोग में बहुत प्रभावी सिद्ध होता है किन्तु इसका अभ्यास किसी दक्ष एवं अनुभवी योग शिक्षक की देख-रेख में करना चाहिए। फेफड़ों को पर्याप्त आक्सीजन मिले, इसके लिए प्रतिदिन २—४ मिनट इस क्रिया को भी करें—एक नथुना बन्द कर दूसरे से साँस लें फिर इसे बन्द कर लें और पहले वाले से साँस निकालें। यह क्रिया भी श्वास रोग में लाभप्रद रहती है।

प्राकृतिक चिकित्सा——प्राकृतिक चिकित्सक मानते हैं और हमारे अनुभव में भी आया है कि दमा रोग उन्हीं व्यक्तियों को होता है, जो सर्दी-जुकाम से अधिक पीड़ित रहते हैं। प्रकृति सर्दी-जुकाम के द्वारा शरीर की गन्दगी कफ के रूप में निकालना चाहती है। किन्तु जब रोग को दबा दिया जाता है तो प्रायः कुछ समय बाद रोग दमा के रूप प्रकट होता है। कफ श्वास नलिकाओं में चिपक जाता है और रोगी को परेशानी होती है। अतः प्राकृतिक चिकित्सा का पहला सिद्धान्त है कि शरीर की इस गन्दगी को निकाल दिया जाये इस सिद्धान्त के अनुसार भोजन कफ को पतला कर निकालने वाला होना चाहिये।

ऊपर इस प्रकार के भोजन का विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है। प्राकृतिक चिकित्सक फलों और सब्जियों की सलाद खाने पर अधिक बल देते हैं। भोजन के एक घण्टे पहले और दो घण्टे बाद पर्याप्त जल पीना चाहिए। भोजन के समय अधिक जल पीना दमा को बढ़ाता हैं। यदि भोजन के बीच में रात्रि में और प्रातःकाल थोड़ा सा गर्म जल पिया जाये तो रोग में आशातीत लाभ मिलता है। रात को बर्फ या फ्रिज का जल तो दमा का हार्दिक अभिनन्दन है। दमा रोगी के फेफड़े पर्याप्त कार्य करें और उन्हें पर्याप्त शुद्ध वायु मिले, इसके लिए सुबह-शाम खुली हवा में घूमना उपयोगी है। घूमने से रक्त-संचालन तीव्र होता है, सभी अंग सक्रिय हो जाते हैं और श्वास-प्रश्वास भी सरल हो जाता है। टहलते समय धीरे-धीरे और स्वाभाविक क्रम में गहरे सांस लेने का अभ्यास डालना दमा निवारण का एक कारगर प्राकृतिक उपचार है। लगभग १०—१५ बार तक गहरी सांस लेने का अभ्यास डालें।

१०—१५ मिनट तक प्रातःकाल की सूर्य की किरणों का पीठ और छाती पर सेक बड़ा उपयोगी रहता है। इसके आधे घण्टे बाद ताजा जल (सर्दियों में थोड़ा गर्म) से स्नान करना चाहिए। स्नान से पूर्व मोटे-खुरदरे तौलिये से शरीर को रगड़ लेना चाहिए। रात्रि में छाती पर गीली पट्टी का उपयोग इस रोग का बड़ा सरल, सहज और प्रभावी उपचार है। सर्दियों में ताजा पानी में और गर्मियों में ठण्डे जल में एक पतले सूती कपड़े की लम्बी पट्टी भिगो लें। निचोड़ने के बाद छाती, पीठ चौर कन्धों पर इसे लपेट दें। यदि नींद आ जाये तो सो जाना चाहिए अन्यथा २५—३० मिनट बाद पट्टी खोल दें। इन सब सरल उपायों से दमा चला जाता है।

होम्योपैथिक इलाज—श्री ईश्वरचन्द्र विद्या सागर ने **ब्लैटा ओरियेण्टेलिस–३X** का दिन में ४ बार सेवन कराके अनेक दमा रोगियों को अच्छा किया था। अतः सबसे पहले इस दवा को अजमाना चाहिए। इससे लाभ न होने पर नीचे लिखी दवायें लक्षणों के अनुसार दी जाती हैं। **कार्बोवेज–६** श्लेष्मा पतला और ढीला रहने पर दी जाती है नींद में एकाएक दमा का आक्रमण होने से रोगी उठ बैठता है और हांफा करता है। सांस रुकती है और बहुत हवा चाहता है। **इपीकाक–६** में वक्षस्थल में दबाव, जल्दी-जल्दी सांस, घर्र-घर्र या सांय-सांय का शब्द, सारे शरीर में ठण्डक, शरीर पीला, बैचेनी, मिचली, जल्दी-जल्दी खांसी रहती है। तीव्र प्रकोप के समय १० से ३० मिनट के अन्तर पर अन्यथा ४–४ घण्टे बाद सेवन करना चाहिए। **आर्सेनिक–६** बूढ़े, कमजोर और जिनकी जीवनी शक्ति चुक गई है उनके लिए यह दवा कारगर सिद्ध होतीं है। वक्षस्थल में जलन और ठण्डा पसीना, फेफड़े में खून इकट्ठा होने के कारण सांस में कष्ट होने पर इसका प्रयोग किया जाता है। इपीकाक से लाभ न होने या कम लाभ होने के बाद इस दवा के सेवन से अनेक

रोगी ठीक होते देखे गये हैं। विश्व प्रसिद्ध होम्योपैथ **डा० नैश ने सेनेगा** की ५–६ बूंदे दिन में ४ बार पिला कर दमा के अनेक रोगी ठीक किये थे। "बहुत सा बलगम जमा रहने के कारण लगातार कष्टकर खांसी और श्वास कष्ट" छाती में घर्र-घर्र शब्द, पहले सूखी और इसके बाद बहुत श्लेष्मा भरी खांसी के साथ सांय-सांय शब्द, सीने में दबाव या अकड़न। विश्राम करने या घूमने से रोग बढ़ता है और पसीना आने तथा सिर झुकाने पर उपसर्ग घट जाते हैं।

क्या करें यदि दमा का दौरा पड़ जाये ?

१. तीव्र दौरे के समय आगे की ओर झुककर बैठने से कष्ट कम होता है। रोगी के गले और छाती पर सैंधा नमक मिले घी (गो घृत हो तो उत्तम) को मलें। इसके बाद उबलते हुए जल के ऊपर छलनी या छटना रखें। फलालेन या सूती कपड़े के दो टुकड़े लेकर बारी-बारी से भाप से गरम करें और रोगी की छाती पर सेक करें। थोड़ी देर में ही दौरे का शमन हो जाता है।

२. किसी पात्र में सहने योग्य गर्म पानी लेकर उसमें रोगी के दोनों पैर घुटनों से नीचे तक डुबो दें। थोड़ी देर में ही वेग घटने लगेगा।

३. यदि खाना अधिक खाने या अपचन के कारण दौरा पड़ा हो तो वमन कराना उचित रहता है। कुछ अन्य साधन न हो तो सुहाते गर्म पानी में दो-तीन तोले पिसी हुई राई मिलाकर पिला दें। वमन होकर आराम मिल जायेगा। यदि दौरे का कारण कण्ठ का कफ हो तो फिटकरी को गर्म तवे पर फुलाकर पीस लें। यह ४–५ रत्ती लेकर ३–४ ग्राम मिश्री या बताशे के साथ खिला दें। पानी न पिलायें। स्मरण रखना चाहिए कि दौरे के समय प्यास लगने पर भी ताजा ठण्डा पानी न पिलायें। कण्ठ में कफ सूखने या कब्ज होने की स्थिति होते ही दमा रोगी को सावधान हो जाना चाहिए और इनकी निवृत्ति के उपाय करने चाहिए।

दौरे के समय या दौरे से पूर्व कफ निकालने के लिए आगे लिखे योग बड़े प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं। यवक्षार २–३ ग्राम लेकर ५ ग्राम घी मे मिलाकर चाटें। मोर पंख की पूँछ जलाकर उसकी राख शहद के साथ लेने से भी दौरा बैठ जाता है। कफ यदि सूख या चिपक गया हो तो २० ग्राम मुलहटी को ४०० ग्राम जल में उबालें। आधा रहने पर छानकर उसमें १० ग्राम घी, २० ग्राम मिश्री या बताशे और २ ग्राम सैंधा नमक मिलायें। आधा-आधा घण्टे के अन्तर से दिन में दो बार में सेवन करें। इससे कफ तुरन्त निकल जायेगा। धतूरे के फल को जला लें और इसे पीस कर १ ग्राम राख व 5 ग्राम शहद में चाटने से दौरे में तुरन्त राहत मिलती है। आक के पत्तों का रस १० से २० ग्राम पिला देने से वमन हो जाती है और कफ निकलकर दौरा रुक जाता है। आक के फूल की सूखी कलियां और काली मिर्च समभाग लेकर पीस लें, यह १ से १½ ग्राम ५ ग्राम शहद

में मिलाकर खिलाने से भी दौरा शान्त हो जाता है। अड़ूसे के १० ग्राम पत्तों को २०० ग्राम पानी में उबालें। सौ ग्राम रहने पर छान लें। उसमें ५ माशे शहद और सैंधा नमक एक ग्राम डालकर पीने मे दौरे की निवृत्ति हो जाती है। धतूरे के पत्ते, फल, शाखा आदि को सुखाकर रख लें इसको चिलम में रखकर या इसकी बीड़ी बनाकर पीने से भी तुरन्त राहत मिलती है।

एक्यूप्रेशर पाइन्ट द्वारा इलाज—अन्य उपायों के साथ एक्यूप्रेशर-पाइण्ट दबाने के उपाय भी काम में लाने चाहिए। हाथ की अंगुलियों के तीनों पोरवे दिन में दो-तीन बार दबाने चाहिए। हर बार प्रत्येक पोरवा दो-दो बार दबाना चाहिए। इस क्रिया के बाद हथेली के उभरे हुए भागों को क्रमशः दबायें। इन क्रियाओं में समय, श्रम, शक्ति, धन आदि कुछ भी खर्च नहीं होता।

आयुर्वेदिक चिकित्सा—वास्तव में आयुर्वेद चिकित्सा एक सम्पूर्ण चिकित्सा पद्धति है। इसमें, जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, शरीर संशोधन, वमन, विरेचन, पथ्य, परहेज, आहार, विहार, इलाज आदि सभी पक्षों को सम्मिलित किया गया है। जिस प्रकार घड़े में एक भी छिद्र रहने पर उसमें पानी नहीं रहता, उसी प्रकार पथ्यपरहेज के अभाव में चिकित्सा व्यर्थ सिद्ध होती है। यों तो आयुर्वेद में दमा की अनेक सिद्ध दवायें हैं, किन्तु हम कतिपय प्रभावी योग दे रहे हैं।

१. श्रृंग्यादि चूर्ण—काकड़ा सिंगी, सौंठ, पीपल, नागरमोथा, पुष्कर मूल, कचूर और काली मिर्च को समभाग लेकर कपड़छन चूर्ण करें। इस चूर्ण के बराबर इसमें मिश्री मिलाकर ५-५ ग्राम दवा दिन में तीन बार द्राक्षरिष्ट १० ग्राम व कनकासव ५ ग्राम में ३० ग्राम जल मिलाकर इस दवा से उक्त चूर्ण निरन्तर सेवन करते रहें। ऊपर लिखे आहार-विहार व सुनहरी नियमों का पालन करते हुए ६० दिन में यह दमा से मुक्ति दिला सकता है।

२. हरिद्रालेह—एक उत्तम दमानाशक दवा है। हल्दी, काली मिर्च, मुनक्का, रास्ना, पीपल और कचूर समभाग मिलाकर चूर्ण करें। पांच ग्राम इस चूर्ण में ५ ग्राम पुराना गुड़ व ५ ग्राम सरसों का तेल मिलाकर प्रातः एक बार चाटें। यदि सहन कर सकें और अरुचि न हो तो रात्रि को भी यह दवा खायें। खान-पान, पथ्य-परहेज का ध्यान दें। ४० दिन में दमा समूल चला जाता है।

३. कालेड़ा द्वारा प्रकाशित चिकित्सा तत्व प्रदीप, भारत भैषज्य रत्नाकार, वैद्य जीवनम्, चमत्कार चिन्तामणि आदि ग्रन्थों में पुराने गुड़ २० ग्राम में सरसों का तेल १० ग्राम मिलाकर सेवन करने से दमा रोग नष्ट होने की बात कही गई है। हमने भी इसे उपयोगी पाया है। किन्तु कमजोर व नाजुक मिजाज रोगी इसे २१ दिन तक नहीं ले पाते।

४. सबल रोगियों को एक बहुपरीक्षित योग दिया जा रहा है—आकौआ के दूध की १ से ३ बूँद बताशे में डाल कर प्रातः खाली पेट निगल जायें, पानी न

पियें। दवा सेवन के १ घण्टे पहले गर्म पानी पीलें। इस दवा का ३ से ५ दिन तक सेवन करें। चमत्कारी परिणाम सामने आता है।

हमने आयुर्वेद के अनेक शास्त्रीय योगों का उपयोग किया है और उनको प्रभावी भी पाया है। उनमें से एक विशेष प्रभावी और निरापद योग नीचे दिया जा रहा है।

सुबह-शाम—शृंग्यादि चूर्ण ५ ग्राम में मोर पंख की राख (बाजार में भी मयूर पुच्छ भस्म नाम से मिलती है। ये दवायें घर भी बना सकते हैं।) २ रत्ती मिलाकर शहद या गर्म पानी के साथ सेवन करना।

भोजन के बाद—द्राक्षारिष्ट १० ग्राम व कनकासव १० ग्राम में २० ग्राम जल मिला लें और इसके साथ ३–३ ग्राम सितोपलादि या वृहत् सितोपलादि चूर्ण सेवन करें। दालचीनी १० ग्राम, छोटी इलायची के बीज २० ग्राम छोटी पीपल ४० ग्राम वंशलोचन ८० ग्राम व मिश्री १६० ग्राम मिलाकर चूर्ण बनालें। यह सितोपलादि चूर्ण है। इसमें मुलहटी, बनप्सा के फूल, गावजवां और तालीस पत्र ४०–४० ग्राम मिलाने से यह वृहत् सितोपलादि चूर्ण बन जाता है।

रात्रि—च्यवनप्राश ५ ग्राम व भार्गी गुड़ ५ ग्राम में एक गोली श्वास कुठार मिलाकर ऊपर से बकरी का दूध या गर्म पानी पीना। १० मुनक्के व १ अंजीर को २०० ग्राम पानी में उबालें। सौ ग्राम रहने पर अंजीर व मुनक्के खालें और इस पानी को दूध में मिलालें। यह दूध ऊपर लिखी दवाओं के बाद पीलें रात का भोजन हलका व कम मात्रा में करना चाहिए।

उचित आहार-विहार और पथ्य-परहेज के साथ इस चिकित्सा क्रम को अपनाने से दमा के रोगियों को निराश नहीं होना पड़ेगा। ऊपर लिखे सुनहरी नियमों को अवश्य अपनायें।

एक विशेष अनुभव—अपने अनुभव में आई एक बात का उल्लेख यहाँ आवश्यक है—कुछ दिनों तक दवा का सेवन करते रहने से रोग ठीक होने लगता है। इस स्थिति में रोगी प्रायः अपना संयम और पथ्य-परहेज, आहार-विहारादि के नियमों को तोड़ने लगते हैं। पूर्ण रोगमुक्ति होने तक इनका पालन आवश्यक है। आयुर्वेद का यह कथन पूर्णतः सत्य है कि पथ्य का पालन न करने पर औषधि व्यर्थ है, (पथ्य-पालन से ही रोग ठीक होने लगेगा और दवा की जरूरत नहीं पड़ेगी।) और पथ्य-पालन न करने पर भी दवा व्यर्थ है, अर्थात् दवा पथ्य-पालन न करने से प्रभाव खोती जायेगी।

अन्त में हमारा विश्वास है कि दृढ़ मनोबल और फौलादी संकल्प के साथ हर दमा रोगी इस कहावत को झुठला सकता है कि दमा दम के साथ जाता है। □

३.

दिल की धड़कन सुनिए : हृदय रोग से बचिए

मनुष्य अमृत पुत्र है और मरना उसके लिए महज फटे-पुराने कपड़ों को बदलने की तरह है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि जिस प्रकार मनुष्य जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों को त्याग कर नूतन वस्त्र धारण करता है, उसी प्रकार जीव जीर्ण-शीर्ण शरीर को छोड़कर नया शरीर धारण करता है। किन्तु अमृत पुत्र मनुष्य बेमौत मरे या रोगों को आमन्त्रित करता फिरे यह सचमुच लज्जा की बात है। यह शरीर देव मन्दिर है और धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि स्वस्थ शरीर के द्वारा ही सम्भव है। प्रकृति माता के पास उसके सुख-स्वास्थ्य के लिए अद्भुत खजाना भरा पड़ा है। शुद्ध वायु, सूर्य का प्रकाश, मिट्टी, जड़ी-बूटियाँ, कलरव करते हुए पक्षी और डालियों पर मुस्कराते हुये फूलों के रहते मनुष्य रोगी रहे या अपने को रोगों से मुक्त न कर सके, इससे अधिक दुर्भाग्य की बात और क्या हो सकती है। क्षिति, जल पावक, गगन, समीरा से बना यह शरीर यदि इन्हीं पंचतत्वों से अपना नाता तोड़ ले और सभ्यता की अन्धी दौड़ में कृत्रिम जीवन जीने लगे तो उसका भगवान ही मालिक है। निरन्तर धड़कने वाला हृदय हमको अनेक चेतावनियां देता है, किन्तु जब हम उसकी धड़कन सुनने से इनकार कर देते हैं और मिथ्या आहार-विहार में लीन रहते हैं तो हमारा हृदय, रोगी हो जाता है। हृदय रोग हो जाने पर भी यदि मनुष्य 'सुबह का भूला शाम को घर लौट आता है,' तब भी हृदय स्वस्थ होकर अपना कार्य ठीक करने लगता है और यदि मनुष्य हृदय की धड़कनों की अनसुनी करता हुआ उस पर अत्याचार जारी रखता है, तो हृदय के पास भी जवाब देने के लिए कोई चारा नहीं रहता। भगवान का दिया हुआ असीमित शक्तियों का भण्डार यह दिव्य शरीर, कल्पवृक्ष के समान हमारा मनोबल और प्रकृति माता की शरण इन तीन ब्रह्मास्त्रों के सामने संसार का कोई रोग नहीं ठहर सकता, हृदय रोग की तो बिसात ही क्या ? किन्तु यह मनुष्य का दुर्भाग्य है कि हृदय रोग का नाम सुनते ही वह पसीना-पसीना हो जाता है, मनोबल क्षीण हो जाता है और ये स्थितियाँ उसे निरन्तर मौत के मुख में ढकेलती जाती हैं।

हृदय रोग है क्या—हृदय पूरे शरीर को खून की सप्लाई करता है और उसे अपना काम करने के लिए खून की जरूरत होती है। इस जरूरत को पूरी करने वाली दो रक्त-नलिकाएँ होती हैं, जिन्हें हृदय-धमनी (कारनरी

आर्टीज) कहते हैं। इन धमनियों में जब विकार उत्पन्न हो जाते हैं तो हृदय की खून-सप्लाई में बाधा पड़ती है और जब हृदय को वांछित मात्रा में खून नहीं मिलता तो वह अपने स्वाभाविक काम को करने में असमर्थ होने लगता है।

हृदय-धमनियों का मुख्य विकार होता है उनका संकुचित होना तथा सख्त पड़ जाना। इस स्थिति में धमनियों के भीतर चर्बी जमनी प्रारम्भ हो जाती है। चर्बी में 'कोलेस्ट्रोल' होता है जो चर्बी जमने की क्रिया के लिए जिम्मेदार होता है। धमनी के भीतर पतली धारियों के रूप में चर्बी जमनी शुरू होती है। ये धारियाँ पहले उठती हैं और फिर उखड़ जाती हैं, जिनसे वहाँ हल्के-हल्के जख्म बन जाते हैं, जिनके मूल में चर्बी होती है। इन जख्मों पर कैलशियम जैसे लवण जमा होकर उठने लगते हैं, फलत: धमनी सख्त होने के साथ ही संकरी हो जाती हैं। आगे यह दशा ही हृदय-शूल (एन्जाइना पैक्टोरिस) का रूप ले लेती है।

धमनी के सख्त और संकुचित होने के कारण हृदय के पास खून कम पहुँचता है। जब खून कम पहुँचता है तो आक्सीजन भी कम पहुँचती है क्योंकि आक्सीजन पहुँचने का माध्यम खून ही होता है। हृदय के जितने स्थान में रक्त कम आता है वहाँ का भाग समुचित पोषण न मिलने के कारण कुछ समय पश्चात् दुर्बल होने लगता है। और चूँकि इसे परिश्रम उतना ही करना पड़ता है जितना पहले करना पड़ता था अतः इसमें पीड़ा होने लगती है। यह पीड़ा उरोस्थि के पीछे या पूरे सीने में प्रतीत होती है तथा कभी-कभी बाईं भुजा तक पहुँच जाती है और गला घुटता हुआ-सा महसूस होता है। कभी-कभी पीड़ा के स्थान पर सीने में भारीपन या दबाव-सा प्रतीत होता है। इस पीड़ा को ही हृदय-शूल (एण्जाइना पैक्टोरिस) कहते हैं : जब सकरी धमनी में कोई खून का थक्का अटक जाता है तो इसे ही 'दिल का दौरा पड़ना' (मायोकर्डियल इन्फार्क्शन) कहते हैं। यदि यह स्थिति साधारण हो तो इसे इस्कीमिया (Ischemia) या स्थानीय रक्ताल्पता कहते हैं और स्थिति गम्भीर हो जाने पर प्रभावित अंग मृतप्राय: हो जाते है और इस स्थिति को ही दिल का दौरा (हार्ट अटैक या मायोकर्डियल इनफार्कशन) कहते हैं।

हृदय रोग के लक्षण—हृदय रोग के प्रमुख लक्षण हैं—सीने, गले या छाती में दर्द होना, छाती में भारीपन रहना, साँस लेने में कठिनाई, पसीना छूटना, हाथ-पैर ठण्डे हो जाना, नाड़ी की गति तेज या अनियमित होना, दिल की धड़कन बढ़ना, सीने का दर्द बायें कन्धे से होकर बाईं भुजा तक जाना। इन लक्षणों के उपस्थित होते ही व्यक्ति को सावधान हो जाना चाहिए और उचित चिकित्सा और उचित आहार-विहार अपनाना प्रारम्भ कर देना चाहिए।

हृदय शूल के समय क्या करें—उपर्युक्त लक्षण प्रारम्भ होते ही हमें हृदय रोग विशेषज्ञ या किसी अच्छे चिकित्सक के पास जाकर जांच करा लेनी चाहिए : यदि अचानक कभी सीने में दर्द की शिकायत हो, तो चिकित्सक के आने से पहले कुछ

जरूरी सावधानियां अपनानी चाहिए। रोगी को हवादार स्थान में लिटाना चाहिए क्योंकि इस समय उसे शुद्ध हवा की अविलम्ब आवश्यकता होती हैं। हाथ-पैर ठण्डे हो रहे हों तो उनको ढक लेना चाहिए। इस स्थिति में प्राय साँस लेने में कठिनाई होती है, उस समय रोगी को सिहराने के तकियों को ऊँचा कर दें। या बैठने से रोगी को आराम मिले तो उसे बैठा देना चाहिए। सीने में दर्द तुरन्त राहत देने वाली दवाइयों का सेवन भी डॉक्टर के आने से पहिले कर लेना चाहिए। ISORDIL 5Mg. गोलियाँ भी अनेक हृदय रोगी अपने पास रखते हैं। दर्द के समय इन गोलियों को जीभ के नीचे रखने से तुरन्त आराम मिलता है।

क्यों होते हैं हृदय रोग—हृदय रोग हो जाने के बाद रोग से छुटकारा पाने के उपाय किये जायें, इससे अच्छा है कि हृदय रोग होने ही न दिया जाये। मोटे तौर पर मनुष्य के जीवन को दो भागों में विभक्त किया गया है—भौतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन। भौतिक जीवन साधन है और आध्यात्मिक जीवन साध्य या लक्ष्य : यदि मनुष्य अपने वास्तविक साध्य या जीवन के लक्ष्य को भूलकर भौतिक सुख-सुविधाओं और आकर्षणों को अपना लक्ष्य मान लेता है और अपने समस्त क्रिया व्यापारों को भौतिक क्षेत्र तक सीमित कर लेता है तो उसके अन्दर एक असन्तुलन जन्म लेता है। इस असन्तुलन के कारण वह सच्चा सन्तोष और शान्ति का अनुभव नहीं कर पाता। परिणामस्वरूप यह अशान्ति और मन के उद्वेग हृदय पिण्ड और हृदय की रक्त-धमनियों पर बेहद विपरीत प्रभाव डालते हैं। इन कारणों से रक्त का दबाव भी अधिक या कम हो जाता है, जिसके कारण हृदय आक्रान्त हो जाता है। भौतिक आकर्षणों में आकंठ डूबे और माया के पाश में बँधे मानव को क्या दुष्परिणाम भोगने पड़ते हैं, इसका विवेचन हमारे प्राचीन मनीषियों ने इन शब्दों में किया है—

> माया मुग्धस्य जीवस्य ज्ञेयोऽनर्थश्चतुर्विधः।
> हृद्द दौर्वल्यमसत् तृष्णा संतापश्चित विभ्रमः॥

अर्थात् माया से विमुग्ध मनुष्य चार प्रकार की घातक व्याधियों का शिकार हो जाता है—हृदय दौर्वल्य, तृष्णा, सन्ताप और मन की चंचलता। कल्पना करें जहाँ ये चारों विद्यमान होंगे, उस व्यक्ति की क्या स्थिति होगी—उसे साक्षात् धन्वन्तरि जी भी ठीक नहीं कर सकते।

अध्यात्म को अपने जीवन से हटाने का दूसरा भयानक दुष्परिणाम यह हुआ है कि ज्ञान, भावना और क्रिया के धरातल पर मनुष्य खण्ड-खण्ड टूट गया है। वह जानता कुछ और है, सोचता कुछ और है और करता है कुछ और। यह स्थिति उसे कुण्ठित और तनाव में जीने के लिए विवश कर रही है और वह सुख, शान्ति

और सन्तोष से उतनी ही दूर है जितनी सागर से मरुथल की दूरी। उसका चंचल अस्थिर मन उससे अनेक प्रकार के प्रज्ञापराध करा रहा है। फलस्वरूप वह सत्य-असत्य का विवेक खो बैठा है। और मजबूरन, इन्द्रिय सुखों की प्रचण्ड आँधी में एक तिनके की तरह, गलत आहार-विहार और रहन-सहन के दलदल की ओर उड़ता हुआ चला जा रहा हैं। ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या, सदाचार सत्संग आदि की ओर देखने तक की उसे फुर्सत नहीं है। और यही कारण है कि हृदय-रोगों की बाढ़ आई है। इसका अनुमान हम इसी से लगा सकते हैं कि विश्व स्वास्थ्य संगठन के सौजन्य से अमेरिका-रूस सहयोग के अन्तर्गत १९७३ से अब तक २५ अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो चुके हैं व निरन्तर अनुसंधान कार्य हो रहा है।

अधिक चर्बी वाले, गरिष्ठ और तले हुए पदार्थों का अधिक सेवन भी हृदय रोगों को जन्म देता है। प्रत्यक्ष रूप से तो ये पदार्थ रक्त में कोलेस्टेरोल की मात्रा बढ़ा कर और धमनी काठिन्य को जन्म देकर हृदय रोग पैदा करते ही हैं, अप्रत्यक्ष रूप से कब्ज, मोटापा, मधुमेह और ब्लड प्रैशर जैसे रोगों को पैदा करके हृदय रोग के बीज बो देते हैं। बात परवान तब चढ़ती है, जब व्यक्ति आराम तलब जिन्दगी बिताता है और शारीरिक श्रम व व्यायाम से बचता है। शारीरिक क्रियाएँ न करने से कोलेस्टेरोल का संग्रह होता रहता है और रक्त धमनियों का लचकीलापन समाप्त हो कर उनमें कठोरता आने लगती है।

अनेक शोधों और वैज्ञानिक परीक्षणों से अब तक यह बात सिद्ध हो गई है कि धूम्रपान करने वाले व्यक्तियों में दिल का दौरा पड़ने की सम्भावना ५०% अधिक होती है। एक अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार १०० हृदय रोगियों में से ६६ रोगी धूम्रपान के अभ्यस्त होते हैं।

भारत सरकार की पत्रिका आरोग्य सन्देश में धूम्रपान और दिल का दौरा—शीर्षक से एक शोध परक लेख छपा है उसके अनुसार तम्बाकू में मौजूद निकोटिन तत्व 'एड्रेनेलिन' नामक स्राव को तेज करता हैं, जिससे हृदय की धड़कन बढ़ जाती है। और रक्तचाप में वृद्धि हो जाती है। फलस्वरूप हृदय को अधिक श्रम करना पड़ता हैं। धुएँ में मौजूद कार्बनमोनोक्साइड तत्व रक्त में हीमोग्लोबिन से मिलकर फेफड़ों में आक्सीजन भेजने की क्षमता कम कर देता हैं। धुएँ में मौजूद हाइड्रोकार्बन कोशिकाओं में परिवर्तन लाकर धमनी काठिन्य पैदा करने मे सहायक होता हैं। इसी लेख में आगे कहा गया कि धूम्रपान से सीरम कोलेस्टेरोल का स्तर बढ़ जाता हैं, जिससे दिल का दौरा पड़ सकता हैं।

दिल की धड़कन सुनिए—यदि व्यक्ति अपनी जीवन-डोर लम्बी करना चाहता,है और स्वस्थ्य व सुखी रह कर सौ वसन्त देखना चाहता है, तो उसे दिल की धड़कन सुननी चाहिए। दिल की धड़कन से जो पहला स्वर निकलता है वह है जीवन संगीत में रस लीजिये। विश्वास कीजिए कि अपनी मुस्कान से जग-आँगन

को महकाते हुए सुन्दर फूल, कलकल करती हुई नदी की जलधारा, कलरव करते हुए पक्षी, वर्फ से ढकी आकाश को छूती हुई पर्वतमालाएँ और आपके आँगन में अठखेलियाँ करते हुए बच्चे—ये सब आपके लिए हैं, केवल आपके लिए। इनके दिव्य आनन्द-रस का छक कर पान कीजिए। घर-परिवार में, कार्यालय में, मित्र मण्डली में—सब जगह अपने आपको सम रस बना लीजिए। चिन्ताएँ, कुण्ठाएँ, तनाव जो हृदय रोग के मुख्य कारण हैं, आपके पास फटकेंगे भी नहीं। हृदयरोग, लकवा, ब्लड प्रैशर, अनिद्रा, मधुमेह, एड्स, कैंसर आदि के रोगी, सबसे अधिक और अच्छी चिकित्सा सुविधाएँ होने के बावजूद भी, पाश्चात्य देशों में अधिक हैं। अतः हमारे जीवन की धुरी आध्यात्मिक से जुड़ी रहनी चाहिए। सदाचार, स्वाध्याय, भजन, पूजन आदि से जिस ईश्वरीय आनन्द की सरिता वहती है, वहाँ तनाव और उद्वेग जो हृदय रोग में प्रमुख कारण हैं, ठहर नहीं पाते।

विख्यात हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ. के. सी. कोटिया ने "इदम् शरीरम् हृदय साधनम्" में लिखा है—"रोग की उत्पत्ति में जहाँ मानसिक तनाव सबसे महत्वपूर्ण है वहाँ रोग के निराकरण व मुक्ति में शारीरिक क्रियाएँ सबसे अधिक प्रभावशाली हैं। इस अमोघ अस्त्र का उपयोग न करना अज्ञानता व अदूरदर्शिता का परिचायक है। हृदय शक्ति जीवन शक्ति है। अपनी जीवन शक्ति को कमजोर रखकर पूर्ण कर्म योग का कामना मृगमरीचिका के समान है।" रोग हो जाने पर हलके व्यायाम जैसे भ्रमण वैडमिण्टन, टेबिल टेनिस आदि को अपनाना चाहिए।

डॉ. जे. डेविड फाक्स ने अमेरिकन हार्ट एसोसिएशन के माध्यम से हृदयरोग के आक्रमण से बचने के लिए पंचसूत्रीय कार्यक्रम अपनाने को कहा है। उनके अनुसार—

१. वजन मत बढ़ने दीजिए।
२. नियमित व्यायाम करिए।
३. भोजन में पाशवीय चिकनाई (मांस, घी आदि) का प्रयोग कम कीजिए। ४० वर्ष के बाद बिलकुल नहीं।
४. धूम्रपान बन्द कर दीजिए।
५. उच्च रक्तचाप को नियन्त्रित कीजिए। प्रसन्नता और रक्तचाप कभी एक साथ नहीं रह सकते।

सुप्रसिद्ध हृदयरोग विशेषज्ञ डॉ के. के. दाँते ने 'हृदयरोग की सावधानियाँ' में उपर्युक्त वातों के अलावा शिथिलीकरण पर विशेष जोर दिया है। ब्लड प्रैशर और हृदयरोग में शिथिलीकरण वास्तव में आशीर्वाद स्वरूप ही है।" खुली हवा में या किसी हवादार कमरे में चित्त लेट जाइये और शरीर को बिलकुल ढीला छोड़ दीजिए। अभ्यास के प्रारम्भिक दिनों में अपनी सभी प्रकार की शारीरिक क्रियाओं व चेष्टाओं से अपने आपको मुक्त कर लीजिए। अपने आपको ऐसा बना लीजिए

मानो आप निष्प्राण-निर्जीव शव की तरह हैं। फिर धीरे-धीरे मन को एकाग्र या विचार-मुक्त करने का प्रयत्न कीजिए। ५ मि. से प्रारम्भ करके १५–२० मिनट तक या इससे भी अधिक समय तक यह अभ्यास किया जा सकता है। इस रोग में इस आसन की जितनी प्रशंसा की जाये, थोड़ी है।

आहार चिकित्सा—उपर्युक्त उपायों को अपनाते हुए व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने आहार की ओर ध्यान देना चाहिए। आहार चिकित्सा व्यक्ति को जीवन जीने की कला सिखाती है। इस कला के सध जाने से व्यक्ति के पास रोग नहीं फटक पाते। इसके साथ ही औषधियाँ भी तुरन्त लाभ करती हैं। प्राकृतिक चिकित्सा शास्त्री आहार चिकित्सा पर विशेष बल देते हैं। आयुर्वेद की तो प्रसिद्ध सूक्ति है ही-पथ्य करने पर औषधि की क्या जरूरत, अर्थात् रोग पथ्य से ठीक हो जायेगा, और पथ्य न करने पर औषधि की क्या जरूरत, अर्थात् पथ्य न करने पर रोगी को अमृत से भी अच्छा नहीं किया जा सकता। हम जो कुछ खाते हैं उनमें से कुछ खाद्यपदार्थ रक्त में अम्ल बढ़ाते हैं और कुछ क्षार। अम्लीय प्रभाव रखने वाले पदार्थ रक्त को गाढ़ा और रक्त वाहिनियों को कठोर बनाते हैं, जबकि क्षारीय प्रभाव वाले पदार्थ रक्त को पतला करते हैं और रक्त वाहिनियों में लचक पैदा करते हैं। अतः स्वास्थ्य के लिए अम्लीय व क्षारीय पदार्थों के सेवन में सन्तुलन बना रहना चाहिए। आधुनिक समय में (और हृदय रोगियो में तो शत प्रतिशत) अधिकाश व्यक्तियों का रक्त अम्लीय होता है। अतः हृदय रोगियों को फलों में सेब, अनार, मौसमी, सन्तरा, अंगुर पपीता, चीकू, आँवला आदि, सब्जियों में गाजर, बथुआ, मैथी, लौकी, तोरई, नीबू, लहसुन, प्याज आदि और मेवों में अंजीर, किशमिश, मुनक्का, छुआरा, खजूर आदि का सेवन उपयुक्त रहता है। गाय या बकरी का दूध, दही, चोकर समेत रोटी-ये सब पदार्थ उपयोगी रहते हैं।

आयुर्वेद ने जिन खाद्य पदार्थों को हृदयरोगों में अत्युत्तम माना वे आज के परीक्षणों पर भी खरे सिद्ध हो रहे हैं।

हृदयरोग में उपयुक्त खाद्य पदार्थ

आँवला—जीवनीय शक्ति बढ़ाकर जवानी बरकरार रखने वाला, विटामिन 'सी' का भण्डार आँवला हृदयरोग की उपयोगी औषधि है। इंग्लैण्ड के डॉ. स्पिटिल के अनुसार आँवला कोलेस्टेरोल को कम करता है और धमनी की कठोरता, इस्कीमिया और दिल की धड़कन को ठीक करता है। **लहसुन**– लहसुन हृदय रोग की उत्कृष्ट दवा है। डॉ. प्लूटर विस्की के अनुसार लहसुन ब्लडप्रैशर व रूमेटिक हृदयरोग की अच्छी दवा है। इसके सेवन में सिकुड़ी हुई रक्तवाहिनियाँ फैलने लगती हैं। पेट की गैस से उत्पन्न हृदय का भारीपन इसके सेवन से दूर होता है। और कोलेस्टेरोल की मात्रा भी नियन्त्रित हो जाती है। **गुड़**—चीनी के स्थान पर हृदय

रोगियों को गुड़ या देशी शक्कर से कुटा हुआ बूरा प्रयोग करना चाहिए। **सेब**—हृदय को स्वस्थ्य और ताकतवर बनाने के लिए सेब एक अमृतोपम फल है। इसे अच्छी तरह चबा-चबाकर छिलके सहित खाना चाहिए। सेब में विद्यमान पेक्टिन रक्त की प्रतिक्रिया क्षारीय रखने, शरीर में उत्पन्न विषैले द्रव्यों का निकालने एवं कोलेस्टेरोल को कम करने में अत्यन्त प्रभावी सिद्ध हुआ है इसके विशेष गुणों के कारण ही इसके बारे में कहा गया है—one apple a day keeps doctor away. **गाजर**—गाजर को गरीबों का सेब कहा जाता है। इसके रस का निरन्तर सेवन करते रहने से हृदयरोग में बहुल लाभ होता है। शरीर शुद्ध और ताकतवर बन जाता है और हृदय के दौरे की सम्भावना नहीं रहती। **दही**—आयुर्वेद के अनुसार गाय का दही हृदय के लिए उपयोगी होता है। रात को दही का सेवन नहीं करना चाहिए। अमेरिका के प्रो० जार्ज ने भी दही को हृदय रोगों में उपयोगी पाया है। रूस में हुए सर्वेक्षण भी इसी निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। जाजिया प्रदेश के निवासी दही का पर्याप्त सेवन करते हैं। वहाँ पर हृदय रोगियों की संख्या बहुत कम है। **शहद**—शहद ऊर्जा और उष्मा प्राप्त करने का शीघ्र सुपाच्य और श्रेष्ठ साधन है। आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ शार्ङ्गधर निघण्टु के अनुसार "देहस्य सूक्ष्म छिद्रेषु विशेद् यद् सूक्ष्म मुच्यते" अर्थात् शहद शरीर के सूक्ष्म से सूक्ष्म छिद्र में भी प्रवेश कर सकता है। विख्यात रूसी चिकित्सक डॉ० योइरिश ने अपनी "क्यूरेटिव प्रोपर्टीज ऑफ हनी" में लिखा है,—"सदियों से दिल की बीमारियों में शहद का उपयोग उपचार के रूप में किया जा रहा है। प्रोफेसर एम. बी. जोलोम्ब व ए. राफ के अनुसार, "दिल की बीमारी वाले रोगी यदि दो-तीन माह तक प्रतिदिन २० ग्राम से शुरू कर ५० ग्राम तक शहद सेवन करें तो उनकी रक्त रचना सामान्य हो जाती है, रुधिर नलिका व पेशी संकुचन बढ़ जाते हैं और हृतपेशी के पोषण के लिए अनुकूलतम अवस्थाएँ प्राप्त हो जाती हैं, अतः दिल की बीमारी वालों को आहार में शहद को शामिल करना चाहिए। जर्मन सर्जन डॉ० बामगार्टेन ने "The History of Modern Medical Research Relating to Honey" में लिखा है कि शहद में एसीटिल कोलिन के लघु अंश होते हैं जिससे रक्त प्रवाह की तीव्रता बढ़ती है।

हृदय रोगियों के लिए अमृत योग—१. १० ग्राम शुद्ध शहद और ५० ग्राम अनार का रस मिलाकर दिन में दो-तीन बार सेवन करें। २. ५० ग्राम सेब का रस व १ लौंग का पिसा चूर्ण दिन में २-३ बार सेवन करने से हृदय बलशाली बनता है। ३. सूखे आँवलों का चूर्ण व पिसी हुई मिश्री ५+५ ग्राम प्रतिदिन सुबह खाली पेट जल के साथ लेने से हृदय की कमजोरी, धड़कन, रक्त-वाहिनियों की कठोरता, उच्च रक्तचाप, रक्त के थक्के बनना आदि रोग आराम होते हैं और हृदय सबल बनता है। अप्रेल, मई, जून व सितम्बर, अक्टूबर में इसका प्रयोग विशेष लाभप्रद रहता है। ४. अमेरिकन दी जर्नल के अंक में डॉ० जारविस

ने लिखा है कि वन्दगोभी, पालक तथा पत्तेवाली सब्जियाँ, चुकन्दर तथा जमीन के अन्दर पैदा होने वाली सब्जियों में वैसे तत्व होते हैं जो रक्त को पतला करते हैं, अतः हरी पत्तीदार सब्जियाँ, जमीन के अन्दर उगने वाले कन्द, जड़ और सब्जी उपयोगी रहते हैं। इन उपायों से रक्त पतला होने लगता है और रक्तवाहिनियों में लोच पैदा हो जाती है।

आयुर्वेद की संजीवनी—हृदयरोग और हार्ट अटैक के वाद आयुर्वेद का यह अमृतोपम योग वहुत लाभ करता है। अर्जुन की ताजा छाल को छाया में सुखालें और चूर्ण बनाकर रख लें। २५० ग्राम दूध (उपलब्ध हो तो गाय का) में २५० ग्राम जल मिलाकर इसमें ५ ग्राम अर्जुन-छाल चूर्ण मिला दें। मन्द-मन्द अग्नि पर पकायें। पानी जल जाने पर उतार कर छान लें और सुहाता गर्म रहने पर सेवन करें। प्रातःकाल व सायंकाल खाली पेट सेवन करें। डेढ़ घण्टे तक कुछ न खायें। यह हृदय रोग की अपूर्व चमत्कारिक दवा है। इसमें कैलसियम कार्वोनेट और टैनिक एसिड होती है। इससे हृदय की सूजन कम होती है और रक्त प्रवाह सुधर जाता है। एक माह तक इस दवा का सेवन करें। इसके वाद प्रतिमाह ४-५ दिन सेवन करें, हृदय के दौरे की सम्भावना नहीं रहेगी।

विहार चिकित्सा—अमेरिका के राष्ट्रपति केनेडी ने एक बार कहा था कि, "हमारी रुचि खेल खेलने के वजाय खेल देखने में है। पैदल चलने के बजाय हम सवारी में वैठना पसन्द करते हैं। हमारे तौर तरीके हमें उतने से शारीरिक परिश्रम से वंचित कर देते हैं, जो स्वस्थ और स्पन्दनशील जीवन के लिए आवश्यक है।"

व्यायाम, खेल और शारीरिक क्रियाओं की भूमिका व्यक्ति को स्वस्थ बनाये रखने में तो महत्त्वपूर्ण है ही, हृदय रोगों में इनका चमत्कारिक प्रभाव सामने आया है। हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ० के. सी. कोटिया ने अपने सुदीर्घ अनुभव और शोधपरक लेखों के अध्ययन के वाद लिखा है—औषधियाँ दो प्रकार से कार्य करती हैं—हृदय की रक्त धमनियों का आकार वढ़ाकर रक्तप्रवाह की वृद्धि करती हैं और दूसरे हृदयपिण्ड के रासायनिक व भौतिक कार्यों में सुधार के माध्यम से हृदयपिण्ड की कार्यक्षमता में वढ़ोतरी करती हैं। शारीरिक कार्यशीलता, परिश्रम एवं व्यायाम से भी हृदय को उपर्युक्त दोनों लाभ मिलते हैं। जहाँ औषधियाँ ये कार्य कृत्रिम तरीके से करती हैं, वहाँ शारीरिक प्रक्रियाएँ यह कार्य प्राकृतिक तरीके से करती हैं।

महर्षि सुश्रुताचार्य—चरकाचार्य से लेकर आधुनिक युग के प्रसिद्ध हृदयरोग विशेषज्ञों ने एक मत से खेल-व्यायाम-शारीरिक क्रियाओं को हृदय रोग से बचने का न केवल सर्वश्रेष्ठ साधन माना है, अपितु रोग होने पर भी इनकी भूमिका को महत्वपूर्ण माना है। हाँ, रोग की स्थिति के अनुसार व्यायाम का प्रकार-समय आदि को निश्चित करना उचित रहता है। भ्रमणादि क्रियाएँ अत्यन्त लाभप्रद व निरापद रहती हैं।

नित्यप्रति प्रभातकालीन सुहावनी धूप का सेवन भी हृदय रोग में उपयोगी सिद्ध हुआ है। वर्षा, अधिक सर्दी एवं आर्द्र मौसम में गर्म जल में १०–१५ मिनट तक पैरों को डाले रहना रक्त को पतला रखने एवं हार्ट अटैक से बचाने में उपयोगी सिद्ध हुआ है। विख्यात चिकित्सक डॉ० जारविस ने 'अमेरिकन द जर्नल' में इस उपाय का उल्लेख किया है। सूर्य विज्ञानी एवं प्राकृतिक शास्त्री तो पहले से ही इन उपायों से हृदय रोगियों को लाभ पहुंचाते रहे हैं। आहार-विहार, रहन-सहन निद्रा-जागरण आदि में नियमितता रखने से ही लाभ होता है।

तनाव हृदय रोग का सार्वकालिक, सर्वमान्य एवं सर्वप्रभावी कारण रहा है। लन्दन चैस्ट हास्पीटल हृदयशल्य चिकित्सा सलाहकार और कार्डियक थोरोसिस इंस्टीट्यूट के प्रमुख–सुप्रसिद्ध हृदय रोग विशेषज्ञ डॉ० जॉन ई. सी. राईट तनाव को हृदय रोग का मुख्य कारण मानते हैं। अतः आवश्यकता है कि व्यक्ति तनावमुक्त रहे, जीवन में रस ले, भौतिकता की अन्धी दौड़ में शामिल न हो। नित्यप्रति पूजा, उपासना, सत्संग, स्वाध्याय का नियम बनाले। शवासन और शिथिलीकरण की क्रिया शान्ति और आनन्द का अमोघ उपचार सिद्ध हो रहा है। हृदय रोगियों को अधिक थकान से भी बचना चाहिए। □

शतायु होने की वैदिक प्रार्थना

ओउम तच्चक्षुर्वेवहितं पुरच्छातुक्रमुच्चरत्।
पश्यमशरदः शतं जीवेमशरदः शतं श्रुणुयाम
शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम
शरदः शतंभूयश्च शरदः शतात् ॥ ऋग्वेद

हे परम पिता परमेश्वर! आपकी कृपा से हम सौ वर्ष तक स्वस्थ रहें। हम सौ वर्ष तक देख सकें, सौ वर्ष तक सुनते रह सकें और सौ वर्ष तक बोलते रह सकें। हे जगतपिता! आपकी असीम अनुकम्पा से हम सौ वर्ष तक आत्मनिर्भर रहते हुए तथा कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहें। □

४.

ब्लड प्रैशर—कैसी चिन्ता, कैसा डर

कुछ वर्ष पहले की बात है। अमेरिका में ब्लड प्रैशर का ग्राफ अंकित करने वाले एक यंत्र के आविष्कार से यह घटना जुड़ी हुई है। एक दिन यंत्र की खोज में लगे हुए वैज्ञानिकों ने वह यंत्र एक स्वस्थ व्यक्ति के (जिसका रक्तचाप सामान्य था) अंग विशेष में फिट कर दिया। यंत्र की कार्य प्रणाली इस प्रकार की थी कि जितने समय भी वह यंत्र व्यक्ति के अंग विशेष में फिट रहता, उस अवधि के रक्तचाप के उतार-चढ़ाव का एक रेखाचित्र उसमें अंकित होता रहता। यत्र उस समय फिट किया गया, जब वह अपने कार्यालय में जाने के लिए गाड़ी में बैठ चुका था और गाड़ी स्टार्ट कर रहा था। लगभग एक घन्टे बाद जब वह अपने कार्यालय में पहुंच गया, यंत्र को निकाल लिया गया। अब वे युवा वैज्ञानिक रेखाचित्र को लेकर प्रख्यात रक्तचाप विशेषज्ञों से मिले और उस युवक की चिकित्सा करने की प्रार्थना की। सभी विशेषज्ञों का एक ही उत्तर था —"यह व्यक्ति अब तक इस दुनियां से जा चुका होगा।"

हुआ यों कि जैसे ही व्यक्ति ने कार स्टार्ट की और गाड़ी ने गति पकड़ी, सामने से एक दूसरी गाड़ी तेजी से उसके सामने आई, बायीं ओर दो बच्चे खेल रहे थे। इस आकस्मिक दुर्घटना की आशंका ने उसे बुरी तरह झकझोर दिया और उसका रक्तचाप असामान्य रूप से ऊँचा हो गया। इस प्रकार कार्यालय तक पहुंचते-पहुंचते उसके रक्त के दबाव में भयकर रूप से उतार-चढ़ाव आते रहे। खाली सड़क पर, भीड़ भरी सड़क पर मुड़ते समय, हॉर्न बजाते समय, ब्रेक देते समय, दुर्घटना की आशंका के समय निरन्तर इसी प्रकार रक्त दबाव बढ़ता-घटता रहा। यह उतार-चढ़ाव इतना असामान्य रहा कि चिकित्सा-विशेषज्ञों को कहना पड़ा —"यह व्यक्ति अब तक इस दुनियां से जा चुका होगा।"

उच्च रक्तचाप है क्या—रक्तचाप का अर्थ है खून का दबाव। रक्तचाप की तीन स्थितियां होती हैं—सामान्य, उच्च और निम्न। १८-२० वर्ष की आयु से लेकर ३५-४० वर्ष तक १२०-८० की स्थिति सामान्य मानी जाती है। ५-६ वर्ष के बच्चे का रक्तचाप ६०/६० होता है। इस सामान्य स्थिति में देश, काल, परिस्थिति, प्रकृति आदि के अनुसार थोड़ा-बहुत अन्तर हो सकता है और इसे रोग नहीं माना जा सकता। हृदय रक्त को दबाव या झटके के साथ रक्त वाहिनी नलिकाओं में धकेलता है। यह दबाव उस समय अधिक होता है जब दिल का बायां हिस्सा

सिकुड़ता है। इसे प्रकुंचक या सिस्टॉल कहते हैं। इसके बाद जब दिल एक क्षण के लिए आराम करता है, उसे प्रसारण या डायस्टॉल कहते हैं।

उच्च रक्तचाप के कारण—रक्तचाप के मन सम्बन्धी कारण सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। क्रोध, आवेश अशान्ति, तनाव, चिन्ता, कुण्ठा आदि मानसिक विकारों का हृदय पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है और इनसे रक्तचाप सम्बन्धी बीमारियां भी पैदा होती है। आयुर्वेद ने प्रज्ञापराध को रोगों का कारण माना है। दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्या के अनुसार जीवन-यापन न करने से अन्य रोगों के साथ-साथ उच्च रक्तचाप की बीमारी विशेष रूप से हो जाती है। आज के मनुष्य भौतिक सुख-सुविधाओं की ओर बेतहाशा दौड़ रहा है। इस दौड़ का कोई अन्त नहीं होता—उसकी इच्छाएँ और तृष्णायें बढ़ती जाती हैं। परिणाम स्वरूप अनिद्रा, हृदय रोग और उच्च रक्तचाप जैसे रोग मनुष्य को जकड़ लेते हैं। इसके साथ ही आज के मानव में सोचने, कहने और करने सम्बन्धी भीषण विसंगति है। वह सोचता कुछ है, कहता कुछ है और करता कुछ है। उसका यह खण्डित व्यक्तित्व रक्तचाप सम्बन्धी रोगों का कारण बनता है। सदाचरण से रहित जीवन, आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति अश्रद्धा, प्राकृतिक जीवन-यापन क प्रति अश्रद्धा—ये सब कारण उसके मानसिक आरोग्य में बाधक सिद्ध होते हैं।

आहार-विहार सम्बन्धी कारण— सम्यक् आहार-विहार का न अपनाना भी उच्च रक्तचाप का प्रमुख कारण है। चाय, कॉफी, मांस, अण्डा, मदिरा, धूम्रपान, मटर, तिल, अधिक लवण-अम्ल-कटु-गर्म व मिर्च-मसालों से युक्त भोजन, बैंगन, कटहल, आलू, मैदा, गरिष्ठ व तले हुए पदार्थों का अधिक खाना, रात्रि जागरण, अतिभोजन, अतिव्यायाम अति अग्नि-धूप सेवन, अनियमित जीवन-यापन—भोजन, निद्रा, विश्राम, कार्य, स्नानादि समय पर न करना, व्यायाम आदि न करना, अधिक विश्राम और विलास प्रिय होना—ये सब कारण भी उच्च रक्तचाप के लिए उत्तरदायी हैं। निरन्तर कब्ज रहना और मोटापा—ये रोग उच्च रक्तचाप की नींव रखते हैं। मोटापा वास्तव में उच्च रक्तचाप की स्थिति के लिए व्यक्ति को तैयार करता है और कब्ज एक विनम्र सेवक की तरह मोटापे के कार्य को सरल बना देता है। कई बार आनुवंशिकता के कारण भी उच्च रक्तचाप हो सकता है। मल-मूत्र, अपान वायु आदि के वेग को रोकने से भी यह बीमारी हो सकती है।

सामान्य लक्षण—उच्च रक्तचाप की स्थिति बिना चेतावनी दिये धीरे-धीरे उत्पन्न होती है। थकावट अनुभव होना, कभी-कभी चक्कर आने की शिकायत, नींद न आना, सिरदर्द रहना, मामूली परिश्रम से थक जाना या दुर्बल शारीरिक स्थिति को उच्च रक्तचाप के सामान्य लक्षण माना जा सकता है। यदि इस प्रकार के लक्षण प्रतीत हों तो चिकित्सक के पास जाकर रक्त-चाप की जांच अवश्य करानी चाहिए। 40 वर्ष के बाद तो प्रतिवर्ष वह जांच आवश्यक है।

उच्च रक्तचाप के घातक परिणाम—उच्च रक्त-चाप स्वयं में तो घातक रोग है ही, साथ ही अनेक भयंकर और कभी ठीक न होने वाले रोगों का जनक भी है। सुप्रसिद्ध चिकित्सक एच. सायोक, एम. डी. ने लिखा है—"उच्च रक्त-चाप मस्तिष्क की धमनियों को साईकिल के पुराने टायर के समान फाड़ देता हैं। × × × उच्च रक्त-चाप और धमनियों की कड़ी होने की स्थिति, दोनों मिलकर रक्तनलियों का इतना ह्रास कर देते हैं कि इनमें से ठीक तरह से रक्त प्रवाहित नहीं हो पाता और उनकी दीवार कमजोर हो जाने के कारण फट जाती हैं। उच्च रक्त चाप कई बार पक्षाघात और अनिद्रा जैसी बीमारियों को जन्म देकर रोगी को तड़पते रहने के लिये छोड़ देता है। यह हृदय को भी अधिक फैलने और अधिक कार्य करने को विवश करता है। हृदय उच्च रक्त दवाव को सन्तुलित करने का पूरा प्रयास करता है और अन्त में थक हार कर वैठ जाता है। यही हृदय की गति रुकने की स्थिति है।

यह रोग गुर्दों को चैन नहीं लेने देता। दूषित पदार्थ ऊतकों में संचित होते रहते हैं। गुर्दे भी शरीर की रक्षा के लिए जी जान लगा देते हैं और अन्त में उनकी भी वही दशा होती है जो हृदय की होती है। तात्पर्य हृदय रोग, गुर्दों के रोग, पक्षाघात, अनिद्रा आदि अनेक भयंकर रोग उच्च रक्त चाप से पैदा हो सकते हैं।

कैसी चिन्ता–कैसा डर—किन्तु ब्लड प्रेशर से डरने की कोई बात नहीं है। एक विख्यात चिकित्सक ने इसकी तुलना शेर से की है। जो शेर से डर जाता है उसे अपनी जान से हाथ धोना पड़ता है और जिसने शेर के जवड़े खोलकर उसके दांत गिनने का साहस किया है, यह रोग उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाया। दुर्भाग्य की वात है कि ब्लड प्रेशर आज वी.आई.पी डिसीज वन गई है और लोग बड़े शान से कहते हैं कि हमें ब्लड प्रेशर है।

किसी भी बीमारी को जड़-मूल से नष्ट करने का सबसे प्रभावशाली उपाय उसके कारणों को नष्ट कर देना है। बड़े से बड़े चिकित्सक, शरीर शास्त्री और मनोवैज्ञानिक मानसिक शान्ति, प्रसन्नता और सन्तोष को ब्लड प्रेशर की अमोघ औषधि मानते हैं। अतः आवश्यकता है कि तनाव, चिन्ता और क्रोध को गन्दे नाले में वहाकर फेंक देना चाहिए और फूलों की हँसी और पक्षियों के संगीत को अपने हृदय में भर लेना चाहिए। विश्वास कीजिए ये दो दिव्य अस्त्र भयंकर से भयंकर रक्तचाप रूपी विषधर के दांत उखाड़ देने की सामर्थ्य रखते हैं।

आहार-विहार सम्बन्धी उपायों में ऊपर लिखे हुए हानिकारक पदार्थों का सेवन एक दम बन्द या यथासम्भव कम कर देना चाहिए। नमक का सेवन भी विशेष इच्छा होने पर वहुत कम मात्रा में करना चाहिए। आंवला लहसुन, मैथी, मौसमी, संतरा, पपीता, हरीपत्तीदार, सब्जियां, छाछ, विना छने आटे की रोटी, फल, किशमिश, मुनक्का आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिए। प्रातः सायं भ्रमण

या हलके खेल व व्यायाम, नियमित जीवन, उचित विश्राम आदि उपाय करने से बीमारी धीरे-धीरे ठीक हो जाती है। प्रातःकालीन ओस से भीगी घास पर नंगे पैर घूमना इस रोग का अच्छा उपाय है।

अच्छा यही है कि इस रोग को पैदा ही नहीं होने दिया जाये और इसके लिए आवश्यक है—मांस, मदिरा और धूम्रपान का सर्वथा त्याग, नियमित व्यायाम और दिन भर में एक-दो बार ठहाका लगाकर खुले दिल से हँसना। फिर भी यदि रोग का आक्रमण हो ही जाये तो आहार-विहार सम्बन्धी पथ्य का सेवन और कुपथ्य का त्याग करते हुए निम्नलिखित घरेलू उपचार करने चाहिए।

घरेलू चिकित्सा—१. १० ग्राम नींबू का रस १ कप पानी में डालकर प्रातःकाल निरन्तर सेवन करें। रोग के प्रकोप के समय यह दवा दिन में तीन बार सेवन करें। २. लहसुन की ३–४ कली छीलकर छोटे-छोटे टुकड़े कर लें फिर पानी के साथ निगल जायें। सर्दियों में और वर्षा में जब बादल छाये हों, वातावरण नम हो, तब इस प्रयोग को करना चाहिये। सितम्बर से अक्टूबर और मई–जून में लगातार एक सप्ताह से अधिक इसका सेवन न करें। ३. कब्ज न होने दें। इसके लिए बिना छने आटे की रोटी, पपीता, फलों का रस, हरी सब्जियां अंजीर, मुनक्का किशमिश का विशेष रूप से प्रयोग करें। किशमिश को अच्छी तरह धोकर ५० दाने रात को भिगो दें और प्रातःकाल अच्छी तरह चबाकर खायें इसी प्रकार दिन में भिगो दें और ५–६ बजे या सोते समय खायें। दिन में एक बार गाजर, पालक आदि सब्जियों का या फलों का रस पियें। ४. प्याज का रस और शुद्ध शहद समभाग लेकर दस ग्राम प्रातःकाल सेवन करें। प्याज का रस खून में कोलोस्ट्रोल की मात्रा कम करता है, नर्वस सिस्टम के लिए लाभप्रद, हृदय की क्रिया सुधारने वाला और सुनिद्रादायक है। शहद का शरीर पर शामक प्रभाव होता है यह हृदय के लिए उपयोगी और रक्तवाहिनियों की उत्तेजना कम करने वाला है। उच्च रक्तचाप में यह योग अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है। ५ तरबूज के बीज की गिरी और सफेद खसखस पीस कर रख लें। ३ से ५ ग्राम दवा सुबह शाम खाली पेट सेवन करने से इस रोग में विशेष लाभ होता है। इन प्रयोग में से क्रमांक १ व ४ का प्रयोग सुबह क्रमांक २ का भोजन के बाद और क्रमांक ५ का इच्छानुसार करें। ६. पंचमुखी रुद्राक्ष पहनने से भी इस रोग में लाभ होता है। रुद्राक्ष का स्पर्श छाती के मध्य भाग में, नीचे की ओर जहां थोड़ा सा गड्ढा-सा होता है, होता रहना चाहिये। ७ नियमित रूप से प्रातःकालीन भ्रमण करें, उचित विश्राम करें एवं दिन में दो बार शवासन या शिथिलीकरण की क्रिया अवश्य करें। ८. सप्ताह में केवल एक दिन फलाहार करें। और इसी दिन रात्रि को सोने के एक घण्टे पूर्व मोटी तौलिया या कपड़े को ठण्डे पानी से भिगोकर निचोड़कर पेडू पर (टुण्डी से नीचे वाला भाग, रोग की प्रकुपित दशा में इसका चमत्कारी प्रभाव होता है) रखें, गर्म होने

दें या पुनः गीला करके रखें। १५ मिनट तक यह प्रयोग करें और आधा घण्टे बाद १ चम्मच त्रिफला चूर्ण व १ चम्मच मिश्री मिलाकर गर्म पानी के साथ सेवन करें। घरेलू चिकित्सा का प्रारम्भ भी इसी प्रकार फलाहार आदि से करें। ६ रात्रि को किसी भी प्रकार की धर्म–अध्यात्म से सम्बन्धित पुस्तक अवश्य पढ़ें एवं सदैव प्रसन्न रहें–चिन्ता मुक्त रहें।

आयुर्वेद ने सहस्रों वर्ष पहले ही चिन्ता को चिता समान माना है और आज भारत के जन-जन में यह कथन एक कहावत के रूप में विख्यात है। आज के पाश्चात्य चिकित्सक क्या कहते हैं इस बारे में—

"Anxiety is probably the most important psychic factor in hypertension. The treatment of the hypertensive patients should, therefore begin with an attempt to sure him of his fears."

—George Halparin–"High Blood Pressure and what to do About it"

प्रसिद्ध स्नायु रोग विशेषज्ञ डा० फ्रेजर हेरिस ने भी मानसिक उत्तेजना और तनाव को रक्त दवाव का प्रमुख कारण माना है।

हमारा अनेक बार का अनुभव है–इन उपायों को अपनाने से ब्लड प्रेशर रोग सदा के लिए ठीक होता देखा गया है।

आयुर्वेद चिकित्सा—उच्च रक्तचाप के लिए संसार की सभी चिकित्सा-पद्धतियों में सर्पगन्धा का प्रयोग सबसे प्रभावशाली माना गया है। यह जड़ी आयुर्वेद के विशाल औषध भण्डार का ही एक रत्न है। इस बूटी का १–१ ग्राम चूर्ण दिन में दो-तीन बार जल के साथ सेवन करने से तुरन्त लाभ हो जाता है। आयुर्वेद वाचस्पति आयुर्वेद चक्रवर्ती कविराज गिरधारी लाल मिश्र के अनुसार श्वेतपर्पटी १० ग्राम व सर्पगन्धा चूर्ण १० ग्राम को अच्छी तरह मिलाकर रखलें और २० पुड़िया बनालें या २० कैपसूलों में भरलें। सुबह-शाम १–१ पुड़िया ठण्डे जल के साथ सेवन करें।

कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन ने (देखिए "स्वास्थ्य", सितम्बर १९८८) अनेक रोगियों पर निम्नलिखित योग का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। हमने भी इसे अत्यन्त प्रभावशाली पाया है और लगभग स्थायी लाभ होते देखा गया है। वात-पित्त-कफादि दोष और लक्षणों के अनुसार दवाओं में थोड़ा बहुत परिवर्तन भी किया जा सकता है।

१. प्रातः-सायं—आरोग्यवर्द्धनी+पुनर्नवामण्डूर+चन्द्रप्रभावटी १-१ गोली दूध या पानी के साथ। मुलहटी, अर्जुन की छाल, जटामांसी, सतावरी, पुनर्नवा व शंखपुष्पी समभाग कर पिसा हुआ चूर्ण १ ग्राम व कामदुधा २ रत्ती दिन में एक बार जल के साथ व रात्रि को त्रिफला चूर्ण व भुसी ईसबगोल ५-५ ग्राम दूध या

पानी के साथ। रोग की प्रकोप अवस्था में सर्पगन्धादि वटी या श्वेत पर्पटी व सर्पगन्धा चूर्ण का सेवन करें और फिर 1–$1^1/_2$ माह तक ऊपर लिखी दवाइयां सेवन करें। अधिक विगड़े और जटिल विकार भी इससे ठीक होते देखे गये हैं।

उच्च रक्तचाप के लिए प्राकृतिक व यौगिक चिकित्सा भी अत्यन्त कारगर सिद्ध हुई है। प्रातःकाल स्नानादि से निवृत होकर शान्त वातावरण में सुखासन में बैठकर ईश्वर या नासिका के अग्रभोग में ध्यान केन्द्रित करना और यह अनुभव करना कि मेरा ब्लड प्रैशर सामान्य हो रहा है। पांच मिनट से प्रारम्भ कर १०–१५ मिनट तक इस स्थिति में रहना चाहिए। मन की शक्ति के चमत्कार को शब्दों में नहीं बांधा जा सकना। (पूरे विवरण के लिए पढ़िये अनन्त प्रभा का अक्टूबर–सितम्बर १९८८ अंक) इसके वाद ताड़ासन व शवासन कीजिये। शवासन का अभ्यास पूरे दिन में ३–४ बार भी किया जा सकता है। इसका अर्थ है शव जैसी स्थिति अर्थात् शारीरिक व मानसिक चेष्टाओं को समाप्त करते हुए शरीर को एक दम ढीला छोड़ देना। यथासुविधा घर, कार्यालय या अन्यत्र कहीं भी वैठकर या लेटकर यहां तक कि खड़े होकर भी इस आसन के लाभों को प्राप्त किया जा सकता है। रक्तचाप को सामान्य वनाने वाला यह आसन प्राचीन ऋषियों का दिया हुआ आशीर्वाद ही है।

प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत प्रातःकाल कटिस्नान और रात्रि को पेडू पर मिट्टी का प्रयोग या सिजवाथ इस रोग के अमोघ उपचार हैं।

होम्योपैथिक इलाज–बेलेडोना—सिरदर्द, चक्कर, चेहरा गर्म व लाल, माथा व आंखें लाल, त्वचा गर्म, कनपटी में टनक इन लक्षणों के साथ ब्लड प्रैशर हो तो बेलेडोना का सेवन करना चाहिये।

वैराइटा कार्ब–२०० भी इस रोग की अच्छी दवा है। चक्कर, हृदय प्रदेश में दर्द, ग्रन्थियों का वढ़ना और कड़ापन रोग असमय में ही बढ़ जाये तो इस दवा को याद करना चाहिए। स्मरण शक्ति में कमी, परिश्रम करने की शक्ति न रहना, पैर कांपना, कलेजा धड़कना, खड़ा न रह सकना–यदि इन लक्षणों से युक्त ब्लड प्रैशर हो तो कोनायम–मेकु–२०० लाभ करता है। यदि सरदर्द सूर्योदय से प्रारम्भ हो, दोपहर तक वढ़े और सूर्यास्त के ससय कम हो जाये, इन लक्षणों में सैंगुइनेरिया बहुत प्रभावशाली दवा सिद्ध होती है।

रोग होने के वाद उसका उपचार किया जाये, इससे अच्छा है कि रोग को आक्रमण करने का अवसर ही न दिया जाये। इसके लिये आवश्यक है कि उन कारणों से बचा जाये, जिनसे रोग पैदा हो। मोटापा, कब्ज और तनाव ये तीन चेतावनी है ब्लड प्रैशर की। हमारा यह विश्वास और अनुभव है कि ध्यान, योग और घरेलू चिकित्सा में लिखे कुछ उपाय इस रोग को सदा के लिए दूर करने के सर्वश्रेष्ठ उपाय हैं। □

५.

मोटापे से मुक्ति पाइये

एक दिन मैं कुछ रोगियों को देख रहा था। सामने ही एक विशालकाय महिला बैठी थी। मैंने उसका परीक्षण किया, नाड़ी भी देखी और उसकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा! उस महिला ने कहा "वैद्यजी, मैं बहुत मोटी हो गई हूं, जीवन का सारा आनन्द समाप्त होता जा रहा है, ज़रा सा परिश्रम करने से ही हांफने लगती हूं, सब लोग मेरी हँसी उड़ाते हैं। मैं कितने दिन में ठीक हो जाऊंगी?"

मैंने उस महिला से कहा 'देखो! यदि तुमने नियमित रूप से दवा और मेरे द्वारा दी गई हिदायतों का पालन किया तो डेढ से दो माह में अच्छी हो सकती हो।

मेरा इतना कहना था कि वह अपनी सीट पर से उठकर खड़ी हो गई और बोली, मैं तो सोचती थी कि आप इतने बड़े वैद्य हैं, मैं जल्दी ही स्वस्थ हो जाऊंगी। लोग २१वीं सदी की ओर बढ़ रहे हैं। एक-से-एक बढ़कर दवायें बन रही हैं। मैंने कल ही एक विज्ञापन देखा था जिसमें मात्र दस दिन में मोटापे को दूर भगाने वाली दवा लिखी थी।

मैंने उससे कहा कि मुझे ऐसी दवाइयों की जानकारी नहीं है। तुम पहले उसका प्रयोग करके देख लो, जल्दी फायदा हो जाये तो अच्छा ही है।

लगभग 15 दिन बाद जब वही महिला मेरे सामने आई तो लज्जा के कारण वह मुझ से आंखे नहीं मिला पा रही थी।

महिला थी पक्की दृढ़ संकल्पी। मैंने जो-जो हिदायतें दीं उन सबका उसने दृढ़तापूर्वक पालन किया। दो महीने बाद उसका स्वास्थ्य और सौन्दर्य देखते ही बनता था।

मोटापे के कारण

आहार शास्त्रियों का कहना है कि मनुष्य को अपनी आवश्यकता की पूर्ति ५०% भोजन से और शेष की जल और वायु से करनी चाहिए। ऐसा करने से उसके सभी पाचन-यंत्र भली प्रकार कार्य करते रहेंगे और शरीर में न गन्दगी जमा होगी और न शरीर पर चर्बी चढ़ेगी।

अधिक चर्बी युक्त पदार्थ खाना, भूख से अधिक खाना, व्यायाम न करना, खाने-पीने का शौक, बार-बार खाने की आदत, शारीरिक श्रम न करना आदि अनेक कारणों से मोटापा आ घेरता है। और जब तक मनुष्य कुछ सोचे समझे चिड़ियां खेत को चुग चुकी होती हैं।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की गड़बड़ी मोटापे का प्रमुख कारण है। पिट्यूइटरी, थायराइड, एड्रिनल ग्रन्थियों की गड़बड़ी से खाने की इच्छा बढ़ जाती है फलस्वरूप चर्बी इकट्ठी होने लगती है। इसके साथ ही अधिक भोजन के आत्मीकरण के लिए शरीर में इंसुलिन का स्राव अधिक होता है, जो बाद में एक स्थाई स्वभाव बन जाता है और अधिक खाने की व्यक्ति की इच्छा बन जाती है। कई बार मोटापा रोग वंशानुगत भी होता है।

मोटापा वास्तव में आधुनिक सभ्यता की देन है—मिठाइयाँ, केक, पेस्ट्री, बिस्कुट, डिब्बाबन्द पदार्थ, मैदा, चीनी, पकौड़े, समोसे, चाट, चाय, काफी आदि का सेवन न केवल फैशन का अपितु जीवन-स्तर का प्रतीक बनता जा रहा है। ये सभी वस्तुएं मोटापे को बढ़ाने वाली हैं। जो व्यक्ति इनका प्रयोग नहीं करते उनको पिछड़ा हुआ माना जाता है और यदि उनका व्यक्तित्व ढुल-मुल हुआ तो वे भी सभ्यता की इस अन्धी दौड़ में शामिल हो जाते हैं।

सुप्रसिद्ध चिकित्सा शास्त्री डा. बर्नाड ने मोटापे को शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान—दोनों की पृष्ठभूमि में देखा है। उनका कहना है कि अधिक भूख लगने से पहले ही व्यक्ति को भोजन कर लेना चाहिए। यदि अधिक भूख लगने पर वह भोजन करेगा, तो निश्चित रूप से वह अधिक खायेगा और फलस्वरूप चर्बी की पर्तें उस पर चढ़ने लगेंगी। निष्कर्ष यही है कि मोटापे की समस्या से अधिक खाने की समस्या जुड़ी हुई है।

भयंकर रोगों को जन्म

मोटापे से भयंकर, प्राणलेवा और नींद हराम करने वाले रोगों को जन्म मिलता है। हृदय रोग, रक्तचाप अनिद्रा, अन्दरूनी रक्तस्राव, लकवा, सिरदर्द, मधुमेह आदि अनेक रोग बहुत कुछ मोटापे के कारण ही पैदा होते हैं।

हृदय का एक महत्वपूर्ण कार्य शरीर के हर अंग को नियमित रूप से आक्सीजन युक्त खून पहुंचाना है। मोटापे के कारण शरीर का आकार भी बढ़ जाता है और हृदय को अधिक जगह अधिक रक्त पहुंचाने के कारण अधिक परिश्रम करना पड़ता है। परिणाम स्वरूप यह कमजोर होता जाता है और यहीं से दिल धड़कने की बीमारी शुरू हो जाती है। यदि रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा भी अधिक हो तो समस्या और भी बढ़ जाती है। इससे धमनियों की दीवारें मोटी हो जाती हैं और इस कारण उनकी नलियां भी सिकुड़ जाती है और वे आमतौर पर जितना रक्त ले जा सकती हैं, उतना नहीं ले जा पातीं। इससे हृदय को अधिक धड़कना पड़ता है और यह स्थिति भी रक्तचाप का कारण बनती है।

मोटापा सुन्दरता का राहु-केतु

जिस प्रकार ग्रहण के समय चन्द्रमा की प्रभा क्षीण हो जाती है और वह पूरी तरह निस्तेज हो जाता है, उसी प्रकार सुन्दर-से-सुन्दर नारियों का [illegible] आकर्षण

और सौन्दर्य भी मोटापे के कारण समाप्त हो जाता है। अतः आवश्यकता है कि समय रहते हुए समस्या की गंभीरता को समझा जाये।

प्राय. व्यक्ति परिणाम के बारे में अधीर होते हैं। वे तुरन्त लाभ होते देखना चाहते हैं। स्त्रियां तो इस मामले में विशेष रूप से संवेदनशील होती हैं। वे चाहती हैं कि मैं एक दम स्लिम और स्मार्ट लगने लगूं।

मुझे मोटापे का इलाज कराने आई एक महिला का यह प्रसंग याद आता है जब उसने उलाहना देते हुए कहा था कि वैद्यजी, मुझे दवा खाते 8–10 दिन हो गये हैं, अभी तक कुछ भी लाभ नहीं हुआ है। मैं कुछ उत्तर देता, उससे पूर्व ही मेरे एक सहयोगी वैद्य बोल उठे "मैडम! जितने वर्षों में आप इतनी मोटी हुई हैं कम से कम उतने महीने तो आपको धैर्य रखना चाहिये—उसको शायद बात जंच गई थी, उसने दो माह तक इलाज कराया और फलस्वरूप सुन्दर, स्वस्थ और आकर्षक देहयष्टि प्राप्त की।

फिर उपाय क्या है ?

आयुर्वेद वास्तव में एक चिकित्सा पद्धति नहीं एक जीवन-पद्धति है। उचित आहार-विहार के साथ यदि चिकित्सा की जाये तो न केवल मोटापे से ही मुक्ति मिलेगी, अपितु जीवन-भर यह रोग पास नहीं फटकेगा।

आहार सम्बन्धी उपाय—१. भोजन सम्बन्धी नियमों का पूरी तरह से पालन करें। भोजन नियमित समय पर (डा. बर्नाड का कथन याद रखें कि भोजन पर टूट न पड़ें।) प्रसन्न मन से खूब चबा-चबा कर खायें। याद रखें कि आंतों के दांत नहीं होते।

२. रात को भोजन सोने से २-३ घंटे पहले खाना उत्तम रहता है।

३. भूख से ७५% ही भोजन करें। दूसरे शब्द में आवश्यकता से कुछ कम ही खायें।

4. भोजन के समय १–२ घूंट पानी ही पियें। भोजन के समय अधिक पानी पीना मोटापे को बढ़ाता है। घंटे-आध-घंटे बाद पानी पिया जा सकता है। यह उपाय बहुत प्रभावशाली है।

५. भोजन में हरी सब्जियां, फलों, सूप, सलाद आदि का प्रचुर मात्रा में सेवन कीजिए।

६. दूध, दही, छाछ, बिना छने आटे की रोटी, मौसमी फल आदि का सेवन लाभप्रद रहता है।

७ घी-तेल का सेवन कम और डिब्बे बन्द खाद्य पदार्थ, केक, पेस्ट्री, चीनी, उड़द की दाल, आलू, चाट, पकौडी, मिठाईयां, चावल आदि का सेवन तीज-त्यौहार जब-कभी और कम मात्रा में करना चाहिये। जो लोग रोज दीवाली मनाते हैं, उनका यह रोग कभी अच्छा नहीं हो सकता।

८. गरिष्ठ भोजन के वाद १ दिन का उपवास या फलाहार करने से इसका कुप्रभाव नष्ट हो जाता है।

९. दो भोजनों के वीच ४-५ घंटे का अन्तर अवश्य रखें और पूरे दिन में ३–४ वार से अधिक न खायें।

१०. कार्वोहाइड्रेट और चिकनाई युक्त पदार्थों का सेवन यथा सम्भव कम किन्तु प्रोटीन का सेवन पर्याप्त मात्रा में करना चाहिये।

विहार सम्बन्धी उपाय—१. ऋतु, देश, काल, परिस्थिति, आयु के अनुसार नियमित रूप से व्यायाम अवश्य करें।

२. प्रारम्भ में हलके व्यायाम कम समय के लिए करें। धीरे-धीरे भारी व्यायाम कुछ अधिक समय के लिए करें।

३ शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम दोनों का सन्तुलन वना रहना चाहिए। निठल्ले वैठे रहना, अधिक आराम तलव होना—ये सव वातें मोटापे को वढ़ाने वाली है।

४. स्मरण रखिए मोटापे के रोग ने आप पर यकायक आक्रमण नहीं किया। यह इस वात का प्रमाण है कि आपने निरन्तर इस रोग के प्रति लापरवाही और गलत रहन-सहन और आहार-विहार का पालन किया है। अतः धीरे-धीरे धैर्य एवं दृढ़तापूर्वक रोग को दूर करने का प्रयत्न कीजिए।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

यद्यपि उपर्युक्त उपायों से मोटापे से पूरी तरह छुटकारा मिल जाता है, किन्तु इन उपायों के साथ यदि निम्नांकित चिकित्सा की जाये तो शीघ्र लाभ होने लगता है।

कोष्ठ शुद्धि—मोटापे से छुटकारा पाने के लिए सवसे पहले अपने उदर का शोधन कर लेना चाहिए। इसके लिए एरण्ड तेल ढाई तोला गर्म दूध में डालकर प्रातःकाल या पंचसकार चूर्ण १ तोला रात को गर्म पानी के साथ लेना चाहिये। दवा लेने से एक दिन पहले हलका भोजन कम मात्रा में लें और दवा के वाद भी खिचड़ी-दही का सेवन करें। दूसरे दिन फिर यही क्रम दोहरायें।

औषधि सेवन—उदर शोधन के वाद उपर्युक्त आहार-विहार के नियमों का कठोरता के साथ पालन करना चाहिए। एक वात और आवश्यक है—पेट साफ होने के वाद खूव भूख लगती है। अतः व्यक्ति प्रायः आवश्यकता से अधिक भोजन कर लेते हैं। फलस्वरूप पेट साफ करने का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। अतः यह आवश्यक है कि पेट साफ होने के २–३ दिन वाद तक दिन में केवल २–३ वार भोजन करें और भोजन में खिचड़ी, दलिया, दही, फल, सलाद, सूप, पपीता, अंजीर, मुनक्का आदि को प्रमुखता दें।

इस रोग में निम्नलिखित उपाय उपयोगी सिद्ध हुए हैं—

१. प्रातः उठते ही कुल्ला करने के बाद एक गिलास गर्म पानी में एक नीबू का रस डालकर पियें फिर शौचादि के बाद १ तोला शुद्ध शहद एक पाव ठण्डे पानी में मिलाकर सेवन करें।

२. आरोग्यवर्द्धनी १ गोली त्रिफला ५ ग्राम के फाण्ट(त्रिफला-जल) के साथ सेवन करने से चमत्कारी लाभ मिलता है।

३. मेदोहर गुग्गुलु इस रोग की प्रभावी दवा है। २ से ४ गोली प्रातः सायं गर्म जल के साथ सेवन करना चाहिये। यदि यही दवा गोमूत्र के साथ सेवन की जाये तो सब जगह से निराश और अनेक प्रकार के इलाज कराने वाले रोगी भी ठीक हो जायेंगे।

४. महायोगराज गुग्गुलु १ गोली और पुनर्वामण्डूर १ गोली १–२ माह तक जल के साथ सेवन करने से बहुत लाभ मिलता है। हमारे अपने अनुभव से इस दवा को हमने पुनर्वादि काढ़े के साथ सुबह-शाम सेवन कराया है और हमें ९०% सफलता मिली है। काढ़ा कड़ुआ लगे तो बिना काढ़े से भी लाभ होता है।

५. इसके अतिरिक्त त्रिमूर्ति रस, शिलासिन्दूर बटी, त्र्यूषणाद्य लौह आदि दवायें भी लाभप्रद पाई गई हैं।

होम्योपैथिक चिकित्सा

प्रसिद्ध होम्योपैथ डॉक्टर क्लार्क के अनुसार इन दवाओं का सेवन ८–८ घण्टे से कराने पर मोटापे से प्रायः मुक्ति मिल जाती है। ये तीन दवायें हैं–१. एमोन-ब्रोम ३X २. कैल्केरिया कार्ब-३ ३. कैल्के आर्स २ ग्रेन प्रति मात्रा।

ग्रैफाइटिस ३X, दवा एक माह में अपना लाभ दिखा देती है। विशेषकर औरतों के मोटापे में यह बहुत लाभ करती है।

डॉ. भट्टाचार्य की पारिवारिक चिकित्सा के अनुसार फाइटोलिका–३० का सेवन बहुत गुणकारी सिद्ध हुआ है।

यौगिक चिकित्सा

योगासन चिकित्सा मोटापे के लिए रामबाण सिद्ध हुई है। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की खराबी मोटापे का प्रमुख कारण है। पिट्यूइटरी, थायराइड व एड्रीनल ग्रन्थियों के विकार इस रोग को जन्म देते हैं। और योगासन व्यक्ति की अन्तःस्रावी ग्रन्थियों की गड़बड़ी को ठीक करने के बेजोड़ साधन हैं। प्राचीन ऋषियों से लेकर आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधानों तक सबने योगासनों की महत्ता स्वीकार की है।

सर्पासन, पवन मुक्तासन और धनुरासन मोटापे के अव्यर्थ उपाय हैं। इन आसनों के अभ्यास में जल्दी नहीं करनी चाहिये। अभ्यास के पहले चरण में आसन सिद्ध नहीं हुआ करते। कभी-कभी तो १–२ माह भी लग जाते हैं। अतः धैर्यपूर्वक धीरे-धीरे आसन की एक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर बढ़ना चाहिये। □

९.

मुंह के छाले–रोग नहीं है।

मेरे एक मित्र हैं। वे शिक्षा विभाग में एक अधिकारी हैं। वे प्रायः मुंह के छालों से परेशान रहते थे। एक दिन मैंने उनको समझाया कि अपने खान-पान, रहन-सहन पर ध्यान दो अन्यथा रोग पुराना पड़ जायेगा। गर्म, तले हुए और अधिक मिर्च-मसालों के पदार्थ आपको नहीं खाने चाहिये और दूध, दही, छाछ, फल, सब्जियां इस प्रकार का सादा भोजन कुछ दिनों प्रयोग करना चाहिये। अपने मुख पर किंचित मुस्कान बिखराते हुए वे बोले—"मुंह के छालों का भी कोई रोग होता है, जिसके लिये इतना पथ्य-परहेज करना पड़े।" बात आई-गई हो गई।

कुछ दिन बाद एक दिन उनके लड़के ने मुझे सूचना दी कि अंकल, पापाजी का बुरा हाल है; न खा-पी सकते हैं और न ही अच्छी तरह से बातचीत कर सकते हैं। पीड़ा से परेशान हैं। मुंह में छाले हो गये हैं। आपको शीघ्र बुलाया है।

मैं झटपट तैयार होकर उनके घर पहुँच गया। देखा, मित्र महोदय दर्द से कराह रहे हैं। मैंने कुछ गम्भीर होकर कहा कि इनकी हालत ठीक नहीं है तुरन्त गर्म-गर्म समोसे, तेज मिर्च-मसाले की चाट की प्लेट और एक कड़क चाय लेकर आओ।

परिवार से अच्छे सम्बन्ध थे। वातावरण की बोझिलता कुछ कम हुई। मित्र महोदय भी मुस्कराते दिखाई दिये।

आयुर्वेदिक चिकित्सा—मैंने अच्छी तरह से उनका परीक्षण किया और निम्नलिखित दवाइयाँ सुझाई—

1. प्रातःकाल—त्रिफला हिम पीना। रात्रि को मिट्टी के बर्तन में २५० ग्राम पानी में दस ग्राम त्रिफला चूर्ण भिगोकर रख देना। प्रातःकाल छान लेना। इस जल को ही त्रिफला हिम कहते हैं।

2. दोपहर–रात्रि—कामदुधा–१ गोली व सूतशेखर रस सादा १ गोली मिला-पीस कर १५ ग्राम गुलकन्द के साथ सेवन करना। आवश्यकतानुसार ऊपर से दूध पीने की भी व्यववस्था की गई।

३. मुंह में खदिरादि तेल लगाने और कुछ देर उसे मुंह में रहने देने के बाद थूक देने का सुझाव दिया।

४. खाने के बाद पोटेशियम परमैगनेट से कुल्ला करने के लिए कहा गया।

५. सामान्य भोजन करने में वे असमर्थ थे, अतः दूध दलिया, फल आदि भोजन की व्यवस्था दी।

इस सबके बाद मैं चला आया। तीसरे दिन वे महाशय स्वयं घर आ गये और धन्यवाद देकर कहने लगे कि अब मैं लगभग ठीक हूं। मुझे ऐसी दवा बताओ जिससे यह रोग दुबारा न हो।

मैंने उन्हें त्रिफला हिम और गुलकन्द वाली दवा, रात्रि को सोते समय खदिरादि तेल लगाने, मुंह हमेशा साफ रखने का सुझाव दिया। इसके साथ ही खान-पान, रहन-सहन सम्बन्धी हिदायतें दीं।

उस बात को लगभग दस वर्ष हो गये फिर कभी मुंह के छालों का रोग उनको नहीं हुआ।

कुछ अन्य आयुर्वेद के योग—

१. शतपत्र्यादि चूर्ण—गुलाब के फूल सूखे २० तोले, नागरमौथा, जीरा, सफेद चन्दन का बुरादा, छोटी-इलाइची के दाने, शीतल मिर्च, गिलोय सत्व, खस, वंशलोचन, खसखस, भुसीईसबगोल, गोखरू, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, लौंग, सारिवा, कमलगट्ठा, नीलोफर, कमल और तबाखीर प्रत्येक १–१ तोला और मिश्री ४० तोला। सब को कूटपीस कर छान लें। ३–३ ग्राम दिन में दो बार भोजन के बाद जल के साथ सेवन करें। यदि पेट में भारीपन–गैस आदि भी रहती है तो इसमें १–१ ग्राम सर्जिका क्षार (सोडा-बाइ-कार्ब) भी मिला लें। पेट के रोगों के कारण होने वाले छालों की यह अच्छी दवा है।

सुबह-रात्रि को २–२ रत्ती प्रवाल पिष्टी, आंवले के मुरब्बे, गुलकन्द या आंवले के चूर्ण के साथ लें। मुख में अरिमेदादि तेल लगायें।

२. सफेद कत्था ५० ग्राम, छोटी इलायची छिलके सहित और शीतल चीनी १५–१५ ग्राम, कपूर ५ ग्राम, सेलखड़ी १०० ग्राम—सबको पीसकर छानकर रखलें। दिन में ८–१० बार मुंह में डालें और थूक इकट्ठा होने पर थूक दें।

यदि पूय पड़ गया हो और अधिक दिन हो गये हों तो इसमें ५ ग्राम नीले-थोथे का फूला (आग पर फुलाकर) भी डालें। इसका अंश पेट में न जाये यह ध्यान रहे।

३. बबूल की छाल को पानी में औटाकर उसके कुल्ले करने या बबूल या चमेली के पत्ते चबाने से भी छाले ठीक होते हैं।

४. वंशलोचन का चूर्ण १/२ ग्राम, मक्खन १० ग्राम में मिलाकर प्रातः-सायं खाने और लालदवा को पानी में डालकर कुल्ले करने से यह रोग ठीक होता है।

५. सेलखड़ी और गेरू २५०–२५० ग्राम और नीले थोथे का फूला ३ ग्राम मिलाकर चूर्ण करें और दिन में ४–५ बार लगायें।

६. फिटकरी गर्म तवे पर फुलाकर और मुलहटी १०–१० ग्राम, सुहागे का फूला या बोरिक एसिड २० ग्राम ग्लैसरीन ४० ग्राम में मिलाकर रखलें। बहुत से रोगियों ने लाभ उठाया है।

स्मरण रखें—अम्लीय प्रभाव रखने वाले पदार्थ—मिर्च-मसाले, खटाई (नीबू को छोड़कर), मैदा, चीनी, मिठाई, तले हुए पदार्थ आदि का सेवन वहुत कम मात्रा में और **तीज-त्यौहार** ही करना चाहिए और नीबू, आंवला, फल, सलाद, सब्जी, दूध, दलिया आदि पदार्थों को अपने भोजन में अधिक स्थान देना चाहिए।

यदि पथ्य-परहेज पूर्वक ये उपाय काम में लाये जायें तो पुराने रोगी भी ठीक होंगे। मधुमेह, पारे का अधिक सेवन आदि कारणों से भी छाले होते हैं। ऐसी स्थिति में मूल कारण पर ध्यान देना चाहिए।

प्राकृतिक प्रयोग—१. स्नान करते समय प्रारम्भ से अन्त तक मुँह में ठण्डा जल रखें। स्नान के वाद इसे थूक दें। आप देखेंगे कि उस पानी के साथ कितनी गन्दगी–थूक–गन्दी लार निकलती है। यह लार मुँह और कण्ठ के रोगों का एक प्रमुख कारण है।

२. प्रातःकाल उठते ही शौच जाने से पूर्व मुँह साफ करके एक गिलास जल पीयें। वाद में इसे दो गिलास तक वढ़ाया जा सकता है। शौच के वाद इस जल को कण्ठ में उँगली डालकर निकाल दें। इससे छालों का रोग नहीं होगा।

३. तीन दिन का प्रयोग—पहले दिन केवल जल व फलों के रस पर रहें, दूसरे दिन फल-सब्जी व तीसरे दिन दूध का सेवन करें। इसके वाद भोजन पर आयें। यह क्रम मास में एक वार दोहरायें। पुराना रोग भी ठीक हो जायेगा।

४. कब्ज न होने दें। अम्लीय प्रभाव वाले पदार्थों का सेवन कम से कम करें और क्षारीय प्रभाव वाले पदार्थों का अधिक सेवन करें।

५. पेडू पर मिट्टी की पट्टी और एनीमा लेने से रोग जल्दी ठीक हो जाता है।

छालों का रोग त्रिदोष का सन्तुलन विगड़ने—पित्त की अधिकता, आमाशय की विदग्धता, कब्ज और विटामिन वी–सी की कमी (भोजन में फल व हरी सब्जियों, सलाद आदि का प्रयोग न करने) से होता है। कभी-कभी छालों के पुराने रोग के मूल में रक्तदोष, मधुमेह, पारे का अधिक सेवन, गरम व तीखे पदार्थों का अधिक मात्रा में अधिक दिनों तक सेवन–ये कारण भी होते हैं। **क्रोध की प्रवृत्ति और अपने क्रोध को पी जाना** भी कई वार रोग का कारण होता है।

होम्योपैथिक चिकित्सा—वोरेक्स ३× इस रोग की अच्छी दवा है। लगभग १/२ ग्राम या ८–१० गोली दिन में तीन चार बार सेवन करना चाहिए। लगभग एक सप्ताह वाद लाभ होने पर यही दवा ६× शक्ति में लेनी चाहिए। लगभग २०–२५ दिन में स्थाई लाभ हो जाता है। सामान्यतः छालों की यह अच्छी [illegible] है। निम्न दवाओं का भी लक्षणों के अनुसार सेवन करना चाहिए।

मुंह के अन्दर घाव हो, लार वहती हो, खून गिरता हो तो **मर्क्यूरिस–६** का सेवन दिन में ३–४ बार करना चाहिए।

घाव में जलन और कमजोरी वहुत अधिक हो तो **आर्सेनिक–३** का सेवन लाभ देता है।

यदि पारे के अधिक प्रयोग से रोग हुआ हो तो **नाइट्रिक एसिड–६** इस रोग की वढ़िया दवा है।

वायोकेमिक चिकित्सा—

यदि थूक अधिक आये और छालों का रंग श्वेत हो तो कालीम्यूर ६× और नेट्रमम्यूर ६× पर्याय क्रम से देनी चाहिए। किन्तु इसके विपरीत यदि छालों का रंग लाल हो तो फेरमफास ६× से लाभ होता है। वड़ों को ४–४ गोली व छोटों को २–२ गोली दिन में ४–५ वार सेवन करनी चाहिए।

छोटे वच्चों के लिए जीभ तथा छालों का रंग सफेद होने पर कालीम्यूर ३ और रंग लाल होने व प्यास अधिक होने पर फेरमफास ६× और नेट्रमम्यूर ६× पर्याय क्रम से २-२ ग्रेन की मात्रा दिन में ४–५ वार देनी चाहिए।

यौगिक चिकित्सा—

छालों के मूल कारणों को ध्यान में रखकर तीन प्रकार के आसनों का अभ्यास छालों को समूल नष्ट कर देता है।

१. शरीर में अम्लीय प्रभाव कम करने वाले आसन।

२. कब्ज को दूर करने वाले आसन।

३. यकृत आदि पाचक अंगों को शक्ति देने वाले आसन।

नाड़ी शोधन प्राणायाम, धनुरासन, मयूरासन, भुजंगासन, उत्तानपादासन एवं सूर्य नमस्कार—इनमें से नाड़ी शोधन प्राणायाम छालों के रोगियों के लिए आवश्यक है। शेष में से यथासुविधा २–३ आसनों का चयन करलें अथवा सूर्य नमस्कार करें।

आयुर्वेद चिकित्सा के साथ योगासन चिकित्सा करने से शीघ्र लाभ होता है।

□

बवासीर—आपरेशन की क्या जरूरत

बवासीर एक कष्टकारक बीमारी है। इसमें मलद्वार की शिरायें फूलती हैं और बढ़ जाती हैं। इनको बोलचाल की भाषा में मस्से कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है—**वादी बवासीर** इसमें जलन और खुजली होती है और **खूनी बवासीर** इसमें जलन के साथ खून गिरता है।

बवासीर के कारण—

आहार सम्बन्धी—तेज मिर्च-मसाला, गर्म चीजों का अधिक सेवन, गरिष्ट, तले हुये और अधिक चिकनाई युक्त पदार्थों के सेवन से बवासीर होने में सहायता मिलती है। मांस, मछली आदि भी इस रोग को जन्म देते हैं।

विहार सम्बन्धी—रात्रि जागरण, परिश्रम न करना, अनियमित दिनचर्या आदि कारणों से बवासीर होती है।

व्यसन सम्बन्धी—बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि नशीले पदार्थों का सेवन और घुड़सवारी आदि से भी इस रोग को जन्म मिलता है।

यकृत दोष व कब्ज—बवासीर के प्रमुख कारण हैं—बार-बार जुलाब लेनें व शौच जाते समय अधिक जोर लगाने से भी यह रोग हो जाता है। मल-मूत्र के वेग को रोकना उचित नहीं।

चिकित्सा—ऊपर लिखे गये अनुचित आहार-विहार-व्यसनादि का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए। कारण रहने पर रोग की सम्प्राप्ति निश्चित रूप से होती है अतः कारणों को त्याग देना ही श्रेयस्कर होता है।

उचित आहार-विहार के सेवन से रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं। इस रोग में दूध, छाछ, पपीता, सेव, सन्तरा, मुनक्का, कच्चा नारियल, हरी सब्जियाँ, बादाम, पिस्ता, पुराने शालि चावल, जमीकन्द की सब्जी, प्रातः भ्रमण, व्यायाम, आसन आदि से इस रोग में बहुत शीघ्र लाभ होता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा—आयुर्वेद के अनुसार बवासीर के अनेक प्रकार होते हैं—वातार्श, पित्तज, कफज, रक्तार्श आदि। उचित निदान होने पर औषधि तुरन्त प्रभाव दिखाती है। यहां आयुर्वेद की अतिश्रेष्ठ, शीघ्र गुणकारी और निर्भय औषधियों के प्रयोग दिये जा रहे हैं।

१. प्रातःकाल व सायंकाल **अर्श कुठार रस** की २–२ गोली, १०–१० ग्राम गुलकन्द में मिलाकर सेवन करें। इसके आध घण्टे बाद कुछ खायें। **भोजन के बाद** अभयारिष्ट व दन्त्यरिष्ट १०+१० ग्राम=२० ग्राम इतना ही जल मिलाकर

सेवन करें। **रात्रि में** ५ ग्राम भुसी ईसबगोल व ३ गोली लिव ५२ दूध या पानी के साथ सेवन करें।

वाह्य प्रयोग—मस्सों पर अर्शोनिट मलहम या काशीसादि तेल लगायें।

उचित आहार-विहार के साथ इस प्रयोग से लाभ हो जाता है।

अन्य प्रयोग—

२. **बावली बूटी**—यह बूटी ज्वार-बाजरा के खेतों में मिलती है। १–१/२ से २ फुट के पौधे, मिर्च के आकार की छोटी फली, काले जीरे की तरह के बीज और लगभग १ इंच लम्बे, पतले पत्ते होते हैं। इसे चूहे बड़े प्रेम से खाते हैं। इसे संस्कृत में शंखी (शंखफली) कहते हैं। इस दवा का पंचांग (पांचों अंग) फल सहित पूरा पौधा ५ से १० ग्राम तक ११ कालीमिर्चों के साथ पीसकर दिन में दो बार ४० दिन तक सेवन करना चाहिए। यह अत्यन्त चमत्कारी बूटी है। ४० दिन में रक्तार्श समूल नष्ट हो जाती है। —रस तन्त्रसार-सिद्ध प्रयोग संग्रह ॥

३. **अर्शोहर भस्म**—ताजा जमीकन्द २॥ सेर, लाल फिटकरी ४० तोला लें। जमीकन्द के बीच में खड्डा कर फिटकरी का चूर्ण भर दें और जमीकन्द के उसी टुकड़े से ढक दें। उसके बाद कपड़मिट्टी करदें। सूखने पर गजपुट की अग्नि दें। ठण्डा होने पर पीस लें। ६ रत्ती (पौन ग्राम) से १२ रत्ती तक दिन में दो बार मक्खन या मलाई के साथ सेवन करें। रक्तार्श की प्रभावी दवा है।

—वैद्य गोपाल जी कुँवर जी ठाकुर

४. **अर्शोहर गुटिका**—मोती की सीप को तीन पुट मूली के रस में देकर भस्म बनायें। यह भस्म, एलवा और रसौत समभाग लेकर मूली के रस में रोज एक 7 दिन तक घोटें फिर २–२ रत्ती की गोली बनायें। एक से दो गोली सौंफ या जल से सुबह-शाम सेवन करें। चमत्कारी दवा है।

—स्व० राजवैद्य श्री रामचन्द्र शर्मा

५. नीम की निबौरी का तेल ५-५ बूंद कैपसूल में भरकर सुबह-शाम निगलवायें लाभ होगा।

६. नीम की निबौरी, बकाय़न की मींगी, बीज रहित मुनक्का और छोटी हरड़ ५०-५० ग्राम तथा हींग ३० ग्राम लें। मुनक्का के अलावा सब चीजों को घी में भून लें। फिर मुनक्का पीसकर शेष चीजों के चूर्ण को उसमें मिलाकर १-१ ग्राम की गोलियां बनालें। १-२ गोली दो बार जल या बकरी के दूध के साथ सेवन करें।

—'धन्वन्तरि'

७. १० ग्राम काले तिल कूटकर १० ग्राम मक्खन में मिलाकर सेवन करें। दिन में तीन बार सेवन करने से खूनी बवासीर मिट जाती है।

८. नागकेशर व मिश्री ढाई-ढाई ग्राम व मक्खन १० ग्राम मिलाकर ऐसी तीन खुराक दिन में तीन बार सेवन करने से खूनी अर्श नष्ट हो जाती है।

स्व-मूत्र से गुदा को धोते रहने से अर्श में लाभ होता है।

ायोकेमिक चिकित्सा—

कल्केरिया फ्लोर २००X की एक मात्रा (४ ग्रेन दवा) एक दिन छोड़कर ातःकाल लेनी चाहिए। इस रोग की—विशेषकर रक्तार्श की अच्छी दवा है।

गाढ़ा व काले रंग का रक्त निकलने पर **कालीम्यूर ३०X** प्रतिदिन २-३ ार सेवन करनी चाहिए। मस्सों में घाव हो गया हो और उनमें खुजली भी चलती ो तो **काली फास ३०X** का सेवन करना चाहिए।

ोम्योपैथिक चिकित्सा—

बवासीर का अतिश्रेष्ठ निर्मय और तुरन्त गुणकारी योग दिया जा रहा है। ट के रोगों से त्रस्त रोगी और बवासीर (दोनों तरह की) के रोगी स्वस्थ हो सकते । खान-पान आदि का ध्यान रखना आवश्यक है। इसके साथ ही **यह योग त्यन्त सस्ता है।**

प्रात.काल **सल्फर—३०,** ३ बजे के लगभग **पल्सेटिल्ला—३०** और रात ो सूर्यास्त के बाद **नक्स वोमिका—३०** की एक-एक खुराक (८-१० छोटी गोली ति खुराक) रोगी को एकदम भला-चगा कर देती है। निरन्तर २-३ माह तक वन करें।

इस दवा के सेवन करने के साथ हैमामेलिस, इस्क्यूलस, रेटानह्यिा और ालिन्सोनिया—इन सभी दवाओं का मदर टिंचर मिलाकर एक शीशी में रखें और लद्वार के अन्दर व बाहर इस दवा का प्रयोग करें।

२. अर्श के मस्सों से बहुत अधिक खून बहे तो हैमामेलिस २X का सेवन ०० ग्राम पानी में ३० बूंद दवा चार-चार घण्टे पर लेनी चाहिए। ऊपर लिखी वा मस्सों पर लगानी चाहिए।

३. अर्श के ऐसे पुराने रोगी जो बहुत दुबले हों और बहुत कमजोरी अनुभव रते हों, जीवनीशक्ति कम हो गई हो उनके लिए **आर्स—३०** का सेवन करना पयोगी रहता है।

४. **कालिन्सोनिया** और **रैटान्हिया** भी अर्श रोग की अच्छी दवायें हैं। ब शौच के बाद मलद्वार में बहुत देर तक जलन और दर्द हो, ऐसा लगे मानो लद्वार आग से जल गया हो तो रैटान्हिया से निश्चित लाभ होगा। मलद्वार में ब भार मालूम होता है, खुजली होती हैं, रोग बहुत पुराना और रक्तस्रावी हो था मनोवेगों के रोग की वृद्धि हो तो कालिन्सोनिया 2X को याद करना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा १. प्रथम तीन दिन तक केवल जल, नीबू का पानी, लों का रस और छाछ का यथा सुविधा सेवन करें। जल अधिक पीना चाहिए। छ ताजी हो और इसे दोपहर बाद नहीं लें।

२. पेडू पर टुण्डी के नीचे मिट्टी की पट्टी प्रातः व रात्रि १५ मिनट प्रारम्भ कर एक घण्टे तक रखे। यह पट्टी आहार से पूर्व या ठोस भोजन से ती घण्टे बाद और तरल भोजन से दो घण्टे बाद रखी जानी चाहिए। मिट्टी शुद्ध हो सामान्यतः २ फीट से नीचे की मिट्टी शुद्ध होती है। किसी मकान की नींव खु समय या स्वयं खुरपी आदि से मिट्टी निकालकर इकट्ठी करलें। इसमें से कंकड़ पत्थर के टुकड़े निकाल दें। फिर एक कपड़े की आवश्यकतानुसार १ फुट लम्बी अ ४-५ इंच चौड़ी पट्टी पर गीली मिट्टी रखकर पेडू पर रखें। इस प्रयोग से रो को आश्चर्यजनक लाभ मिलता है। यह प्रयोग पहले दिन से ही प्रारम्भ कर दे चाहिए और लगभग २-३ माह तक जारी रखना चाहिए।

३. तीन दिन बाद तीन दिन तक उबली सब्जी और गूदेदार फलों को शामिल कर लें। मौसम विशेष में पाई जाने वाली सब्जियां और फल ही अ रहते हैं।

४. इसके बाद दलिया, खिचड़ी, सलाद आदि का प्रयोग २-३ दिन करें। आप देखेंगे कि रोग का प्रकोप धीरे-धीरे कम हो रहा है।

५. प्राकृतिक चिकित्सा का अर्थ है कि शरीर के अन्दर से रोग के का गन्दगी, मल और विजातीय पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल देना और फि स्वस्थ रहने और दुबारा रोग के आक्रमण से बचने के लिए प्राकृतिक जीवन-उचि आहार-विहार अपनाना।

६. इसके बाद अनुचित आहार-विहार त्याग दें और दूध, छाछ, फल, सब्ज सलाद, सूखे मेवे, जिमीकन्द, भ्रमण-व्यायाम आदि सम्यक आहार-विहार अपनायें।

७. प्रति १५ दिन में एक दिन उपवास (केवल जल, नीबू और फलों रस) करें, प्राकृतिक जीवन अपनायें, जीवन से रस लें और मुस्कराते हृदय से का स्वागत करें, अर्श रोग कभी सिर नहीं उठायेगा।

यौगिक चिकित्सा—

सम्यक आहार-विहार का पालन करते हुए तीन प्रकार की यौगिक क्रिय अर्श रोग से सदा सर्वदा के लिए छुटकारा दिला देती हैं—

१. कब्ज दूर करने व पाचन शक्ति बढ़ाने के लिए भुजंगासन, वज्रास योगमुद्रा, उड्डियान बन्ध—इनमें से दो आसनों का चयन करें।

२. यकृत आदि अंगों के बलवर्द्धन के लिए मयूरासन, उत्तानपादास धनुरासन, ताड़ासन आदि आसनों में से यथा सुविधा दो आसनों का निय अभ्यास करें।

३. अर्श रोग पर अत्यन्त प्रभावकारी आसन पादांगुष्ठासन एवं उत्तान सन नियमित रूप से अवश्य करें।

योगासनों के लिए आवश्यक सावधानियों का पालन करते हुए इन यो क्रियाओं से अर्श-रोगी एकदम स्वस्थ हो जाता है।

सर्दी-जुकाम से छुटकारा पायें

जुकाम के बारे में एक कहावत प्रसिद्ध है—जुकाम एक ऐसा रोग है जो
ा लेने पर सात दिन में और दवा न लेने पर एक सप्ताह में ठीक हो जाता है ।
त्पर्य यह कि यह दवाओं से नहीं अपने आप ठीक होने वाला रोग है । सामान्यत:
तु परिवर्तन के समय इस रोग का आक्रमण होता है । सर्दी हो या गर्मी या फिर
रसात हर ऋतु पर जुकाम की समान रूप से कृपा रहती है, हाँ सर्दी इसे कुछ
शेष प्रिय है । इसलिये अक्टूबर से फरवरी तक इसका कुछ अधिक प्रकोप रहता
। दूसरी बात जो जुकाम के बारे में कही जाती है वह है—राजा-रंक, रूपवान-
रूप, बुद्धिजीवी-मजदूर, सबको यह समान रूप से शिकार बनाता है । यह इतना
धारण-सा रोग है कि लोग इसे रोग तक मानने को तैयार नहीं, दूसरी ओर यह
ानी पेचीदगी लिये हुए है कि बड़े से बड़े चिकित्सा-शास्त्री भी इसकी गुत्थी नहीं
लझा पाये और गुत्थी सुलझाने की समस्या "मर्ज बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की"
ी तरह उलझती गई और आज भी स्थिति वही है जो महान् आयुर्वेदज्ञों—चरक-
श्रुत के समय में थी ।

काम के कारण :

१. **मिथ्याहार**—मीठे, शीतल, देर से पचने वाले और कफ पैदा करने
ले पदार्थों का अधिक सेवन, भूख न लगने पर भी और मन्दाग्नि होने पर अधिक
ोजन करना, भोजनान्त में अधिक मात्रा में जल पीना, गुड़, चीनी या मिठाई
ाने के बाद शीतल जल पीना, गर्म पेय के बाद ठण्डा पेय या ठण्डे पेय के बाद गर्म
य का पान—इन सब कारणों से एक ओर तो शरीर की प्रतिरोध शक्ति कम
ती है, दूसरी ओर शरीर में कफ की वृद्धि और वायु की विकृति हो जाती है ।
सीलिए आयुर्वेद में इसे प्रतिश्याय अर्थात् प्रतिश्याय—वायु का कफ की ओर
मन कहा है ।

२. **अनुचित विहार**—दिनचर्या का पालन न करना, रात्रि-जागरण, शिशिर
तु में दिन में सोना, पसीने या श्रम करने के तुरन्त बाद पानी पीना या स्नान
रना, ऊँची आवाज में अधिक समय तक बोलना, मल, मूत्र, छींक, अश्रु, वायु
ादि के वेगों को रोकना, ऋतु-सन्धि काल में आहार-विहार की उचित योजना न
रने, प्रदूषित वातावरण में रहने आदि कारणों से प्रतिश्याय हो जाता है ।

३. जुकाम से पीड़ित रोगियों के सम्पर्क में आने पर प्राय: यह रोग हो
ाता है । रोगी के आँसू, छींक, रूमाल, थूक आदि के माध्यम से रोग के विषाणु

(वायरस) स्वस्थ व्यक्तियों को भी रोगग्रस्त बना देते हैं। आधुनिक शोधों से निष्कर्ष निकला है कि लगभग दो सौ प्रकार के वायरस जुकाम के लिये उत्तरदा हैं। इस प्रकार के भी अनेक परीक्षण किये जा चुके हैं कि अनुचित आहार-विह अपनाने वाले व्यक्तियों पर ही इनका अधिक प्रभाव पड़ता है क्योंकि एक ओर अनुचित आहार-विहार से रोग प्रतिरोधक शक्ति में कमी होती है, दूसरी ओ शरीर में विजातीय द्रव्य (गन्दगी) अधिक जमा हो जाती है, जहाँ पर इन वायर को फलने-फूलने का पूरा अवसर मिलता है, फलस्वरूप व्यक्ति जुकाम से पीड़ित जाता है।

जुकाम के लक्षण :

शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो, जो जुकाम की पकड़ में न आया हो। इस लक्षणों से प्रायः सभी सुपरिचित हैं। आचार्य सुश्रुत ने छींकों का अधिक आन सिर में भारीपन, अंगों में दर्द, जकड़न, नासिका से पतला स्राव, गले में शुष्कत या खराश, मुँह का स्वाद मीठा या कसैला आदि जुकाम के लक्षण गिनाये हैं जुकाम बिगड़ जाता है और दमा, टी. बी., पीनस, पुराना जुकाम आदि कठिन रो भी हो सकते हैं, अतः सावधान ! जुकाम की गलत दवा करने से अच्छा है जुका की दवा ही न की जाये।

क्या करें यदि दवा न करें तो :

१. जुकाम रोग नहीं है, अपितु शरीर में जमा हुई गन्दगी को निकालने क प्रकृति का एक प्रयास है। अतः मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है कि वह प्रकृति के इ कार्य में उसकी मदद करे। शुद्ध वायु का अधिक से अधिक सेवन, भोजन के बा थोड़ा-सा गर्म पानी घूँट-घूँट कर पीना, शेष समय शुद्ध ताजा या गर्म किया ठण्ड पानी पर्याप्त मात्रा में पीना, प्रभातकालीन धूप में सिर व आँखों पर तौलिया रख कर छाती और उसके ऊपर के अंगों का धूप-स्नान—जुकाम-ग्रस्त होते ही इ उपायों को अपनाने से प्रकृति शरीर के सारे दोषों-गन्दगी को बाहर निकाल फेंकत है और 6–7 दिन बाद व्यक्ति में धीरे-धीरे स्फूर्ति आने लगती है।

२. जुकाम की अधिक आवभगत करने से (तले हुये पदार्थों या अधिक भोजन से) जुकाम जाने का नाम नहीं लेता और छद्म वेश में शरीर के अन्द अपनी जड़ें जमा लेता है। अतः जुकाम में 'रूखा-सूखा और भूखा' के सिद्धान्त अपनाना चाहिये। अच्छा हो यदि १–२ दिन का उपवास कर लिया जाये। उपवा काल में गर्म पानी में एक बार शहद दूसरी बार नींबू का रस डालकर बारी- से सेवन करना चाहिये। पूरे दिन में पाँच-छः बार तक इसका सेवन करें। यदि सम्भव न हो तो हल्का, कम मात्रा में और चिकनाई रहित भोजन करें।

३. मिर्च-मसाले, दही-छाछ, शर्बत, बर्फ, घी, चावल, दालें कफ बढ़ाने पदार्थ (चीनी, आलू, अरबी आदि) आदि के स्थान पर फल और सब्जियों को खाने में प्राथमिकता दें।

४. प्रातःकाल शौचादि से निवृत्त होकर एक गिलास सुहाते गर्म पानी में एक चम्मच सैंधा नमक पीसकर डालें और पी जायें। ५–७ मिनट बाद या तो स्वयं ही उल्टी होगी या गले में ऊँगली डालकर उल्टी कर दें। इससे जुकाम में बड़ी राहत मिलेगी। रक्तचाप के रोगी इस प्रयोग को न करें।

प्रभावी औषधियाँ—यदि उचित पथ्य-परहेज के साथ निम्नलिखित अनुभूत प्रयोग अपनाये जायें तो जुकाम वरदान भी सिद्ध हो सकता है। शरीर की सारी गन्दगी निकल जाती है, सभी अंग क्रियाशील हो उठते हैं। व्यक्ति पहले से अधिक स्वस्थ और तरोजाता हो जाता है—

१. मुलहटी, मुनक्का, अडूसा, लिसोड़ा, बनफ्सा और गुल बनफ्सा प्रत्येक १०-१० ग्राम, कालीमिर्च और मिश्री ५-५ ग्राम मिलाकर दरदरा चूर्ण करें। १० ग्राम दवा को १२५ ग्राम पानी में डालकर काढ़ा बनायें। चौथाई रहने पर छान लें और $2\frac{1}{2}$ ग्राम शहद और ५ ग्राम घी डालकर पी लें। सुबह और रात को प्रयोग करें। नया-पुराना और बिगड़ा हुआ, हर तरह के जुकाम और उनसे पैदा हुए ज्वर सिर दद, शरीर दर्द, खाँसी, श्वास आदि की प्रभावी दवा है।

२. गुलवनफ्सादि क्वाथ भी सभी प्रकार के जुकाम की चमत्कारी दवा है। नये रोग तीन से पाँच दिन तक और बिगड़े और पुराने रोग में सात से इक्कीस दिन तक प्रयोग करना चाहिए। नुस्खा है—गावजवां, गुजवनफ्सा, मुलहटी, खतमी के बीज ३–३ ग्राम, लिसोड़े १० नग, उन्नाव ५ नग लेकर २५० ग्राम पानी में काढ़ा बनायें। चतुर्थांश रहने पर ५ ग्राम मिश्री डालकर सेवन करें। कब्ज हो तो इसमें ५ मुनक्के और १ अंजीर भी डालें। प्रातः और रात्रि दो बार सेवन करने से सभी प्रकार के जुकाम और उसके विकार ठीक हो जाते हैं।

३. 'धन्वन्तरि' के एक सिद्ध प्रयोग को हम विशेष रूप से दे रहे हैं—प्रयोग करें और यश प्राप्त करें। छोटी या बड़ी पीपल आवश्यकतानुसार काँच के पात्र में रखें उसमें गो-मूत्र मिला दें। दूसरे दिन उस गो-मूत्र को निकालकर नया गो-मूत्र डालें—इस प्रकार ११ दिन करें। बारहवें दिन धूप में सुखाकर रख लें। $\frac{1}{4}$ ग्राम तक गर्म जल से दिन में ३-४ बार सेवन कराने से जुकाम, शिरशूल, श्वास, खाँसी, मलेरिया, मन्द ज्वर, जीर्ण ज्वर आदि में आशातीत लाभ मिलता है।

४. दो-तीन छोटी पीपल 100 ग्राम दूध में उबालें। 50 ग्राम रहने पर पीपल चबाकर और मिश्री मिलाकर दूध पीलें। जुकाम, कफ, खाँसी, बुखार आदि दूर होंगे।

५. कुछ घरेलू और शीघ्र लाभप्रद प्रयोग—सौंठ ५ ग्राम (या अदरक १० ग्राम), काली मिर्च व दालचीनी २-२ ग्राम लौंग ५ नग को दरदरा कर २५० ग्राम पानी में उबालें। चौथाई रहने पर ५ ग्राम मिश्री या बताशे मिलाकर प्रातः सायं सेवन करें। दो-तीन दिन में ही लाभ हो जाता है। हल्दी, अजवायन और

रूप से कार्य नहीं कर रही होती, इसीलिए यह रोग हो जाता है। कई बार **वंशानुगत कारणों** से भी ऐसा होता है।

बाल काले कैसे हों--

भोजन सम्बन्धी उपाय—ऊपर लिखे पित्त प्रकुपित करने वाले और हानिकारक पदार्थों का सेवन बन्द या कम मात्रा में करना चाहिए। इसके स्थान पर **पौष्टिक एवं पित्तशामक** पदार्थों का सेवन करना चाहिए। घी, दूध, मीठे फल, हरे पत्ते वाले शाक-सब्जी का प्रयोग प्रचुर मात्रा में करना चाहिये। सेव, आंवला, मुनक्का, किशमिश, पपीता, मौसमी, सन्तरा, नींबू, गाजर व चुकन्दर का रस—इन सबका सेवन विशेष रूप से गुणकारी रहता है।

विहार सम्बन्धी उपाय—ऊपर लिखे मिथ्या विहार से बचते हुए प्रातः काल भ्रमण (नंगे पैर ओसयुक्त घास में घूमने से नेत्र ज्योति बढ़ती है और बाल काले होते हैं।) व्यायाम, खान-पान में नियमितता, उचित विश्राम एवं अच्छी नींद इन उपायों से क्रमशः बाल काले होने लगते हैं।

मानसिक प्रसन्नता—रोग दूर करने की दिशा में सबसे कारगर उपाय है। यह एक ऐसा उपाय है जो एक पैसा भी खर्च नहीं करता, रोग को दूर करता है, व्यक्तित्व को सुन्दर और आकर्षक बनाता है और अपनी महक से चारों ओर के वातावरण को सुवासित बना देता है। महर्षि सुश्रुत ने चिन्ता, क्रोधादि को बाल सफेद होने का महत्वपूर्ण कारण माना है। अतः इस दृष्टि से भी प्रसन्न रहना आवश्यक है।

यदि आप नजला-जुकाम से पीड़ित रहते हैं तो उसका उचित उपचार करायें। चित्रक हरीतकी ५ ग्राम दवा में ५ तुलसी की पत्ती और २ रत्ती गोदन्ती भस्म मिलाकर प्रातः खाली पेट और रात्रि में सोते समय प्रयोग करें। बाद में थोड़ा-सा गर्म पानी पियें। इसी प्रकार नींद न आने वाले रोगियों को पहले इसका इलाज करा लेना चाहिए।

स्थानीय प्रयोग—शुद्ध और अच्छे तेल—शैम्पू ही बालों के लिए उपयोगी होते हैं अतः घर पर बने हुए तेल-शैम्पू का ही प्रयोग करें। इसके लिए निम्नलिखित विधि से तेल व शैम्पू का निर्माण करें। इनका **स्थानीय उपचार** बालों को काला बनाने व इस प्रकार की अन्य समस्याओं को दूर करने में अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

सर्वश्रेष्ठ शैम्पू—शिकाकाई २०० ग्राम, सूखा आंवला २०० ग्राम, रीठा २०० ग्राम और मेंहदी १०० ग्राम इन सब दवाओं को मोटा—दरदरा कूटकर रखलें। प्रयोग करने से २ घण्टे पहले या रात को २५० ग्राम गर्म पानी में २० ग्राम दवा भिगो दें। सिर धोते समय इस मिश्रण को अच्छी तरह रगड़ लें फिर चाय की छलनी

या कपड़े से छानकर नींबू निचोड़ कर इसके जल से बालों को धोयें। इसके प्रयोग से बाल रेशम से मुलायम, बादलों के समान घने-काले और मोती से कान्ति युक्त बन जाते हैं। महिलाओं के लिए यह योग अत्यन्त सस्ता और उपयोगी है। इसका प्रयोग करते रहने से बाल कभी सफेद नहीं होंगे और सफेद बाल भी धीरे-धीरे काले होने लगेंगे। सिर की रूसी, डैन्ड्रफ, खुजली, जूँ आदि की समस्याएं सदा-सदा के लिए समाप्त हो जायेंगी।

सर्वश्रेष्ठ केश तेल—आजकल बाजार में मनभावन सुवासित केश तैलों की बाढ़ आई हुई है। आकर्षक और कीमती पैकिंग बड़ी-बड़ी निर्माणशालाएँ और लाखों रुपयों का विज्ञापन का खर्च, अब आप अनुमान लगाइये कि मुख्य वस्तु का मूल्य कितना गुना बढ़ जाएगा या वह वस्तु कितनी प्रामाणिक होगी? आजकल बाजार में बिकने वाले प्र[illegible] तैलों में से अनेक तैलों की शुद्धता की जांच आप स्वयं [illegible] [illegible]न खोलकर तीन-चार दिन धूप में रखा रहने दें [illegible] इस तैल की गन्ध बहुत कुछ मिट्टी के तेल की गंध [illegible] सभी तेल ऐसे होते हैं, यह तो हम नहीं कहते, किंतु [illegible] अधिक हावी हो गई है कि शुद्धता और प्रामाणि-[illegible]
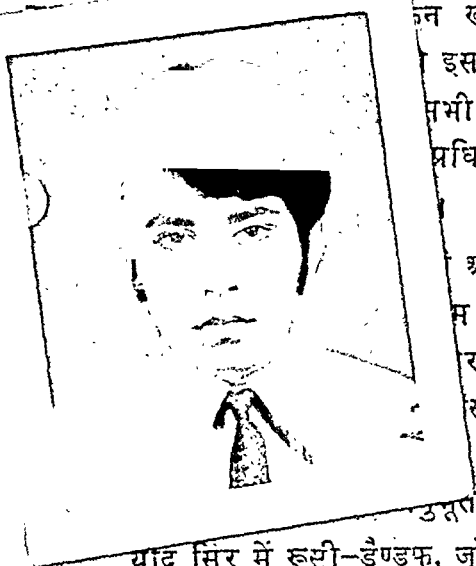
[illegible] अधिक लाभकारी तैलों का निर्माण घर पर ही [illegible] म तैल में १० ग्राम कपूर डालें, दिन में ३– [illegible] र है। इसके नियमित प्रयोग से और ऊपर [illegible] सी प्रकार की समस्याएं पैदा नहीं होंगी। हाँ [illegible] भोजन तो आवश्यक है ही। यह प्रयोग हमारा [illegible] उतरा है।

यदि सिर में रूसी–डैण्ड्रफ, जूँ, खुजली आदि विकार हों, बाल छोटे हों या झड़ते हों तो इस तैल का प्रयोग करते समय थोड़ा सा नींबू का रस और थोड़ी-सी डिटॉल मिलालें। ये दो प्रयोग बालों की किसी भी समस्या का अचूक और रामबाण उपचार है।

केश तैल नं. २—बालों को काले, घने, चमकीले और सुन्दर आकर्षक बनाये रखने के लिए **भृंगराज तैल** आयुर्वेद की एक श्रेष्ठ औषधि है, किन्तु यह शुद्ध होना चाहिए। इसके बनाने की विधि निम्नांकित है, घर पर बनायें या विश्वस्त वैद्य या रसायनशाला से का बना हुआ खरीदें। **बनाने की विधि इस प्रकार है—** भाँगरे (भृंगराज) का रस ४ किलो मण्डूर २० ग्राम और त्रिफला २५० ग्राम लें। सबको मिला लें फिर तिल का तैल ४ किलो और ६ किलो पानी लेकर—इन सभी चीजों को मिलाकर मन्द-मन्द अग्नि पर पकायें। जब तैल सिद्ध हो जाये—उसका छनकना बन्द हो जाए या झाग आना बन्द हो जाए, तात्पर्य जलीय अंश समाप्त

हो जाये तो नीचे उतार कर रखलें। ठण्डा हो जाने पर छानकर रखलें। इसके प्रयोग से बालों के सभी रोग दूर हो जाते हैं, और बाल घने, सुन्दर और काले बने रहते हैं या होने लगते हैं। भाँगरे के ४ किलो रस के स्थान पर भाँगरे का ३ किलो व आँवले का १ किलो रस भी ले सकते हैं। इसमें ब्राह्मी का आधा किलो रस भी डाल सकते हैं। अच्छी प्रकार से बनाया हुआ यह तैल बालों के स्वास्थ्य और सौन्दर्य के लिए अमृत के समान उपयोगी है। हमारे अपने अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि किसी भी नये वैज्ञानिक आविष्कार या नई खोजों से निर्मित कोई तैल या शैम्पू हमारे इन दो प्रयोगों की तुलना नहीं कर सकता। यदि यह तैल खरीदना ही पड़े तो **कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन (धर्मार्थ ट्रस्ट) कालेड़ा, अजमेर द्वारा निर्मित तैल ही खरीदना चाहिए।**

प्रभावशाली देशी शैम्पू—१०० ग्राम मुलतानी मिट्टी में रीठे का पानी (१० ग्राम रीठे का चूर्ण गर्म पानी में १ घण्टा भिगोकर मसलकर छानलें) मिलाकर पेस्ट बनालें और इससे सिर धोयें। इसमें ५ ग्राम नींबू का रस भी मिला सकते हैं। यह देशी शैम्पू कीमती से कीमती विलायती शैम्पूओं का मान मर्दन करने की क्षमता रखता है। यह बालों को तो रेशम सा मुलायम, लम्बा और चमकदार बनाता ही है साथ ही साथ सिर भी हलका और शीतल रखता है।

आधा पाव दही में २ ग्राम काली मिर्च का महीन चूर्ण मिलाकर बाल धोने से **बालों का सौन्दर्य खिल उठता है।**

आजकल **बालों के कण्डीशनर** की बड़ी धूम है। इसे घर पर बनाकर प्रयोग करने से पैसे की बचत तो होगी ही, साथ ही यह पूरी तरह से शुद्ध और उपयोगी रहेगा। १०० ग्राम जैतून का तैल, १०० ग्राम ग्लीसरीन और २० ग्राम सिरका मिला कर रखलें। आवश्यकतानुसार स्नान से पूर्व बालों की जड़ों में अच्छी तरह लगायें और १०-१२ मिनट बाद मामूली गर्म पानी से रगड़ कर बाल साफ करलें। प्रयोग करते समय यदि इसमें अण्डे की थोड़ी-सी जर्दी भी मिलाली जाये तो बहुत प्रभावशाली कण्डीशनर सिद्ध होता है।

बालों को सुन्दर और चमकीला बनाने के लिए एक बार प्रयोग की हुई चाय की पत्ती को उबालकर छानलें, इसमें एक या आधा नींबू का रस मिलालें। बालों को धोने के बाद इस मिश्रण से पुनः बाल धोने से बालों की छटा देखते ही बनती है।

अत्यन्त प्रभावशाली अनुभूत प्रयोग—बालों की सभी प्रकार की समस्याओं को दूर कर उनको सुन्दर स्वस्थ और चमकीला बनाये रखने के लिए यह प्रयोग अत्यन्त श्रेष्ठ सिद्ध हुआ है। हमने अनेक रोगियों पर इसका परीक्षण किया है और लगभग पूर्ण सफलता पाई है। आँवला चूर्ण २०० ग्राम, शिकाकाई चूर्ण

२०० ग्राम, रीठे का चूर्ण १०० ग्राम और नागरमोथा, कपूर काचरी और भृंगराज प्रत्येक ५०–५० ग्राम और कपूर १० ग्राम सबका महीन चूर्ण करके रखलें। रात्रि को स्टील या काँच के गिलास में पानी भरकर १० ग्राम चूर्ण को डालदें। प्रातःकाल इस जल में आधे नींबू का रस और २ ग्राम सोहागे के फूला का चूर्ण (सुहागे को तवे पर रखकर आग पर रखदें। फूल जाने पर उतार लें और पीसकर रख लें।) मिलाकर सिर धोयें। दवा १०–१५ मिनट सिर पर लगी रहनी चाहिए। यह अत्यत चमत्कारी प्रयोग है। आयुर्वेद हास्पीटल, तेजपुर, आसाम के प्रधान चिकित्सक कविराज डा० गिरधारी लाल मिश्रा ने भी थोड़े अन्तर के साथ इस योग को बहुत प्रभावशाली पाया है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा—बालों को काला बनाने के लिए आयुर्वेद का यह चिकित्सा क्रम अत्यन्त सफल सिद्ध हुआ है—काले तिल, भांगरा और सप्तामृत लौह (इसे बाजार से खरीदें) प्रत्येक ५०–५० ग्राम लेकर अच्छी तरह कूट-पीस कर मिला लें। प्रातःकाल और रात्रि को 2-2 ग्राम दूध के साथ सेवन करें। यदि इस दवा के साथ रात्रि को 1 पीस हरड़ का मुरब्बा भी सेवन किया जाये तो अधिक लाभ मिलता है।

२—भोजन के बाद भृंगराजासव १५ ग्राम और अश्वगन्धारिष्ट १० ग्राम में २५ ग्राम जल मिलाकर निरन्तर सेवन करें। यदि ये दो दवायें एक साथ सेवन की जायें तो कुछ माह के सेवन से ही लाभ होने लगता है। यहां यह स्मरण रखना आवश्यक है कि समय से पूर्व हुए सफेद बालों को काला करना अत्यन्त कठिन कार्य है, अतः धैर्यपूर्वक औषधि सेवन करनी चाहिए।

इस औषधि का प्रयोग; ऊपर लिखे हुए शैम्पू और कैश तेल का प्रयोग करते समय यदि मत्स्यासन, सर्वांगासन और शीर्षासन इन तीनों में से यथा सुविधा एक आसन विधिपूर्वक लगातार किया जाये तो पूरा लाभ हो जाता है।

तीन महीने तक उपर्युक्त प्रक्रिया को अपनाने के बाद निम्नलिखित प्रयोग शुरू कर देने चाहिए।

दैनिक प्रयोग—५०० ग्राम अरण्डी के तेल में आधा औंस चन्दन का बुरादा और आधा औंस पिसे हुए काफी के बीज मिलायें और मन्द अग्नि देकर ३०–४० मिनट तक पकायें। ठण्डा होने पर छानकर बोतल में भरकर रखलें। इस तेल की रात्रि को धीरे-धीरे मालिश करें। सुबह सिर को ऊपर लिखे शैम्पू या पानी से अच्छी तरह धोलें।

साप्ताहिक प्रयोग—पिसी हुई मेंहदी, आंवले का चूर्ण व चाय की पत्ती का चूर्ण अलग-अलग शीशियों में रखलें। तीनों दवाये १-१ चम्मच (कुल १५ ग्राम) लेकर थोड़े से गर्म पानी में मिलाकर रखदें। फिर उसमें थोड़ा सा गुलाब जल,

नमक व नीबू का रस मिला दें। इस मिश्रण से बालों की मालिश करें और लगभग २ घण्टे बाद धोकर साफ करलें।

ऊपर लिखे पूरे क्रम का पालन करने से कई रोगियों के दो-तीन महीने में ही सफेद बाल काले होने लगते हैं, लेकिन कई बार ५-६ माह में लाभ होना शुरू होता है। पूरे लाभ के लिए एक साल तक यह चिकित्सा क्रम अपनाना चाहिए।

विलुप्त बालों की अचूक औषधि—कई बार अनेक व्यक्तियों के सिर के बाल उड़ते देखे गये हैं। खोपड़ी चिकनी हो जाती है, फिर वहां बाल नहीं उगते पूरे सिर में एक तरह के स्पाट रेशमी साड़ी में बीच-बीच में लगे पैवन्द की तरह लगते हैं, जिनसे सारा सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। इसका एक अचूक इलाज हम लिख रहे हैं—

हाथी दांत का जलाकर पिसा हुआ चूर्ण और शुद्ध रसौत का चूर्ण समभाग लेकर रख लें। रात्रि को बकरी के कच्चे दूध में इस चूर्ण को मिलाकर मिश्रण तैयार करें और बालों की जड़ों और रोगग्रस्त भाग पर लगायें। रात भर लगा रहने दें। सुबह अच्छी तरह साफ करलें। यह प्रयोग अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ है।

हमारा पाठकों से आग्रह है कि इन प्रयोगों को करने के बाद हमें सूचन अवश्य देते रहें ताकि हम आपके अनुभवों से अनन्त प्रभा के अन्य पाठकों को भ।

१०.

स्वप्न और स्वप्नदोष

यदि मैं भूलता नहीं हूं तो बात सन् १९६९ की है। मैं अपने औषधालय में कुछ मरीजों को देख रहा था। एक-एक करके मरीज मेरे सामने आ रहे थे और मैं उनका परीक्षण करके उचित परामर्श दे रहा था। सबको अपनी-अपनी बारी की जल्दी थी, किन्तु एक 18-20 वर्ष का नवयुवक अपनी सीट से आगे बढ़ने का नाम ही नहीं ले रहा था। जब सभी मरीज जा चुके तो वह मेरे पास आया। उसके चेहरे पर निराशा का घना अन्धकार छाया हुआ था, अत्यन्त क्षीण स्वर में उसने कहना शुरू किया, "वैद्यजी, मेरा जीवन बरबाद हो गया है; आप मुझे बचा लीलिए। मैं आपका अहसान जिन्दगी भर नहीं भूलूंगा..........।' जब वह आपबीती कह चुका तो मैंने उसकी नाड़ी देखी और उसका पूरी तरह से परीक्षण करने के बाद मैंने उससे कहा कि जिसे तुम जीवन का सान्ध्य काल समझ रहे हो वहाँ तो अभी प्रभात की सुनहरी किरणें छा जाना चाहती है। आवश्यकता बस बात की है कि तुम उनका स्वागत करो।

जैसे डूबते को तिनके का सहारा मिला हो, उसके बुझे हुए चेहरे पर मुझे जीवन-संगीत के स्वर सुनाई दिये। मैंने उसे स्वास्थ्य और उसके विविध पक्षों के विषय में जानकारी दी और उसकी मुख्य समस्या स्यप्न और स्वप्न दोष के बारे में विस्तार से प्रकाश डाला। इसके साथ ही आहार-विहार व आचार-विचार सम्बन्धी निर्देश दिये और कुछ दवाइयों के सेवन का निर्देश भी दिया।

एक माह बाद जब वह मेरे पास आया तो उत्साह और प्रसन्नता उसके चेहरे से छिपाये नहीं छिप रहे थे। मुझे भी सन्तोप था कि एक निराश व्यक्ति के हृदय में आशा और विश्वास की किरणें अठखेलियाँ कर रही हैं। कुछ दिनों तक उसके पत्र आते रहे, बात आई-गई हो गई।

अब जब पिछले दिनों उसका पत्र आया और उसने आई.ए.एस. में चयन होने की सूचना दी तो मुझे लगा कि उचित मार्ग-दर्शन के अभाव में देश की कितनी प्रतिभाएं खिलने से पहले ही मुरझा जाती होंगी। इस दुखद विचार ने ही मुझे 'अनन्त प्रभा' के माध्यम से अपने चिकित्सा जीवन के कुछ अनुभव और विचार प्रकट करने की प्रेरणा दी।

स्वप्न क्या है—प्राचीन काल से आधुनिक काल तक अनेक विचारकों ने स्वप्न की गुत्थी सुलझाने की कोशिश की है, किन्तु 'रोग बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की' कहावत इस स्वप्न की समस्या पर भी खरी उतर रही है। फ्रायड ने स्वप्न का

...थ मनुष्य की दमित इच्छाओं से माना है। भारतीय विचारणा ने स्वप्न के ...न को मात्र दमित इच्छाओं के कठघरे तक सीमित नहीं रखा अपितु जीवन के ...कोण से स्वप्न की गोपन कथा को खोलने की चेष्टा की है। यहां हम आयुर्वेद ... मनुष्य के शारीरिक–मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से स्वप्न के विज्ञान पर प्रकाश ...लेंगे।

परिभाषा—आयुर्वेद शास्त्र में स्वप्न को परिभाषित करते हुए कहा है कि ...स अवस्था में शरीर की अन्य सब इन्द्रियां शान्त हों, किन्तु मन कार्यरत हो, उसे ...वप्न कहते हैं।

शरीर की चार अवस्थाएँ—उपर्युक्त परिभाषा को अच्छी प्रकार से समझने के लिए शरीर की चारों अवस्थाओं को समझना आवश्यक है—

1. जागृत अवस्था—जागृत अवस्था वह अवस्था है, जिसमें सम्पूर्ण अन्तः-करण-बुद्धि (mind) मेधा (Sub-Conscious Mind) मन और चित्त सभी जागृतावस्था में रहते हैं—अपने कार्य–व्यापार करते हैं। मन, कामना अथवा संकल्प करता है और ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां अपने विषयों (कर्मों) में प्रवृत्त रहती हैं। दूसरे शब्दों में जागृत अवस्था वह अवस्था है, जिसमें शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक–सभी प्रकार के कार्य-व्यापार होते रहते हैं। आंखें देखती हैं, कान सुनते हैं, हाथ कार्य करते हैं आदि।

2. सुषुप्ति या सुषुप्त अवस्था—सुषुप्त अवस्था वह अवस्था है, जब मन सहित सम्पूर्ण इन्द्रियां कार्यशील नहीं रहती हैं–मन कामना नहीं करता, जिह्वा रसास्वादन नहीं करती, हाथ भी कुछ कार्य नहीं करते। इसी प्रकार सभी इन्द्रियां विश्राम की अवस्था में रहती हैं।

इस अवस्था में मन की समस्त कामनाएं भी सुषुप्त अवस्था में रहती हैं—ये न तो समाप्त होती हैं और न नियन्त्रित, जब मन विश्राम कर चुकता है तो ये कामनाएं भी जगजाती हैं। दूसरे शब्दों में जिस अवस्था में सम्पूर्ण अन्तःकरण (बुद्धि, मेधा, मन और चित्त) सोया हुआ रहता हो, उसे सुषुप्ति कहते हैं।

3. स्वप्नावस्था—इस अवस्था में मन कामना अथवा संकल्प के रूप में गति करता है। उसका कार्य व्यवहार बन्द नहीं होता, जबकि सभी इन्द्रियाँ विश्राम-रत रहती हैं। महर्षि-वाग्भट ने स्वप्न के विज्ञान पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रार्थितः कल्पितस्था। ... अ०हृ०शा० 20...
भाविको दोषजश्चेति स्वप्नः सप्त विधोमनः॥

अर्थात् देखा हुआ, सुना हुआ, अनुभव किया हुआ, मांगा हुआ, कल्पना कि... हुआ, भाविक और दोष जन्य–ये स्वप्न के सात प्रकार हैं।

जागृत अवस्था में हम जो कुछ देखते हैं, वैसा ही स्वप्नावस्था में दे... **'दृष्ट स्वप्न'** है। कानों के द्वारा हम बहुत–सी बातों, कार्यों और घटनाओं ...

के विषय में सुनते हैं और वही बातें, घटनाएं आदि जब स्वप्न में दिखाई देती हैं तो वह **'श्रुत स्वप्न'** कहलाता है। दिन में इन्द्रियों ने जो कुछ अनुभव किया हो, वही स्वप्न मे देखना **'अनुभूत स्वप्न'** है। जागृत दिशा में जैसी इच्छाएं की हों, वैसा सपने में देखना या उन इच्छाओं की पूर्ति सपने में होते देखना **'प्रार्थित स्वप्न'** है। **'कल्पित स्वप्न'** उसे कहते हैं, जब दिन में की गई कल्पनाएँ स्वप्न में पूरी होती हुई दिखाई देती हैं। कई बार ऐसे स्वप्न भी आते हैं, जो न हमने देखे, न सुने, न अनुभव किये न इच्छा की और न ही कभी कल्पना की, ये 'अजनबी मेहमान' ही **'भाविक स्वप्न'** कहलाते हैं। इस सबके अतिरिक्त अन्तिम प्रकार के स्वप्न **'दोषज स्वप्न'** कहलाते हैं। दोषज स्वप्न वे हैं जो बात, पित्त या कफ आदि दोषों के कारण दिखाई देते हैं।

4. तुरीय अवस्था—तुर्यावस्था आत्मा की निरन्तर जागृत अवस्था का नाम है। इस अवस्था की प्राप्ति पर शेष तीनों अवस्थाएं समाप्त हो जाती हैं। इस अवस्था में अन्तकरण (बुद्धि, मेधा, मन और चित्त) के सभी स्वतन्त्र कार्य-व्यापार समाप्त हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां अपने सहज स्वाभाविक विषयों की ओर न दौड़कर आत्मोन्मुख हो जाती हैं। मनुष्य का आन्तरिक और बाहरी—समस्त प्रकार का कार्य-व्यापार, दैहिक, बौद्धिक और मानसिक न होकर आत्मिक हो जाता है। यही वह अवस्था है जब मनुष्य ब्रह्ममय हो जाता है—नर से नारायण बन जाता है।

स्वप्न निद्रा में बाधक—जैसा कि हमने ऊपर देखा सुपुप्त अवस्था और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में अन्तर है। नींद शरीर और मस्तिष्क का अनिवार्य पौष्टिक भोजन है। चरकाचार्य के अनुसार अन्तःकरण के थक जाने पर जब इन्द्रियां अपने-अपने कार्यों से विमुख हो जाती हैं, तब निद्रा आकर उन्हें पुनर्जीवित कर देती है। चरक संहिता में ही एक अन्य स्थान पर लिखा है कि जैसे काल रात्रि जीवन को नया कर देती है उसी प्रकार निद्रा भी जीवन में नया सुख भर देती है। किन्तु स्वप्न सुनिद्रा में बाधक होते हैं। इस दशा में मन कार्यशील रहता है। अतः मनुष्य को उचित विश्राम नहीं मिल पाता।

महर्षि वाग्भट के 'अष्टांग हृदय' के उक्त सूक्त के अनुसार स्वप्न के दो कारण हैं—1 स्वप्न मन के उद्वेगों का परिणाम हैं। 2. स्वप्न शारीरिक दोषों से उत्पन्न होते हैं। स्वप्न दोष विशेषकर किशोरों और नवयुवकों में पाये जाने वाले इस घातक रोग पर पूरी तरह से विजय पाने के लिए उपर्युक्त दोनों सन्दर्भों में स्वप्न की व्याख्या आवश्यक है।

स्वप्न मन के आवेगों का परिणाम—यह हमारे दैनिक जीवन का अनुभव है कि जिस बात का प्रभाव हमारे ऊपर बहुत अधिक पड़ता है, वे बातें ही स्वप्न में दिखाई देती हैं। परीक्षा के दिनों में एक विद्यार्थी को स्वप्न में भी परीक्षा

पुस्तक दिखाई देती है। दिन-रात मुनाफे की चिन्ता में डूबे रहने वाला व्यापारी
न में भी व्यापारिक क्रियाएं करता है। एक खूनी व्यक्ति स्वप्न में भी पुलिस
ता है। एक संगीतकार स्वप्न में भी संगीत के मधुर स्वर निकालने में मशगूल
हता है। एक कामुक व्यक्ति को स्वप्न में भी नारी दिखाई देती है। **इन सब
उदाहरणों को देने का अभिप्राय: यह सिद्ध करना है कि हमारी दृष्टि,
कान, क्रियाएँ इच्छाएँ, कल्पनाएँ आदि जिन बातों में अपनी पूरी तन्मयता
के साथ रमी होती हैं, हमें उन्हीं बातों के स्वप्न आते हैं।**

स्वप्न, दूषित आहार-विहार के परिणाम—दिनचर्या, रात्रिचर्या,
ऋतुचर्या, देश काल, प्रकृति के अनुसार सम्यक आहार-विहार का पालन न करने
से शरीर में मल और विजातीय पदार्थ इकट्ठे हो जाते हैं। इसके साथ ही तीनों
दोषों वात-पित्त-कफ में विकृति और विषमता आ जाती है। और कालान्तर में रस-
रक्तादि धातुएँ भी दूषित होने लगती हैं। इन कारणों का प्रभाव मन पर भी पड़ता
है और तरह-तरह के डरावने और अश्लील स्वप्न आने लगते हैं।

स्वप्न दोष के कारण—1. इतना समझ लेने के बाद स्वप्न-दोष के
कारणों को समझ लेना अत्यन्त आसान हो जाता है। स्वप्न दोष में कामवासना से
युक्त अत्यन्त अश्लील और गन्दे स्वप्न व्यक्ति को आते हैं और परिणाम स्वरूप शुक्र
का स्खलन हो जाता है। जागृत अवस्था में व्यक्ति का मन यदि अश्लील और कामु-
कतापूर्ण बातों में लगा रहता है, तो यह बात सौ प्रतिशत सत्य है कि स्वप्न में भी
उसका सम्बन्ध उन्हीं कामुकतापूर्ण बातों से रहेगा और वह स्वप्न दोष का रोगी हो
जायेगा। यदि उसका मन बुरी भावना से किसी दृश्य, चित्र, सिनेमा या स्त्री को
देखेगा तो वह स्वप्न भी उसी प्रकार के देखेगा। इसी प्रकार कामुकतापूर्ण बातें कहना,
सुनना, पढ़ना अथवा उनका स्मरण करना, इच्छा करना या कल्पना करना इन सभी
बातों से उसको स्वप्न भी उसी के सम्बन्ध में आयेंगे और वह स्वप्नदोष का रोगी
बन जायेगा।

2. दोषज कारण—जैसा कि हमने ऊपर लिखा है कि सम्यक आहार-
विहार न अपनाने से शरीर में दोष उत्पन्न होते हैं। इसके साथ ही अधिक मिर्च-
मसाले, तले हुए पदार्थ, गर्म पदार्थ, मांस मछली, अण्डा, शराब आदि पदार्थों के
सेवन से त्रिदोष का सन्तुलन बिगड़ जाता है और व्यक्ति को गन्दे-गन्दे सपने आ
हैं। इन सब पदार्थों के सेवन से उसके शुक्राशय पर दबाव रहता है और अश्ली
स्वप्न आने पर शुक्र अपना स्थान छोड़ देता है।

3. अल्पायु में ब्रह्मचर्य का खण्डन—अल्पायु में ही ब्रह्मचर्य का खण
भी स्वप्नदोष का कारण है। छोटी आयु में वीर्य का दुरुपयोग करने से वातवा
और शुक्रवाहिनी नाड़ियां कमजोर हो जाती हैं और वे शुक्र धारण करने में स
असमर्थ हो जाती हैं। फलस्वरूप अश्लील स्वप्न आने से शुक्र पात

जाता है। सामान्यतः पच्चीस वर्ष तक व्यक्ति को मनसा-वाचा-कर्मणा ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। किन्तु बाल-विवाह, बुरी संगति, सिनेमा या अश्लील साहित्य के पढ़ने से जो किशोर अल्पायु में ही अपने वीर्य की रक्षा नहीं करते वे स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहे हैं। इस प्रकार निरन्तर वीर्य क्षय करते रहने से वीर्य में परिपक्वता नहीं आ पाती और फिर उन्हें स्वप्न दोष जैसा भयंकर रोग भी लग जाता है।

एक भ्रम का निवारण—यहां यह कहना भी उचित होगा कि ऐलोपैथी चिकित्सा पद्धति स्वप्न दोष को सहज व प्राकृतिक क्रिया मानती है। उनका यह निष्कर्ष सर्वथा दोषपूर्ण और भ्रामक है। यह चिकित्सा पद्धति रोगों के भौतिक क्षेत्रों तक ही सीमित है। मन, बुद्धि और आत्मा की महती भूमिका तक उसकी पहुंच नहीं है। मैंने अपने जीवन में एक भी रोगी ऐसा नहीं देखा जिसे स्वप्न-दोष, अश्लील और कामुकतापूर्ण स्वप्न के बिना हुआ हो। स्वप्न में शुक्र के क्षरण को सहज और प्राकृतिक मानना भयंकर भूल है। प्राकृतिक जीवन को सबसे अधिक अपनाने वाले पशु-पक्षियों में एक भी स्वप्नदोष का रोगी नहीं होता। इसके साथ ही उनके वंश चलाने के कार्य में भी एक निश्चित क्रम, व्यवस्था और मर्यादा दिखाई देती है। अश्लील आचार-विचार, अश्लील स्वप्न और फिर स्वप्न दोष यदि उचित, सहज स्वास्थ्यप्रद और प्राकृतिक हैं तो फिर श्रेष्ठ आचार-विचार, अच्छे स्वप्न और वीर्य की ऊर्ध्वगति को क्या कहा जावेगा ? अपनी वंश-जाति की रक्षा के लिए ईश्वरीय कार्य समझते हुए शुक्र का क्षरण प्राकृतिक हो सकता है किन्तु स्वप्न में शुक्र का क्षरण प्राकृतिक है, यह विचार सत्य के सर्वथा विपरीत है।

मन और इन्द्रियों का कार्य तो अपने विषयों में रमना है ही—यदि इनको खुली छूट मिल गई, बुद्धि का नियन्त्रण समाप्त हो गया तो फिर व्यक्ति ही नहीं मानव-जाति का ही विनाश हो जायेगा। एक तो मन स्वयं ही महाबली, चंचल और अस्थिर है, इस पर बुद्धि (?) भी यह कहने लगे कि मन और इन्द्रियों का अपने विषयों की ओर दौड़ना प्राकृतिक है, स्वास्थ्यप्रद है, अच्छा है—यही तो वह स्थिति है जब रक्षक (बुद्धि) ही भक्षक बन जाता है या फिर—

जिस पै सिर था वही पत्ते हवा देने लगे—वाली बात है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा—

असंशय महाबाहो मनोर्दुनिग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥—गीता

अर्थात् इसमें सन्देह नहीं कि यह मन अत्यन्त चंचल है और इसका रोकना अत्यन्त कठिन है, किन्तु फिर भी अभ्यास और वैराग्य से इसको वश में किया जा सकता है।

मन की दो दशायें होती है—प्रेय, जिसमें वह अपने सहज-स्वाभाविक विषयों की ओर दौड़ता है, दूसरी श्रेय, जिसमें वह आत्मलीन हो जाता है। यह स्थिति ही श्रेयसः है। इसका विस्तृत विवेचन तुरीय अवस्था के अन्तर्गत किया जा चुका है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ऐलोपैथी के निष्कर्ष शरीर और **मन की प्रेय** स्थिति तक सीमित हैं। मन की सभी स्थितियों—सत्-असत्, प्रेय-श्रेय, विषयलीन-ब्रह्मलीन—इन सबके समग्र दर्शन पर एलोपैथी की दृष्टि नहीं गई।

स्वप्न-दोष की चिकित्सा—प्रत्येक रोग की सफल चिकित्सा के लिए उन कारणों को दूर करना आवश्यक है, जिनके कारण वह रोग विशेष पैदा होता है। कहा भी गया है—**'कार्यातभावः कारणाभावः' अर्थात कार्य का अभाव हो या कार्य न हो इसके लिए यह आवश्यक है कि कारण का अभाव हो।** इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त को समझना स्वप्न-दोष के रोगी के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आयुर्वेद का प्रसिद्ध कथन है—**'निदान परिवर्जनं नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय'** अर्थात् रोग के कारण को त्याग देने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है।

इस तथ्य को समझते हुए स्वप्न-दोष जैसे भयंकर रोग से पूरी तरह से छुटकारा पाने के लिए चार प्रकार के उपाय काम में लाने वाला व्यक्ति कभी निराश नहीं होता और उसके जीवन से दुःख और दीनता के काले बादल हमेशा-हमेशा के लिए छँट जाते हैं। ये चार उपाय हैं—

१. मन सम्बन्धी—अपने मन को सद्विचारों का केन्द्र बना लेना स्वप्न-दोष की सबसे अच्छी चिकित्सा है। कामुकता ही अश्लील सपनों का एकमात्र कारण है। यदि मन अश्लील बातों से मुक्त रहेगा, तो अश्लील सपनों और स्वप्न-दोष होने की कल्पना ही नहीं करनी चाहिए। इसके लिए अश्लील चिन्तन-मनन, बुरे दृश्य देखना, गन्दी चर्चाएं, अश्लील इच्छाएं-कल्पनाएं करना इन सबको छोड़कर मन को अच्छे विचारों में लगाना चाहिए। सत्-साहित्य का पढ़ना, अच्छे मित्रों के साथ रहना, सिनेमा टी०वी० आदि के सुन्दर व श्रेष्ठ कार्यक्रमों को देखना—इन सबसे मन में बुरे विचार पैदा ही नहीं होंगे। मन भटक सकता है, किन्तु आपकी दृढ़-संकल्प शक्ति सदैव आपकी रक्षा करेगी।

आत्म विश्वास जगाइये—मैंने अपने चिकित्सा-जीवन में स्वप्न-दोष का एक भी ऐसा रोगी नहीं देखा, जो निराश, दुःखी और आत्महीनता से घिरा हुआ न हो। **ईश्वर और प्रकृति ने मानव-शरीर को जो शक्ति दी है वह अजय है।** मनुष्य के द्वारा की गई भूलों से मनुष्य की यह शक्ति कमजोर तो होती है, किन्तु यदि वह चाहे और उचित उपाय करे तो कमजोर प्राण-शक्ति पुनः सबल और अजेय बन जाती है। अतः स्वप्नदोष के रोगियों को ,बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेइ,' के सिद्धान्त को अपनाना चाहिए। **जो कुछ नष्ट हो चुका है, उसे पाया तो नहीं जा सकता, किन्तु उसे पैदा किया जा सकता है और आत्मविश्वास से भरा-पूरा संकल्प ही उसे पैदा कर सकता है।**

२. आहार सम्बन्धी उपाय—इन उपायों के अन्तर्गत स्वप्नदोष लाभदायक आहार का सेवन करना चाहिए और हानिकारक पदार्थों का सेवन ब**न्द** कर देना चाहिए।

स्वप्नदोष के रोगी का भोजन—स्वप्नदोष के रोगी को हल्के, सुपाच्य और शीत वीर्य (ठण्डे प्रभाव वाले) पदार्थों का सेवन करना चाहिए। फल, हरी-पत्तीदार साग-सब्जियां, सलाद, दूध (ठण्डा किया हुआ), छाछ, मक्खन आदि पदार्थों का सेवन करना चाहिए। पपीता, मुनक्का, चोकर युक्त रोटी, गुलकन्द आंवला, दलिया, पुराने शालि चावल आदि पदार्थ विशेष रूप से उपयोगी होते हैं।

हानिकारक भोजन—स्वप्नदोष के रोगी को दुष्पाच्य, गरिष्ठ, तले हुए और बासी पदार्थों से परहेज रखना चाहिए। मिठाइयां, समोसे, कचौड़ी, चाट, पकौड़ी, उड़द की दाल, अरवी, आलू (कम), दही, शलगम, गुड़, तेज मिर्च, गर्म-मसाला, तेल आदि पदार्थों का सेवन यथासम्भव नहीं करना चाहिए। चाय, काफी, मांस, अण्डा, मछली, शराब आदि स्वप्नदोष के रोगी को बहुत नुकसान करते हैं।

३. विहार सम्बन्धी—शीतल जल से स्नान, प्रातः भ्रमण, व्यायाम, सूर्य नमस्कार, सोने से पूर्व हाथ-पैर, मुंह और गुप्तांगों को शीतल जल से धोना, पन्द्रह दिन में एक-दो दिन केवल दूध और फल खाना, भोजन नियमित समय पर लेना, रात्रि का भोजन सोने से कम से कम तीन घण्टे पहले कर लेना, भोजन के अन्त में कम पानी पीना या केवल मध्य में ही पीना, प्रातः शौच से पूर्व एक गिलास पानी पीना, भोजन के बाद पेशाब जाना और सोने से पूर्व पेशाब करना इस प्रकार के उपाय करने से स्वप्नदोष रोग ठीक हो जाता है।

स्वप्नदोष के रोगी को दिन में सोना, रात्रि में देर तक जागना, भोजन सम्बन्धी अनियमितताएं या देर से भोजन करना, मल-मूत्रादि के वेग को रोकना, धूप में घूमना, गर्म जल से नहाना, आलस्य में निठल्ले पड़े रहना, अधिक आराम-दायक जिन्दगी बिताना, गद्देदार मुलायम पलंग पर सोना—इन सब बातों को पूरी तरह से छोड़ देना चाहिए।

आयुर्वेदिक चिकित्सा—१. चन्द्रप्रभावटी ४२ गोली, प्रवालपिष्टी ५ ग्राम और गिलोयसत्व १० ग्राम तीनों को पीसकर व मिलाकर ४२ पुड़ियां बनालें। १-१ पुड़िया खाली पेट सुबह और रात्रि भोजन के दो घण्टे बाद गुलकन्द, मुरब्बा आंवला, शहद या गौ दुग्ध के साथ सेवन करें। गौ दुग्ध बाद में भी लिया जा सकता है। २१ दिन के प्रयोग से वीर्य सम्बन्धी सभी व्याधियां दूर हो जाती हैं। स्वप्नदोष में तो यह योग अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

२. वंग भस्म ५ ग्राम, प्रवालपिष्टी ५ ग्राम व कबाब चीनी का चूर्ण २० ग्राम—सबको मिलाकर ४२ पुड़ियां बनालें। सुबह-शाम १-१ पुड़िया शहद के साथ सेवन करें।

३ स्वर्ण वंग ५ ग्राम, प्रवालपिष्टी ५ ग्राम और शीतल चीनी चूर्ण ४० ग्राम—सबको मिलाकर ४२ पुड़ियां बनालें और सुबह-शाम शहद के साथ सेवन करें। कब्ज न होने दें. कब्ज होने पर १-२ दिन फलाहार करें और मुनक्का व गुलकन्द का सेवन करें। उचित आहार-विहार [illegible] सेवन करने से खोया स्वास्थ्य बहुत शीघ्र लौट आता है।

हार चिकित्सा

१. भोजन सदैव नियमित और समय पर करना चाहिए।
२. दिनचर्या में भ्रमण और हल्के व्यायाम को अवश्य स्थान देना चाहिए।
३. **इस रोग को दूर करने में स्थानीय सफाई बहुत आवश्यक है। अतः योनिमार्ग की डूस द्वारा या डिटाल, फिटकरी या त्रिफला के पानी से निरन्तर सफाई करनी चाहिए।** मल द्वार की गन्दगी भी कई बार रोग—संक्रामण का कारण होती है, अतः इसकी सफाई भी आवश्यक है।
४. सत्साहित्य का पढ़ना और संस्कार क्षम वातावरण से मन में सद्विचार पैदा होते हैं और मन आशा और विश्वास से भर उठता है। **स्मरण रखिए किसी भी रोग को दूर करने लिए आशा और विश्वास से बढ़कर कोई दूसरा चिकित्सक नहीं है।**

आयुर्वेदिक चिकित्सा

उपर्युक्त आहार—विहार का पालन उचित पथ्य-परहेज के साथ करने एवं निम्नलिखित आयुर्वेदिक दवाइयों से रोग जड़ से नष्ट हो जाता है।

१. दार्व्यादि काढ़ा श्वेत प्रदर की श्रेष्ठ दवा है। मेरे अपने अनुभव में इससे अच्छी और निरापद दवा आयुर्वेद में शायद ही दूसरी हो। दारुहल्दी, रसौत, नागर मौथा, चिरायता, भिलावा, बेलगिरी, अडूसा और चिरायता—सबको बराबर-बराबर लेकर जौ कुट (मोटा-दरदरा) चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को $2\frac{1}{2}$ तोला (लगभग ३० ग्राम) लेकर २०० ग्राम पानी में उबालें। ५० ग्राम पानी शेष रहने पर ५ग्राम देशी घी मिलाकर पियें। सुबह—शाम पीने से प्रदर सम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। काढ़ा बनाने का बर्तन मिट्टी या स्टील का होना चाहिए और मुँह खुला रखना चाहिए।

यदि रोग अधिक पुराना और बढ़ा हुआ हो तो काढ़े के साथ १–१ गोली चन्द्रप्रभावटी और १–१ रत्ती वंगभस्म का सेवन करना चाहिए।

इस योग के सेवन से प्रदर के निराश रोगी भी ठीक हो गये। **गर्भाशय कैंसर की पहली दशा, गर्भाशय में व्रण आदि सभी प्रकार के रोगों की यह रामबाण दवा है। हमारी अनेक बार की परीक्षित है।**

२. प्रदरान्तक लौह २ रत्ती अंडत्वग्भस्म २ रत्ती और वंगभस्म २ रत्ती ऐसी एक-एक मात्रा प्रातः सायं दूध, चावल का धोवन-माँड या शहद के साथ सेवन करने से प्रदर रोग आराम हो जाता है। भोजन के आधा घंटा बाद सुन्दरी संजीवनी १०–१० ग्राम का सेवन करना चाहिए।

इस प्रयोग से लगभग ८० प्रतिशत रोगी ठीक होते देखे गये हैं।

३. शरीर में टूटन—दर्द व निराशा के भाव अधिक हों तो चन्द्रप्रभावटी १ गोली, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, अंडत्वग्भस्म २ रत्ती और असगंध ४ रत्ती ऐसी

कहने का तात्पर्य यह है कि मासिक स्राव के दिनों में संयमित आचार-विचार का अभ्यास किशोरियों को करना चाहिए ताकि विवाहित जीवन में इन सभी बातों का निर्वाह सरलता से किया जा सके।

उचित आहार—ऋतुकाल के दिनों में दूध, फल, हल्के सुपाच्य और पौष्टिक भोजन का सेवन करना चाहिए। ठण्डे और रूक्ष पदार्थों का सेवन उचित नहीं रहता। इससे वात का प्रकोप हो जाता है और कई बार मासिक स्राव का प्रवाह भी मन्द हो जाता है या रुक जाता है।

विहार—इन दिनों पूर्ण विश्राम करना चाहिए। हलके फुलके काम किये जा सकते हैं। स्नान कई बार बहते हुए स्राव को रोकने में एवं वायु प्रकुपित करने में सहायक होता है। स्राव रुकने से जननांगों की पूरी सफाई नहीं हो पाती। और मासिक धर्म सम्बन्धी बीमारियाँ भी आ घेरती हैं।

स्थानीय स्वच्छता—मासिक स्राव के दिनों में स्थानीय सफाई रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उचित सफाई न रखने से अनेक प्रकार के कीटाणुओं का संक्रमण हो जाता है जिससे प्रदर आदि भयंकर रोग आ घेरते हैं और जीवन भर पछताना पड़ता है। अज्ञान और अशिक्षा के कारण प्रायः महिलाएं गन्दे कपड़े का प्रयोग करती हैं। ऐसा करना रोगों को खुला निमन्त्रण देना है। इसके लिए पैड या साबुन से धुले हुए साफ कपड़े का प्रयोग करना चाहिए। इसके साथ ही जननांगों की त्रिफला जल, फिटकरी जल या डिटॉल आदि के जल से भली प्रकार सफाई करते रहना चाहिए। इन दिनों महिलायें गन्दे रक्त का स्राव होने के कारण स्वच्छ नहीं रह पातीं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे अछूत हो जाती है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि ये दिन स्वच्छता और अपवित्रता के होते हैं साथ ही विश्राम की भी आवश्यकता होती है अतः हमारे स्वास्थ्य विज्ञानियों ने इन दिनों में कार्य न करना और विश्राम करने की सलाह दी किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनको अछूत मान लिया जाये और उनके हाथ की कोई वस्तु स्वीकार न की जाये।

मासिक धर्म सम्बन्धी रोग

आजकल दोषपूर्ण आहार-विहार अश्लील चिन्तन-मनन आदि कारणों से अधिकांश स्त्रियां मासिक-धर्म सम्बन्धी अनेक रोगों से पीड़ित हैं। इन रोगों में इन दिनों **अत्यार्तव** रोग बहुत दिखाई दे रहा है। इसका विस्तृत उल्लेख हम पृथक से कर चुके हैं। यहाँ मासिक धर्म सम्बन्धी अन्य रोगों पर प्रकाश डालेंगे।

हार चिकित्सा

१. भोजन सदैव नियमित और समय पर करना चाहिए।

२. दिनचर्या में भ्रमण और हल्के व्यायाम को अवश्य स्थान देना चाहिए।

३. **इस रोग को दूर करने में स्थानीय सफाई बहुत आवश्यक है। अतः योनिमार्ग की डूस द्वारा या डिटाल, फिटकरी या त्रिफला के पानी से निरन्तर सफाई करनी चाहिए।** मल द्वार की गन्दगी भी कई बार रोग-संक्रामण का कारण होती है, अत: इसकी सफाई भी आवश्यक है।

४. सत्साहित्य का पढ़ना और संस्कार क्षम वातावरण से मन में सद्विचार पैदा होते हैं और मन आशा और विश्वास से भर उठता है। **स्मरण रखिए किसी भी रोग को दूर करने लिए आशा और विश्वास से बढ़कर कोई दूसरा चिकित्सक नहीं है।**

आयुर्वेदिक चिकित्सा

उपर्युक्त आहार-विहार का पालन उचित पथ्य-परहेज के साथ करने एवं निम्नलिखित आयुर्वेदिक दवाइयों से रोग जड़ से नष्ट हो जाता है।

१. दार्व्यादि काढ़ा श्वेत प्रदर की श्रेष्ठ दवा है। मेरे अपने अनुभव में इससे अच्छी और निरापद दवा आयुर्वेद में शायद ही दूसरी हो। दारुहल्दी, रसौत, नागर मोथा, चिरायता, भिलावा, बेलगिरी, अडूसा और चिरायता—सबको बराबर-बराबर लेकर जौ कुट (मोटा-दरदरा) चूर्ण कर लें। इस चूर्ण को २½ तोला (लगभग ३० ग्राम) लेकर २०० ग्राम पानी में उबालें। ५० ग्राम पानी शेष रहने पर ५ग्राम देशी घी मिलाकर पियें। सुबह-शाम पीने से प्रदर सम्बन्धी सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। काढ़ा बनाने का बर्तन मिट्टी या स्टील का होना चाहिए और मुँह खुला रखना चाहिए।

यदि रोग अधिक पुराना और बढ़ा हुआ हो तो काढ़े के साथ १-१ गोली चन्द्रप्रभावटी और १-१ रत्ती वंगभस्म का सेवन करना चाहिए। इस योग के सेवन से प्रदर के निराश रोगी भी ठीक हो गये। **गर्भाशय कैंसर की पहली दशा, गर्भाशय में व्रण आदि सभी प्रकार के रोगों की यह रामबाण दवा है। हमारी अनेक बार की परीक्षित है।**

२. प्रदरान्तक लौह २ रत्ती अंडत्वग्भस्म २ रत्ती और वंगभस्म २ रत्ती ऐसी एक-एक मात्रा प्रातः सायं दूध, चावल का धोवन-मांड या शहद के साथ सेवन करने से प्रदर रोग आराम हो जाता है। भोजन के आधा घंटा बाद सुन्दरी संजीवनी १०-१० ग्राम का सेवन करना चाहिए। इस प्रयोग से लगभग ८० प्रतिशत रोगी ठीक होते देखे गये हैं।

३. शरीर में टूटन-दर्द व निराशा के भाव अधिक हों तो चन्द्रप्रभावटी १ गोली, प्रवाल पिष्टी १ रत्ती, अंडत्वग्भस्म २ रत्ती और असगंध ४ रत्ती ऐसी

कहने का तात्पर्य यह है कि मासिक स्राव के दिनों में संयमित आचार-विचार का अभ्यास किशोरियों को करना चाहिए ताकि विवाहित जीवन में इन सभी बातों का निर्वाह सरलता से किया जा सके।

उचित आहार—ऋतुकाल के दिनों में दूध, फल, हल्के सुपाच्य और पौष्टिक भोजन का सेवन करना चाहिए। ठण्डे और रूक्ष पदार्थों का सेवन उचित नहीं रहता। इससे वात का प्रकोप हो जाता है और कई बार मासिक स्राव का प्रवाह भी मन्द हो जाता है या रुक जाता है।

विहार—इन दिनों पूर्ण विश्राम करना चाहिए। हलके फुलके काम किये जा सकते हैं। स्नान कई बार बहते हुए स्राव को रोकने में एवं वायु प्रकुपित करने में सहायक होता है। स्राव रुकने से जननांगों की पूरी सफाई नहीं हो पाती। और मासिक धर्म सम्बन्धी बीमारियाँ भी आ घेरती हैं।

स्थानीय स्वच्छता—मासिक स्राव के दिनों में स्थानीय सफाई रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उचित सफाई न रखने से अनेक प्रकार के कीटाणुओं का संक्रमण हो जाता है जिससे प्रदर आदि भयंकर रोग आ घेरते हैं और जीवन भर पछताना पड़ता है। अज्ञान और अशिक्षा के कारण प्राय: महिलाएं गन्दे कपड़े का प्रयोग करती हैं। ऐसा करना रोगों को खुला निमन्त्रण देना है। इसके लिए पैड या साबुन से धुले हुए साफ कपड़े का प्रयोग करना चाहिए। इसके साथ ही जननांगों की त्रिफला जल, फिटकरी जल या डिटॉल आदि के जल से भली प्रकार सफाई करते रहना चाहिए। इन दिनों महिलायें गन्दे रक्त का स्राव होने के कारण स्वच्छ नहीं रह पातीं। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वे अछूत हो जाती है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि ये दिन स्वच्छता और अपवित्रता के होते हैं साथ ही विश्राम की भी आवश्यकता होती है अत: हमारे स्वास्थ्य विज्ञानियों ने इन दिनों में कार्य न करना और विश्राम करने की सलाह दी किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनको अछूत मान लिया जाये और उनके हाथ की कोई वस्तु स्वीकार न की जाये।

मासिक धर्म सम्बन्धी रोग

आजकल दोषपूर्ण आहार-विहार अश्लील चिन्तन-मनन आदि कारणों से अधिकांश स्त्रियां मासिक-धर्म सम्बन्धी अनेक रोगों से पीड़ित हैं। इन रोगों में इन दिनों **अत्यार्तव** रोग बहुत दिखाई दे रहा है। इसका विस्तृत उल्लेख हम पुस्तक में कर चुके हैं। यहाँ मासिक धर्म सम्बन्धी अन्य रोगों पर प्रकाश डालेंगे :

कष्टार्तव या ऋतुशूल

ऋतुकाल में पेड़ू, कमर, सिर, सम्पूर्ण शरीर, मेरुदण्ड में से एक या अधिक स्थानों में तेज दर्द होता है और अत्यन्त कम मात्रा में स्राव होता है। इसे ही कष्टार्तव या ऋतुशूल कहते हैं। सिर में चक्कर, मिचली या उलटी आदि लक्षण भी देखे जाते हैं। मिथ्या आहार-विहार, जरायु का अपने स्थान से हट जाना, जननांगों में रक्त संचय, श्वेत प्रदर, असंयम आदि कारणों से यह रोग हो जाता है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा १. सुप्रसिद्ध हकीम उत्तम चन्द जी ने **सौभाग्यादि-गुटिका** का अनेकों महिलाओं पर सफलता पूर्वक प्रयोग किया है। सोहागे का फूला, भुनी हींग और कसीस १–१ तोला, अजवायन २–२ तोला, कालीमिर्च ३ तोला और एलुवा ५ तोला। सब को मिलाकर घी कुवांर (ग्वारपाठा) के रस में मर्दन कर २–२ रत्ती की गोलियां बनालें और एक से दो गोली गर्मजल से सुबह-शाम सेवन करायें।

२. **हमारा अनुभूत योग—सुबह-रात्रि**—चन्द्रप्रभावटी २–२ गोली पानी या दूध के साथ निरन्तर सेवन करते रहें। किन्तु मासिक धर्म शुरू होने के समय ४–५ दिन पहले से और मासिक धर्म के दिनों में यही दवा निम्नलिखित काढ़े के साथ लें—मूली के बीज, गाजर के बीज, कपास के बीज, कालीमिर्च, अजवायन समभाग लेकर दर-दरा कूट लें फिर यह दवा १ तोला लेकर एक पाव पानी में काढ़ा बना लें और इस काढ़े से चन्द्रप्रभा की २–२ गोलियां सुबह रात्रि को सेवन करें। इस काढ़े में ५ ग्राम पुराना गुड़ प्रत्येक खुराक में डालना चाहिए।

भोजन के बाद—कुमार्यासव दो तोला में दो तोला जल मिलाकर भोजन के आधा घण्टे बाद सेवन करें।

इसके अतिरिक्त आयुर्वेद के महान ग्रन्थ भैषज्य रत्नावली की **कुमारिका वटी** और आधुनिक युग के महान् शास्त्री **पं० यादवजी विक्रमजी आचार्य की रजोदोष हरी वटी और बोलादि वटी** भी लाभकारी औषधियां सिद्ध हुई हैं।

प्रसिद्ध वैद्य पं० मंगुलाल जी का **रजःप्रवर्तक क्वाथ** अतीव गुणकारी सिद्ध हुआ है। इसके द्रव्य हैं—चौलाई की जड़, गुलाब के पत्ते, तोलियां गेरू ५–५ ग्राम कपास की जड़ १५ ग्राम और पुराना गुड़ २० ग्राम यह एक खुराक है। ६०० ग्राम जल में मिलाकर काढ़ा बनालें। चौथाई रहने पर छानकर पी लें। मासिक धर्म

वाले तीन दिनों तक इसका प्रयोग करें। **साधारण दवा होते हुए भी दिव्य गुण दर्शाती है, यह निष्कर्ष रसतन्त्रसार और सिद्ध योग संग्रह कृष्णगोपाल आयुर्वेद भवन धर्मार्थ ट्रस्ट कालेड़ा** का भी है।

होम्योपैथिक चिकित्सा

१. **पल्सेटिला–३०**—इस रोग से ग्रस्त शान्त स्वभाव की औरतों की यह बढ़िया दवा है। थोड़े रजस्राव के साथ यदि कमर पेड़ू और पीठ में काटने या तोड़ने की तरह दर्द हो तो यह किशोरियों की तकलीफें दूर करती है।

जेन्थक्जाइलम ३×—और वाइवर्नम ओप्युयुलस ३× इस रोग की बहुत अच्छी दवायें हैं। पेड़ू से पुट्ठों तक जब तेज दर्द हो तो **जेन्थ** और ऋतुकाल में दर्द यकायक पैदा होकर आठ-दस घण्टों तक रहता हो तो **वाइवर्नम** अच्छी दवा है।

यदि दर्द के लक्षणों के साथ सीने में भार, सांस में तकलीफ, सिर में दर्द-चक्कर और मिचली हो तो **काक्यूलस–६** लाभ करती है।

रजोरोध

मासिक धर्म शुरू होने के बाद कई बार बन्द हो जाया करता है। शोक, क्रोध, भय आदि मानसिक कारणों से और ऋतु के समय ठण्डी चीजों के अधिक सेवन से या खून की कमी, श्रम न करना आदि कारणों से मासिक धर्म होना बन्द हो जाता है। ५० वर्ष के आस पास स्वाभाविक रूप से भी मासिक स्राव होना बन्द हो जाता है। यह बीमारी नहीं होती। इसे **रजोनिवृत्ति** काल कहते हैं। किन्तु यदि कम उम्र में ऐसा हो तो इसे बीमारी समझना चाहिए।

इस बीमारी में सुपाच्य और पौष्टिक भोजन, फल, दूध, हरी सब्जियाँ, सूखे फल, आदि का सेवन प्रचुर मात्रा में करना चाहिए। गरिष्ठ पदार्थ, तले हुए पदार्थ मिर्च-मसाले, बेसन, उर्द की दाल आदि का प्रयोग यथासम्भव कम करने चाहिए। आयुर्वेदिक औषधियों में **चन्द्रप्रभावटी १-१ गोली** सुबह-रात दूध के साथ और भोजन के बाद **लोहासव और कुमार्यासव** १०–१० ग्राम समान भाग पानी मिलाकर सेवन करने से प्रायः लाभ हो जाता है। **बृहत योगराज गुग्गुलु** १–१ गोली सुबह-शाम दूध के साथ और उपर्युक्त आसव का सेवन भी बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। **बृहत स्वर्ण मालिनी वसन्त** इस रोग की बहुत बढ़िया दवा है। हमने अनेक बार उपर्युक्त दवायें एक माह तक और इसके बाद इस दवा की १–१ गोली १५ दिन तक शहद के साथ सेवन कराई है और सदैव अच्छा परिणाम निकला

है। **ताप्यादि लौह** २–२ रत्ती शहद के साथ दिन में तीन वार सेवन करने से वहुत लाभ होता है।

होम्योपैथिक दवाओं में **पल्सेटिला ३** और **फेरम ६** का पर्याय क्रम से सेवन करने पर प्रायः लाभ हो जाता है। खून की कमी के कारण रजोरोध होने पर **कैल्के कार्ब ३०** या **नेट्रम्यूर** का उपयोग करना चाहिए।

अनियमित रज

सामान्यतः मासिक धर्म नियमित समय (प्रायः २८ दिन) पर होता है और ३ से ५ दिन तक रहता है। कई वार अनियमित रूप से होने लगता है। कभी डेढ़ माह वाद तो कभी दो माह वाद और कभी १५ दिन वाद। इसे ही अनियमित रज कहते हैं। आयुर्वेदिक दवाओं के सेवन से यह रोग पूरी तरह से ठीक हो जाता है। **ताप्यादि लौह** २–२ रत्ती सुवह शाम शहद के साथ और अशोकारिष्ट और पत्रंगासव १०–१० ग्राम समान भाग जल मिलाकर भोजन के वाद सेवन करना चाहिए।

होम्योपैथिक दवाओं में **फोनायन–३०** की ८–१० छोटी गोलियाँ दिन में चार वार सेवन करने से लाभ हो जाता है। **सिनसियो** दवा की दो वूँद दिन में तीन वार लेने से वहुत सी रोगिणी महिलाएँ ठीक हुई है। **पल्सेटिला–६** और **चायना–६** पर्यायक्रम से खाने से मासिक धर्म नियमित होने लगता है।

प्राकृतिक जीवन की ओर

रोग होने पर इलाज कराकर स्वस्थ होने की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है—वीमारी को ही दूर रखा जाये। यहाँ इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि मनुष्य अपने अधिकांश रोगों को खुद निमंत्रण देता है—कुछ अज्ञान के कारण और कुछ रहन-सहन व आहार-विहार सम्वन्धी गलत आदतों के कारण।

नारी देश की मातृशक्ति होती है। सीता, मैत्रेयी, गार्गी, विदुला, झांसी की रानी, जीजावाई आदि के आदर्श हमारे सामने हैं। जिस देश की नारी स्वस्थ और सदाचारी होंगी, उस देश का वालक भी स्वस्थ और सदाचारी होगा। इसके लिए आवश्यक है कि उस देश की माताएँ-वहिनें आयुर्वेद सम्मत जीवन-पद्धति अपनाएँ।

□

१२.

प्रदर से परेशान क्यों

प्रदर महिलाओं के स्वास्थ्य और सौन्दर्य का सबसे बड़ा दुश्मन है। वे महिलाएं सचमुच बड़ी भाग्यशालिनी हैं जो इस रोग के चंगुल से बची हुई हैं। इस भयंकर रोग से जकड़ी महिला शारीरिक दृष्टि से तो कमजोर हो ही जाती है, मानसिक रूप से भी अत्यन्त दीन-हीन हो जाती है। चेहरे का सारा रूप-सौन्दर्य समाप्त हो जाता है और इस प्रकार सम्पूर्ण घर–परिवार में खुशियों के फूल बिखेरने वाली नारी अपने लिए और अपने परिवार के लिए एक बोझ बन जाती है।

आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **भावप्रकाश** में 'स्त्री रोगाधिकार' अध्याय ८ में लिखा है—

आमं सपिच्छा प्रतिमं सपाण्डु
पुलाकतोय प्रतिमं कफस्तु।४।

अर्थात् प्रदर में कच्चे रस वाला, सेमल के गोंद जैसा चिकना चिपचिपा, तनिक पीलापन लिए सफेद रंग का और चावल के धोवन जैसा दूषित रज योनि मार्ग से निकलता है। अनेक रोगणियों में नीला, दूधिया और कुछ कालिमा लिए हुए दूषित रज स्रवित होता है।

वास्तव में प्रदर एक विश्व व्यापी रोग है जो धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित अविवाहित–विवाहित, वृद्धा-तरुणी आदि सभी में समान रूप से पाया जाता है। **किन्तु मेरे लम्बे चिकित्सा-काल** की ८० प्रतिशत प्रदर-रोग की महिलाएं ऐसी थीं जो स्थानीय सफाई, परिश्रम और उचित आहार-विहार का सेवन नहीं करती थीं। केवल २० प्रतिशत प्रतिशत महिलाओं में विशेष शारीरिक दोष था।

प्रदर रोग के कारण

प्रजनन-अंगों की उचित सफाई न रखने से कई बार यह रोग हो जाता है। मासिक–धर्म के समय भी उचित स्वच्छता के अभाव में रोग के कीटाणु इस रोग की उत्पत्ति करा देते हैं।

उत्तेजक (तेज मिर्च-मसाले, खट्टे पदार्थ एवं अधिक गर्म पदार्थ) पदार्थों के सेवन से भी यह रोग होते देखा गया है। इसी प्रकार अश्लील और उत्तेजक वातावरण-पुस्तकें, चित्र, सिनेमा, टी वी. पोस्टर आदि भी इस रोग को जन्म देते हैं। **जिस प्रकार अश्लील वातावरण और मन के गन्दे विचार पुरुषों में स्वप्न दोष और प्रमेह के कारण बनते हैं, उसी प्रकार इस प्रकार का वातावरण और मन के गन्दे विचार स्त्रियों में प्रदर रोग को जन**

आयुर्वेद में **विरुद्ध अशन** को प्रदर का सबसे बड़ा कारण माना है। विरुद्ध
न से तात्पर्य ऐसे पदार्थों के एक साथ सेवन करने से है जो गुण और प्रकृति में
-दूसरे के विपरीत हों। उदाहरण के लिए दूध-मछली, दूध-खिचड़ी, घी-दही, शहद-
(सम मात्रा में) आदि। इसी प्रकार अधिक गर्म और अधिक शीतल प्रकृति के
दार्थों को एक साथ खाने से भी यह रोग पैदा हो जाता है। अनुकूल न होने पर भी
भ के वशीभूत होकर हानिकारक पदार्थों का सेवन, उपवास, निठल्ले बैठे रहना,
र्भपात कराना, शारीरिक श्रम का अभाव और मंदाग्नि में पौष्टिक भोजन का सेवन,
कमजोरी में अधिक श्रम आदि कारणों से प्रदर रोग होता है। गीले वस्त्रों को
धारण करने से प्रदर रोग होते देखा गया है। गर्भाशय के कैंसर, शोथ आदि के कारण
भी प्रदर होता है।

चिकित्सा

किसी भी रोग की सर्वोत्तम चिकित्सा यह है कि उन कारणों का त्याग कर
दें जिन के कारण रोग पैदा होता है। अतः सबसे पहले यह आवश्यक है कि उचित
आहार-विहार अपनाया जाये।

चुनौती स्वीकार करें

यदि आप प्रदर रोग से पीड़ित हैं तो निराश होने की आवश्यकता नहीं है।
विश्वास कीजिए निराशा से रोग बढ़ेगा और इसके अनेक अन्य शारीरिक और मान-
सिक दुष्परिणाम भी होंगे। संसार का हर रोग ठीक हो सकता है। **जैसा सोचोगे
वैसे बनोगे** शास्त्र का यह कथन शत-प्रतिशत सही है। **यह मन की चमत्कारिणी
शक्ति है, इसीलिए मन को जहाँ पतन का द्वार कहा गया है वहां कल्पवृक्ष
की संज्ञा से भी विभूषित किया गया है।**

आहार चिकित्सा

सेवनीय—हल्का, सुपाच्य और पौष्टिक भोजन करने से इस रोग को दूर
करने में मदद मिलती है। पोषक, शोधक और कब्ज निवारक खान-पान को अपने
भोजन में स्थान देना चाहिए। हरे शाक और सब्जियाँ, अमरूद, पपीता, मौसमी
फल, मुनक्का, किशमिश, अंजीर आदि मेवे, मूंग की छिलकों वाली दाल, चावल
। मांड, मखानों की खीर, केला और केले की खीर, चाशनी में पके हुए गोंद के
ल्ले आदि पदार्थों के निरन्तर उपयोग से कभी-कभी रोग एकदम अच्छा हो जात
। नियमित और समय पर भोजन करना चाहिए।

वर्जित पदार्थ—अधिक गर्म, खट्टे, तेज मिर्च-मसालों से युक्त एवं गरि
और तले हुए पदार्थों का सेवन एकदम त्याज्य है। कब्ज कारक भोजन प्रदर रोग
बढ़ा देता है। तामसी गुण वाले पदार्थों का सेवन भी नहीं करना चाहिए। अ
बैंगन, अरवी, बेसन, चना, अण्डा, शराब, चाय, काफी आदि का सेवन रोग
बढ़ाने वाला है।

११.

मासिक धर्म—चिन्ता किस बात की

मासिक धर्म किशोरियों की मुख्य समस्या है। यह दुर्भाग्य का विषय है कि हमारे देश में नारी स्वास्थ्य के विषय में बहुत उदासीन रही है। स्वास्थ्य सम्बन्धी उचित शिक्षा के अभाव में महिलाओं की प्रतिमाह होने वाली सहज-स्वभाविक क्रिया—मासिक धर्म भी एक समस्या बन गई है। अज्ञान, लज्जा, माता-पिता द्वारा योग्य मार्ग दर्शन का अभाव आदि कारणों ने अनजाने ही किशोरियों के सामने अनेक प्रकार की समस्यायें खड़ी करदी हैं। इन सबका दुष्परिणाम यह होता है कि किशोरियों का स्वास्थ्य न केवल दिनों दिन बिगड़ता चला जाता है, अपितु मानसिक असन्तुलन की समस्या भी धीरे-धीरे उनको जकड़ लेती है।

एक सहज क्रिया—'ऋतौभवम् इत्यार्तवम्' अर्थात् प्रत्येक मास के अन्त में स्त्री जननेन्द्रिय से जो स्राव होता है, उसे मासिक धर्म कहते हैं। ऋतु स्राव का सीधा सम्बन्ध ऋतु या प्रकृति के साथ हैं। यह प्रत्येक महिला के स्त्रीत्व या मातृत्व का प्रतीक है। यह एक ऐसा प्राकृतिक चक्र है जो लगभग एक माह में (२८ दिन) पूरा होता है। इस चक्र के पूरा होने के बाद प्रत्येक स्त्री का ऋतुमती होना उसके स्वस्थ होने का प्रतीक है। सामान्यतः एक स्वस्थ महिला के ५ तोले से लेकर २० तोले तक स्राव होता है और इसका रंग बीरबहूटी या लाक्षा (लाख) रस के समान होता है। देश, काल, परिस्थिति आदि के अनुसार इसमें भिन्नता भी हो सकती है। सामान्यतः इसकी अवधि ३ दिन से ५ दिन तक होती है।

प्रथम रजोदर्शन—प्रथम रजोदर्शन प्रत्येक किशोरी के लिए एक नया अनुभव होता है। अज्ञान के कारण कई किशोरियाँ इस नये अनुभव का सामना नहीं कर पातीं। घबराहट या लज्जा के कारण वे न तो घर में इसकी चर्चा करती हैं और न उचित दिन चर्या का पालन ही कर पाती हैं। फलस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। सामान्यतः १२-१३ वर्ष से लेकर १५-१६ वर्ष की आयु प्रथम रजोदर्शन का काल माना गया है। वातावरण-जलवायु और विचार इस आयु को प्रभावित करते हैं। गर्म देशों में यह काल कम आयु में शुरू हो जाता है, जबकि ठण्डे देशों में १६ वर्ष से भी अधिक आयु तक कई बार मासिक धर्म का

आयुर्वेद में **विरुद्ध अशन** को प्रदर का सबसे बड़ा कारण माना है। विरुद्ध अशन से तात्पर्य ऐसे पदार्थों के एक साथ सेवन करने से है जो गुण और प्रकृति में एक-दूसरे के विपरीत हों। उदाहरण के लिए दूध-मछली, दूध-खिचड़ी, घी-दही, शहद-घी (सम मात्रा में) आदि। इसी प्रकार अधिक गर्म और अधिक शीतल प्रकृति के पदार्थों को एक साथ खाने से भी यह रोग पैदा हो जाता है। अनुकूल न होने पर भी जीभ के वशीभूत होकर हानिकारक पदार्थों का सेवन, उपवास, निठल्ले बैठे रहना, गर्भपात कराना, शारीरिक श्रम का अभाव और मदाग्नि में पौष्टिक भोजन का सेवन, कमजोरी में अधिक श्रम आदि कारणों से प्रदर रोग होता है। गीले वस्त्रों को धारण करने से प्रदर रोग होते देखा गया है। गर्भाशय के कैंसर, शोथ आदि के कारण भी प्रदर होता है।

चिकित्सा

किसी भी रोग की सर्वोत्तम चिकित्सा यह है कि उन कारणों का त्याग कर दें जिन के कारण रोग पैदा होता है। अतः सबसे पहले यह आवश्यक है कि उचित आहार-विहार अपनाया जाये।

चुनौती स्वीकार करें

यदि आप प्रदर रोग से पीड़ित हैं तो निराश होने की आवश्यकता नहीं है। विश्वास कीजिए निराशा से रोग बढ़ेगा और इसके अनेक अन्य शारीरिक और मानसिक दुष्परिणाम भी होंगे। संसार का हर रोग ठीक हो सकता है। **जैसा सोचोगे वैसे बनोगे** शास्त्र का यह कथन शत-प्रतिशत सही है। **यह मन की चमत्कारिणी शक्ति है, इसीलिए मन को जहाँ पतन का द्वार कहा गया है वहां कल्पवृक्ष की संज्ञा से भी विभूषित किया गया है।**

आहार चिकित्सा

सेवनीय—हल्का, सुपाच्य और पौष्टिक भोजन करने से इस रोग को दूर करने में मदद मिलती है। पोषक, शोधक और कब्ज निवारक खान-पान को अपने भोजन में स्थान देना चाहिए। हरे शाक और सब्जियाँ, अमरूद, पपीता, मौसमी फल, मुनक्का, किशमिश, अंजीर आदि मेवे, मूँग की छिलकों वाली दाल, चावल का मांड, मखानों की खीर, केला और केले की खीर, चाशनी में पके हुए गोंद के फूले आदि पदार्थों के निरन्तर उपयोग से कभी-कभी रोग एकदम अच्छा हो जाता है। नियमित और समय पर भोजन करना चाहिए।

वर्जित पदार्थ—अधिक गर्म, खट्टे, तेज मिर्च-मसालों से युक्त एवं गरिष्ठ और तले हुए पदार्थों का सेवन एकदम त्याज्य है। कब्ज कारक भोजन प्रदर रोग को बढ़ा देता है। तामसी गुण वाले पदार्थों का सेवन भी नहीं करना चाहिए। आलू, बैंगन, अरबी, बेसन, चना, अण्डा, शराब, चाय, काफी आदि का सेवन रोग को बढ़ाने वाला है।

११.

मासिक धर्म—चिन्ता किस बात की

मासिक धर्म किशोरियों की मुख्य समस्या है। यह दुर्भाग्य का विषय है कि हमारे देश में नारी स्वास्थ्य के विषय में बहुत उदासीन रही है। स्वास्थ्य सम्बन्धी उचित शिक्षा के अभाव में महिलाओं की प्रतिमाह होने वाली सहज-स्वभाविक क्रिया—मासिक धर्म भी एक समस्या बन गई है। अज्ञान, लज्जा, माता-पिता द्वारा योग्य मार्ग दर्शन का अभाव आदि कारणों ने अनजाने ही किशोरियों के सामने अनेक प्रकार की समस्यायें खड़ी करदी हैं। इन सबका दुष्परिणाम यह होता है कि किशोरियों का स्वास्थ्य न केवल दिनों दिन बिगड़ता चला जाता है, अपितु मानसिक असन्तुलन की समस्या भी धीरे-धीरे उनको जकड़ लेती है।

एक सहज क्रिया—'ऋतौभवम् इत्यार्तवम्' अर्थात् प्रत्येक मास के अन्त में स्त्री जननेन्द्रिय से जो स्राव होता है, उसे मासिक धर्म कहते हैं। ऋतु स्राव का सीधा सम्बन्ध ऋतु या प्रकृति के साथ हैं। यह प्रत्येक महिला के स्त्रीत्व या मातृत्व का प्रतीक है। यह एक ऐसा प्राकृतिक चक्र है जो लगभग एक माह में (२८ दिन) पूरा होता है। इस चक्र के पूरा होने के बाद प्रत्येक स्त्री का ऋतुमती होना उसके स्वस्थ होने का प्रतीक है। सामान्यतः एक स्वस्थ महिला के ५ तोले से लेकर २० तोले तक स्राव होता है और इसका रंग वीरबहूटी या लाक्षा (लाख) रस के समान होता है। देश, काल, परिस्थिति आदि के अनुसार इसमें भिन्नता भी हो सकती है। सामान्यतः इसकी अवधि ३ दिन से ५ दिन तक होती है।

प्रथम रजोदर्शन—प्रथम रजोदर्शन प्रत्येक किशोरी के लिए एक नया अनुभव होता है। अज्ञान के कारण कई किशोरियां इस नये अनुभव का सामना नहीं कर पातीं। घबराहट या लज्जा के कारण वे न तो घर में इसकी चर्चा करती हैं और न उचित दिन चर्या का पालन ही कर पाती हैं। फलस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। सामान्यतः १२-१३ वर्ष से लेकर १५-१६ वर्ष की आयु प्रथम रजोदर्शन का काल माना गया है। वातावरण-जलवायु और विचार इस आयु को प्रभावित करते हैं। गर्म देशों में यह काल कम आयु में शुरू हो जाता है, जबकि ठण्डे देशों में १६ वर्ष से भी अधिक आयु तक कई बार मासिक धर्म का

प्रारम्भ नहीं होता। इसी प्रकार सिनेमा, अश्लील साहित्य, गर्म पदार्थों, मिर्च मसालों का अधिक सेवन भी इस समय को जल्दी खींच लाते हैं।

सावधानियाँ—

नियमित मासिक धर्म स्त्री के स्वस्थ होने का प्रमाण है और अनियमित मासिक धर्म अनेक प्रकार की शारीरिक-मानसिक विकृतियों और पेचीदीगियों को जन्म देता है। अतः आवश्यक है कि किशोरियाँ कुछ बातों पर विशेष रूप से ध्यान दें।

मानसिक प्रसन्नता—मासिक धर्म मुसीबतों का पहाड़ नहीं है, जो चेहरे को बुझा दे। यों तो प्रत्येक व्यक्ति के लिए उत्साह और प्रसन्नता का महत्व है, किन्तु इन दिनों किशोरियों को प्रकृति के दिये इस सहज स्त्रीत्व के वरदान का खुले मन से स्वागत करना चाहिए। प्रसन्नता मासिक चक्र को नियमित रखने का सबसे श्रेष्ठ उपाय है और **प्रसन्नता के लिए एक कौड़ी भी चुकाने की आवश्यकता नहीं होती।** किन्तु मानसिक प्रसन्नता का मतलब अट्टहास करने या खिलखिलाने से नहीं है। **विवाहितों को निर्देश**—आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में लिखा है—**ऋतौ प्रथम दिवसात प्रभृति ब्रह्मचारिणी दिवास्वप्नो जनाश्रुपात स्नाना नुलेपनाभ्यंग नखच्छेदन प्रधावन हसन कथनाति शब्द श्रवणाव-लेखनानि लायासान् परिहरेत् :** शारीर स्थान २–२६

अर्थात् ऋतुकाल में महिलाओं को प्रथम दिन से ही ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए और दिन में सोना, अंजन, रोना, स्नान, चन्दन अनुलेपन, तेल मालिश, नाखून काटना, दौड़ना, हँसना, जोर से बोलना, जोर की ध्वनि सुनना, कंघी करना, वायु सेवन करना आदि कार्यों को त्याग देना चाहिए।

हमारे आयुर्वेद मनीषियों ने अपने अनुभव से ऐसा न करने पर इसके दुष्परि-णामों पर भी प्रकाश डाला है। इसी श्लोक में आगे कहा है—

ऋतुकाल में (ऋतु काल के बाद गर्भ धारण होने पर) दिन में सोने पर बच्चा आलसी, अंजन करने पर कमजोर दृष्टि वाला, रोने से विकृत दृष्टि वाला, तेल मर्दन से कुष्ठ रोगी, नख काटने से विकृत नखा, दौड़ने से चचल, हँसने से दांत, ओठ, जीभ और तालु पर प्रभाव, अधिक बोलने से वाचाल, तेज ध्वनि सुनने से बहरा आदि विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं। इसके साथ ही अनुचित आहार-विहार का सेवन करने से मासिक-धर्म सम्बन्धी अनेक व्याधियाँ हो जाती हैं।

किन्तु सवेरे जगने पर अधिक स्राव हो, जलन हो और पीठ में कमजोरी हो तो ग्रैफाइटिस—३० या २०० बहुत फायदा करती है।

पल्सेटिला—६—प्रदर रोग की चिकित्सा इसी दवा से शुरू करनी चाहिए। यह प्रदर रोग की बढ़िया दवा है। जब सफेद रंग का गाढ़ा स्राव हो और ऋतु के बाद स्राव बढ़ जाये, कभी दर्द हो और कभी न भी हो, तो पल्सेटिला रोगी को कभी निराश नहीं करती।

सिपिया—६, २००—जब प्रसव वेदना की तरह दर्द हो और स्राव का रंग थोड़ा पीला या हरापन लिये हो और बदबूदार हो तो सिपिया इस रोग की प्रधान दवा समझी जायेगी। सिपिया की रोगिणी दुबली-पतली और वातप्रकृति की होती है।

बौरेक्स—६—स्राव से जब ऐसा प्रतीत हो कि जंघा क्षेत्र में गर्म पानी गिर रहा है, प्रदर के साथ वन्ध्यत्व हो, दो ऋतुओं के बीच में प्रदर रोग हो तो यह दवा लाभ करती है।

बायोकैमिक दवायें

सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ आस्ट्रम के अनुसार (देखिए Ostrum's Leucorrhoea) कैल्के फास (अधिक सन्तान वाली रोगिणी को लाभ करता है। पीले रंग का पतला स्राव) और पीव भरे स्राव की प्रधानता और अधिक कमजोरी रहने पर कैली फास (भोजन से पहले गर्म पानी से सेवन करना) इस रोग की अच्छी दवायें हैं।

साइलीशिया ३०—पीला स्राव अधिक मात्रा में आये और मासिक धर्म के स्थान पर प्रदर का स्राव हो तो यह दवा लाभ करती है।

काली म्यूर ६×—जीभ और प्रदर का रंग दूध जैसा सफेद हो और पेट खराब रहे तो इस दवा के सेवन से रोग ठीक हो जाता है।

प्राकृतिक चिकित्सा

रोग का कारण विजातीय द्रव्य—प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य के गलत खान-पान और रहन-सहन के कारण शरीर में गन्दगी या विजातीय द्रव्य इकट्ठे हो जाते हैं। ये गन्दगी शरीर के लिए अत्यन्त हानिकारक होती है और शरीर की प्राकृतिक शक्ति इस गन्दगी को तुरन्त शरीर से निकाल देना चाहती है। जुकाम, बुखार, दस्त लगना, प्रदर आदि रोग इस बात के सूचक हैं कि शरीर में अधिक मल इकट्ठा हो गया है अतः इसे बाहर निकाल देने में ही शरीर का कल्याण है।

रोग का कारण अम्ल की वृद्धि—इसके अतिरिक्त मनुष्य के रक्त में अम्ल और क्षार का एक निश्चित अनुपात होता है। आजकल मनुष्य जो भोजन करता है उससे इसके रक्त में निरन्तर अम्लता की वृद्धि होती

अनेक प्रकार के रोग हो जाते हैं, अतः आवश्यकता है कि अम्ल पदार्थों का कम और क्षारीय पदार्थों का अधिक सेवन किया जाये।

प्रकृति की सहायता करें—प्रदर आपके यौन रोगों का जुकाम है। प्रदर का अर्थ है कि रोग पैदा करने वाले विजातीय विष आपके पेड़ू में एकत्रित हो गये हैं। और प्रकृति इसे बाहर निकालना चाहती है। अतः आवश्यकता है कि आप प्रकृति के इस काम में उसकी मदद करें। इसके लिए निम्नलिखित उपाय उपयोगी हैं—

(१) उपवास—नये रोग में एक दिन का और पुराने रोग में तीन दिन का उपवास करें। उपवास के दिनों में केवल फलों के रस, नीबू का पानी या सब्जियों का सादा सूप आवश्यकतानुसार सेवन करें। पानी खूब पियें। दिन में एक बार एनिमा अवश्य लगायें।

तीन दिन की इस छोटी सी अवधि के बाद से ही आप के मन से निराशा के काले बादल छँटने लगेंगे और आपका खोया आत्मविश्वास लौटने लगेगा।

(2) चिकित्सा का दूसरा चरण—एनिमा का प्रयोग सप्ताह में दो बार अवश्य करें। एनिमा भोजन के ४–५ घण्टे बाद ही लगाना चाहिए। प्रदर रोग में शाम का समय ठीक रहता है।

मेहन स्नान—प्रदर को दूर करने में अत्यन्त सफल उपाय सिद्ध हुआ है। भगोष्ठों (अन्य अंगों को नहीं) को शीतलता पहुंचना व स्नायविक शक्ति बढ़ाना इस स्नान का उद्देश्य है।

कटि स्नान—प्रातःकाल कटि-स्नान करने से प्रदर रोग में चमत्कारी लाभ मिलता है। कटि-स्नान ५ मिनट से प्रारम्भ कर १०–१२ मिनट तक आवश्यकतानुसार बढ़ायें।

मिट्टी का प्रयोग—रात्रि को भोजन के ३–४ घण्टे बाद पेड़ू नाभि से नीचे वाले भाग पर गीली मिट्टी का प्रयोग करें।

भोजन—भोजन में अम्लीय प्रभाव वाले पदार्थों का सेवन बन्द या एकदम कम कर देना चाहिए। खटाई, मिठाई, गर्म मसाले, चीनी, तले हुए पदार्थ, मांस, मदिरा, चाय, कॉफी आदि पदार्थों का सेवन करने से रक्त में अम्लता बढ़ती है जिसके कारण प्रदर रोग प्रकुपित होता है।

इसके विपरीत हरे शाक-सब्जियां, मौसमी फल, मुनक्का, किशमिश, अंजीर आदि पदार्थों से रक्त में अम्ल-क्षार का सन्तुलन स्थापित हो जाता है और रोग के आधारभूत कारण ही नष्ट होने लगते हैं।

इस प्रकार अपनी आयु रोग की स्थिति, प्रकृति आदि बातों को ध्यान में रख कर सम्यक आहार-विहार के साथ यदि औषधि सेवन की जाये तो रोग से जर्जर पीली-मुरझायी काया भी कंचन-काया में बदल सकती है।

रक्त प्रदर

मासिक धर्म के समय सामान्य से अधिक रक्त निकलने को अतिरज कहते हैं। सामान्यतः मासिक धर्म की अवधि ३ से ५ दिन होती है, किन्तु यदि इससे अधिक अवधि तक स्राव जारी रहे तो रोग हुआ समझना चाहिए। चार हफ्तों में एक बार मासिक स्राव होता है, यदि एक से अधिक बार स्राव होने लगे तब भी यह बीमारी का लक्षण है।

रजोनिवृत्ति के समय (५० वर्ष के आस-पास) भी कई महिलाओं के रक्त-स्राव की बीमारी शुरू हो जाती है। यह बीमारी कई बार अपने आप और कई बार उचित चिकित्सा से ठीक हो जाती है।

कारण—जरायु-ग्रीवा में रक्त संचय, अश्लील विचार-चिन्तन-मनन, शोक चिन्ता, बार-बार गर्भ धारण एवं गर्भपात, अधिक गर्म और उत्तेजक पदार्थों का सेवन, मद्य, मांस, अधिक कॉफी, चाय, अधिक गरिष्ठ भोजन करना आदि कारणों से अतिरज रोग होता है।

जरायु से रक्तस्राव

कई बार जरायु में अर्बुद, चोट, प्रसव के बाद फूल का न निकलना आदि कारणों से जरायु से रक्तस्राव होता है। यह खून गहरा लाल या काला हो सकता हैं।

चिकित्सा

१. अशोकादि कषाय—अशोक की छाल १० तोला, आम की छाल, जामुन की छाल और झड़बेरी की छाल ५–५ तोला लेकर जौकुट चूर्ण करें।

मात्रा—२–२ तोला का क्वाथ कर १–१ तोला गौ घृत और २–२ माशे मिश्री मिलाकर प्रातः सायं दो बार दें।

यह रक्त प्रदर की अतिश्रेष्ठ दवा है।

२. प्रदरान्तक योग—एरण्ड की लकड़ी को जलाकर काली राख बनावें। लकड़ी को जलाकर धूम रहित होने पर बर्तन का मुँह ढक दें। शीतल होने पर राख बना लें। इस राख के बराबर आँवले का चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह खरल में घुटाई करें। इस चूर्ण में से ६–६ माशे ठण्डे जल के साथ प्रातः सायं सेवन करने से रक्त प्रदर दूर होते हैं। यह अत्यन्त सस्ता और उपयोगी योग है।

३. रक्त मलकी रसायन—सोनागेरू को आँवले के रस से [illegible] दिन तक रोजाना २–३ घण्टे खरल करें। लोहे का स्पर्श न होने दें। आधा से [illegible] दिन में दो बार दूध के साथ लेने से रक्त प्रदर, रक्त स्राव आदि ठीक हो जाते हैं।

४. सोना गेरू १० ग्राम और फिटकरी का फूला ४० ग्राम मिलालें। आधा से एक ग्राम तक शक्कर मिले बकरी के दूध के साथ सेवन करने से रोगी रोग मुक्त हो जाता है।

५. गोघृत में भिलावे के तेल की ४ बूंदें मिलाकर खिला देने से रक्त प्रदर और रक्त स्राव ठीक हो जाता है। कई बार इस दवा का चमत्कारी असर होता देखा गया है।

रक्त प्रदर की शास्त्रीय चिकित्सा

हमारे अपने अनुभव के आधार पर समस्त प्रकार के रक्त प्रदरों पर निम्नांकित योग अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

प्रातः काल—दार्व्यादि क्वाथ के साथ चन्द्रप्रभावटी १ गोली, कामदुधा रस १ रत्ती और गोदन्ती २ रत्ती सेवन करें।

शाम—यही दवा दार्व्यादि क्वाथ के स्थान पर सुन्दरी संजीवनी के साथ और रात को यही दवा दूध के साथ सेवन करने से रोगिणी महिला का खोया स्वास्थ्य लौट आता है। भोजन के बाद दोनों समय अशोकारिष्ट और पत्रंगासव ५-५ ग्राम समान जल मिलाकर पीना चाहिए। सभी प्रकार के प्रदर रोगों की यह अत्यन्त चमत्कारी दवा है। चरक कम्पनी की पोजेक्स दवा की २-२ गोली दिन में २-३ बार चमत्कारी असर दिखाती हैं। रक्त प्रदर तुरन्त ठीक करती हैं।

होम्योपैथिक चिकित्सा

विश्वविख्यात चिकित्सक डॉ० वाफोड के अनुसार हाइड्रैस्टिनाइन १× अतिरज स्राव के समय और यही दवा ३× रजोनिवृत्ति के समय खिलाने से बहुत लाभ होता है।

हेमामेलिस और चायना पर्यायक्रम से सेवन करने से कई बार रोग कुछ दिनों में ही ठीक हो जाता है।

होम्योपैथिक तरीके से बनाई गई अशोक दवा भी इस रोग में विशेष उपयोगी सिद्ध हुई है।

बायोकैमिक चिकित्सा

फेरम फास ६×, काली फास ६× दवायें पर्यायक्रम से लेने से अतिरज स्राव ठीक हो जाता है।

सामान्यतः इन दवाओं का सेवन करने से प्रदर रोग एक दम अच्छा हो जाता है। पुराने और विगड़े हुए मामलों में कुशल वैद्य से परामर्श करना चाहिए।

□

1

सर्व रोगहारी संजीवनी—प्रार्थना शक्ति

डाक्टर हैरान थे। कैंसर और वह भी तीसरी अवस्था तक पहुँचा—घातक कैंसर। रायल इन्फरमेरी अस्पताल के विश्व प्रसिद्ध डाक्टर आर्चीवाल्ड; डा. जीन और सर्जन डेविड मिल ने श्रीमती मेरी फगान को सलाह दी कि कुछ दिनों की मेहमान हो, गिरिजाघर में जाकर प्रार्थना किया करो। लगभग एक वर्ष बाद वही महिला उन्हीं डाक्टरों के सामने खड़ी मुस्करा रही थी मानो कह रही हो, डाक्टर! "कुछ दिनों की मेहमान हो", ऐसा कहने का अधिकार तो केवल ईश्वर को होना चाहिये। 'द मिरेकल' में डेसहिकी और गुसस्मिथ सरीखे ख्याति प्राप्त चिकित्सकों ने इस तरह की अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है।

डॉ. राबर्ट एन्थोनी ने अपनी पुस्तक 'द अल्टीमेट सीक्रेट्स ऑफ टोटल सेल्फ कान्फीडेन्स' में कहा है कि मनुष्य के अन्तराल में अद्भुत और अपरमित शक्तियाँ प्रसुप्तावस्था में पड़ी हुई हैं। प्रार्थना के द्वारा जब ये जग जाती हैं तो आत्मिक ऊर्जा के द्वार खुल जाते हैं। यह ऊर्जा आरोग्य, उत्साह और आनन्द के प्रकाश से व्यक्ति के जीवन को जगमगा देती है। आधुनिक युग के महान् मनीषी पं. श्री राम शर्मा आचार्य ने लिखा है कि प्रार्थना की क्षमता अभूतपूर्व है। यह अन्तरात्मा की वह सच्ची पुकार है परमात्मा को अभीष्ट प्रयोजन की पूर्ति के लिए अपने वरदान बरसाने के लिए विवश कर देती है। प्रार्थना आत्मा की खुराक है जो मनुष्य को ईश्वर से जोड़कर उसमें शारीरिक दृढ़ता, मनोगत उत्साह और नैतिक बल का संचार करती है। टेनीसन लिखते हैं कि संसार में प्रार्थना ही एक ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा कठिन से कठिन संकटों को टाला जा सकता है। प्रार्थना की दिव्य शक्ति राणाजी द्वारा भेजे गये जहर को मीरा के हाथ में पहुँचते ही अमृत बना देती है। ईशकृपा से पंगु गिरि लांघने और अन्धा सब कुछ देखने की क्रिया बड़ी सरलता से सम्पन्न कर लेता है। मनोविज्ञानी पील के अनुसार प्रार्थना मानव चेतना से निसृत होने वाली जीवन्त ऊर्जा है। पिछले दिनों

'साइंस डाइजेस्ट' में 'वूमन हू सेड नो टू कैंसर' नामक शीर्षक से प्रकाशित लेख में श्रीमती एलेन थायर की असाध्य बीमारी का वर्णन है, जिसे डॉ. विलियम एनोलेन जैसे विश्व प्रसिद्ध डॉक्टर ने ईश्वर की शरण में जाने की सलाह देकर छोड़ दिया था। वह सचमुच ईश्वर की शरण में गई और जब उसकी पुकार सुन ली गई तो निस्तेज पीले पड़े चेहरे पर गुलाब की सुर्खी और बुझे नेत्रों में उत्साह का प्रकाश झिलमिला रहा था। यह आत्मशक्ति का ही चमत्कार था जिस पर विश्वास करने की इच्छा शायद डॉ. विलियम को भी नहीं हो रही थी। इसीलिए वेदवाणी में प्रार्थना के स्वर गूंजते हैं—

ॐम तच्चक्षुर्देवहितं पुरच्छातुक्रमुच्चरत्।
पश्यम शरदः शतं जीवेमशरः शतं श्रृणुयामशरदः शतं ॥
प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः श्याम।
शरदः शतंभूयश्च शरदः शतात् ॥ —ऋग्वेद

हे परमपिता परमेश्वर! आपकी कृपा से हम सौ वर्ष तक स्वस्थ रहें। हम सौ वर्ष तक देख सकें, सौ वर्ष तक सुनते रह सकें और सौ वर्ष तक बोलते रह सकें। हे जगत्पिता! हम आपकी अनुकम्पा से आत्मनिर्भर रहते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहें।

भगवान पुकार सुनता है और जरूर सुनता है। शुद्ध हृदय से की गई प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती। ईंधन का मूल्य कुछ भी हो, पर जब वह अग्नि से जुड़ जाता है तो अग्नि के सारे गुण उसमें आ जाते हैं। आग ईंधन नहीं बनती, ईंधन को आग बनना पड़ता है। बूंद समुद्र में मिलकर समुद्र बनती है। गन्दे नाले को सुरसरि में मिलने के बाद पतितपावनी गंगा के नाम से पुकारा जाता है। यही स्थिति भक्त और भगवान की होती है। मनुष्य सच्चा सर्जन तभी कर पाता है जब वह अपने अहं का विसर्जन कर ईश्वर के साथ एकाकार हो जाता है।

फिल्मोर का इतिहास प्रसिद्ध चरित्र—बचपन में स्केटिंग खेलते समय चार्ल्स फिल्मोर की कूल्हे की हड्डी खिसक गई थी। अनेक आपरेशन और श्रेष्ठ चिकित्सा के बाद भी जब उनका असह्य दर्द ठीक नहीं हुआ और डॉक्टरों ने कह दिया कि 'अब दर्द निवारक गोलियाँ और पंगु जीवन ही तुम्हारी नियति' है तो फिल्मोर निराश नहीं हुए। उनके अन्दर छिपी हुई श्रेष्ठता ईश्वर पर आस्था और प्रार्थना के रूप में प्रकट हुई। वे लिखते हैं कि मानव-जीवन किसी महान् उद्देश्य के लिए है, यही सोचकर मैंने अपने आपको ईश्वर को अर्पित कर दिया। मैं सोचता कि मेरा जन्म व्यर्थ नहीं जायेगा। वे चार से छः घण्टों तक प्रतिदिन ईश्वर की प्रार्थना करते। अन्ततः वे ठीक हुए—दर्द और पंगु जीवन से उन्हें पूरी तरह मुक्ति मिल गई। बाद

...होंने 'यूनिटी स्कूल ऑफ क्रिश्चिएनिटी' की स्थापना की जिसका प्रमुख उद्देश्य सेवा है। कल्याणकारी विचारों से ओत:प्रोत 'यूनिटी', 'वीविजडम', प्रोग्रेस, बिजनेस आदि पत्रिकाओं को आज विश्व के कोने-कोने से लोग मंगाकर ...ते हैं।

हृदय के द्वार खुले रहें—साइकिल हीलिंग (आध्यात्मिक चिकित्सा) की ...शेषज्ञा रेबेका बियर्ड कहती हैं कि हमारी सारी मुसीबतों का कारण यह है कि ...ने दैवी शक्ति के लिए अपने कपाट बन्द कर रखे हैं। यदि हम दैवी शक्ति का ...ह्वान करें तो हमें सर्वत्र शिवत्व ही दृष्टिगोचर होगा और उसकी सहायता उपलब्ध ...ए बिना न रहेगी। **महर्षि अरविन्द का कथन है कि प्रार्थना का प्रचण्ड चुम्बकत्व ...दैवी शक्तियों की सहायता को अपनी ओर खींच लाने की सामर्थ्य रखता है।** ...ध्यात्मवेत्ता कहते हैं कि प्रार्थना शारीरिक ओजस, मानसिक तेजस और आत्मिक ...त्व प्राप्त कराने वाली महाशक्ति का नाम है। रेडियम की भाँति प्रकाशमान इस ...र्जा को जिधर भी नियोजित किया जाता है वहीं दिव्य सफलताएँ मिलती हैं। ...धुनिक ऋषि पं. श्री राम शर्मा आचार्य लिखते हैं कि प्रार्थना अनसुनी न रहे इसके ...लिए आवश्यक है कि उसमें आत्मा की कसक हो। ऐसी सामर्थ्यवान प्रार्थना भगवान ...को भक्त तक पास बुला लाने में समर्थ होती है। इसके लिए हृदय के द्वार खुले रहने चाहिये।

रोग निवारण के लिए प्रार्थना क्यों और कैसे—प्रार्थना दिव्य और चमत्कारी शक्ति प्रदान करती है। प्रार्थना के द्वारा दैवी सहायता के अनेक उदाहरणों से विश्व मानव सुपरिचित है। सुप्रसिद्ध चिकित्सक और वैज्ञानिक भी इन घटनाओं को प्रत्यक्ष सामने देखकर दाँतों तले अंगुली दबा लेते हैं। दूसरा पक्ष मानवीय पक्ष है—उसकी विचारणाओं का पक्ष, भावनाओं का पक्ष, विश्वासों का पक्ष, प्राणशक्ति का पक्ष और अन्तत: उसकी असीम चेतना का पक्ष जो प्रार्थना के द्वारा विराट शक्ति से संयुक्त हो दैहिक, दैविक और भौतिक तापों का विनाश कर देता है। प्रार्थना मनुष्य के विचारों को शिवत्व की ओर ले जाती हैं। अशुभ विचार ही विनाश की जड़ हैं। सदियों पहले हमारे ऋषियों ने कहा था—**तन्मे मन: शिव संकल्पमस्तु**—यजुर्वेद 34/1-2 अर्थात् मन कल्याणकारी विचारों वाला हो। रिबेका वीयर्ड ने **'एवरी मैन्स सर्च'** में लिखा है कि प्रार्थना के द्वारा विचारों का कल्याणकारी दिशा में मुड़ना एक ऐसा शुभ लक्षण है जो अन्तत: उसे सभी प्रकार के विचारों से मुक्ति दिला देता है। ईश्वर के प्रति अटूट विश्वास ही प्रार्थना को जन्म देता है। प्रार्थना विश्वास की धार को और भी पैना बना देती है। इस प्रकार का विश्वास शक्ति के ऐसे स्फुलिंग छोड़ता है कि रोग-शोक को दूर होते देर नहीं लगती। **इस सन्दर्भ में विख्यात चिकित्सा**

विज्ञानी और कैंसर रोग विशेषज्ञ डा. अलेक्सिस कैरेल ने गहन खोजें की हैं। अपनी कृति "द मैन अननोन" में वे लिखते हैं कि मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब एक मरणासन्न रोगी प्रार्थना-चिकित्सा के द्वारा पूरी तरह स्वस्थ हो गया। उस रोगी को उन्होंने स्वयं असाध्य घोषित किया था। वे आगे लिखते हैं कि प्रार्थना सृष्टि की सबसे शक्तिशाली ऊर्जा है जो मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर तन्त्र को इच्छित दिशा में क्रियाशील होने के लिए विवश कर देती है, जिससे अन्दर ही अन्दर प्रतिरक्षा प्रक्रियायें सक्रिय हो उठती हैं। प्रार्थना का लाभ न केवल भौतिक स्वास्थ्य के रूप में मिलता है अपितु बौद्धिक प्रखरता, मानसिक प्रसन्नता और आत्मिक आनन्द के रूप में भी मिलता है। एक वाक्य में कहें तो प्रार्थना मनुष्य में सोयी पड़ी दिव्य शक्तियों को जगाने का सबसे अधिक प्रभावी साधन है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि जब ये शक्तियाँ जग जाती हैं तो रोग-शोक क्षणमात्र भी नहीं ठहरते।

रायल कालेज आफ सर्जन्स, लन्दन के ख्यातिप्राप्त चिकित्सक डा. होवार्ड समरवेल ने अपनी कृति आफ्टर एवरेस्ट में इस प्रकार की अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है जिनमें चिकित्सकों द्वारा छोड़े गये अनेक असाध्य रोगी प्रार्थना शक्ति के कारण ही स्वस्थ हुए। डा. समरवेल लिखते हैं मेरे जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ हुईं जिन्होंने मुझे ईश्वरीय सत्ता और प्रार्थना की चमत्कारी शक्ति पर विश्वास करने को विवश कर दिया। वे लिखते हैं कि मेरे हिमालय अभियान के समय का वह रोगी मुझे आज भी याद आता है जिसके दोनों पैर क्षय रोग के कारण बेकार हो चुके थे और उनको काट देने के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा था। बाद में प्रार्थना शक्ति के अद्भुत चमत्कार के कारण उसमें मात्र 21 दिन में सुधार के लक्षण दिखने शुरू हो गये और तीन माह में वह बिल्कुल ठीक हो गया। इसी प्रकार के अनुभव डा. शेरवुड एडी ने अपनी पुस्तक 'यू विल सरवाइव आफ्टर डैथ' में व्यक्त किये हैं। वे लिखते हैं कि सच्चे हृदय से ईश्वर को पुकारने पर उत्तर अवश्य मिलता है। अन्तःकरण की पुकार पर ईश्वरीय सत्ता द्रवित हुए बिना नहीं रहती है। लन्दन निवासी खेल प्रशिक्षण डब्ल्यू. टी. पारीश की कैंसर ग्रसित पत्नी जो मौत के दरवाजे खटखटा रही थी, प्रार्थना शक्ति के बल पर स्वस्थ होकर जब डा. शेरवुड के सामने आई तो उन्होंने ईश्वर को अभिवादन कर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। अध्यात्म चिकित्सा के मूर्धन्य चिकित्सक डा. वेदर हेड ने अपनी पुस्तक 'साइकोलॉजी रिलीजन एण्ड हीलिंग' में वृक्कशोथ ग्रसित चार वर्षीय मरणासन्न बालक का वर्णन किया है जो उसकी माता द्वारा प्रार्थना करने पर बिल्कुल ठीक हो गया था।

भगवान कृष्ण ने गीता में 'मामेकं शरणं व्रज' कहकर अपनी शरण में आने को कहा है। जब कोई बालक अपनी रक्षा के लिए या भय से बचने के लिए माँ की

गोद में छिपता है तो जैसा उसका भाव होता है वैसा ही भाव भगवान की शरण में जाने के लिए चाहिए। फिलमोर ने इसके लिए तीन शर्तें बताई हैं—ईश्वर पर अटूट विश्वास, शुद्ध-सरल भाव से ईश्वर से याचना और मन में शिव संकल्प। ये तीन शर्तें पूरी कर लेने से मृत्यु के मुख में जाता हुआ रोगी भी निराश नहीं होता। प्रतिदिन नियमित रूप से उपासना (उप = निकट + आसन = बैठना अर्थात् स्वयं को पूरी तरह ईश्वर के अर्पित कर देना) के द्वारा व्यक्ति की प्रसुप्त शक्तियां जगजाती हैं। वह सृष्टि के कण-कण में 'सियाराम' के दर्शन करने लगता है। मनोवेत्ता जॉन पिट्रल के वे शब्द सचमुच मनुष्य को भगवान से मिलाने की प्रेरणा देते हैं, जब वे कहते हैं—"मनुष्य की यह सबसे बड़ी भूल है कि जीवनदाता परमेश्वर को भूलकर वह सहायता के लिए जहाँ-तहाँ मारा-मारा फिरता है। यदि वह एक जगह शान्त मन से बैठकर ईश्वर को सच्चे अन्तःकरण से पुकारे तो कोई कारण नहीं कि उसकी आन्तरिक पुकार पर परमात्मा की सहायता उपलब्ध न हो। □

उपहार के मंगल दीप

'स्वस्थ रहें सौ वर्ष जिएं' को उपहार में दीजिए। स्वास्थ्य के इस अनमोल रत्न को अपने मित्रों और सम्बन्धियों को भेंट स्वरूप प्रदान कर आप उनके परिवारों को स्वास्थ्य और सुख-शान्ति के मंगलदीपों से जगमगायेंगे।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु कश्चित दुख भाग्भवेत॥

…………सामार

विनीत

लेखक

2

यौवन रक्षा

शरीर की तीन अवस्थाएँ होती हैं—बचपन, यौवन और बुढ़ापा। भारत
शास्त्रकारों ने बचपन को जीवन का मूल, यौवन को जीवन का फूल और बुढ़ापे
जीवन का फल माना है। जीवन का आधार जितना सुदृढ़ और कल्याणकारी हो
फूल और फल भी उतने ही आनन्ददायी होंगे। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को जी
के पुरुषार्थ की संज्ञा इसीलिए दी गई है क्योंकि इनको प्राप्त करने के बाद व्यक्ति
कुछ पाना शेष नहीं रह जाता। प्रेय और श्रेय दोनों की प्राप्ति पुरुषार्थ चतुष्टय से
जाती है। शरीर, इन्द्रियाँ और मन को जो प्रिय है वह भी उसे मिल जाता
और बुद्धि और आत्मा के लिए जो श्रेयस्कर है, उसे भी वह प्राप्त कर लेता है
लौकिक सफलताएँ—वित्तेषणा व पुत्रेषणा की पूर्ति तथा सदाचार, आनन्द, आत्मि
शान्ति आदि की प्राप्ति इनके द्वारा ही होती है। इसीलिए बचपन में ब्रह्मचर्य
अध्ययन के द्वारा शरीर की नींव को मजबूत करने का विधान शास्त्रकारों ने निश्चि
किया है। अक्षय यौवन की प्राप्ति तो असम्भव है किन्तु आयुर्वेद ने ऐसे अ
उपायों का वर्णन किया है, जिनसे यौवन को अधिक दिनों तक स्थिर रखा
सकता है।

किशोरावस्था की सावधानियाँ—किशोरावस्था बचपन और यौवन की बी
की अवस्था है। इस अवस्था में व्यक्ति बालक भी होता है और युवा भी। उस
मानसिक परिवर्तन होने लगते हैं। यही वह समय है, जब उसे सबसे अधिक सावधा
रखनी चाहिए। यौवन जीवन का वसन्त काल है। वसन्त से पूर्व बुरे विचार
कुटेवों के जीर्ण-शीर्ण पत्ते पूरी तरह झर जाने चाहिए। तभी जीवन रूपी वृक्ष नय
नयी कोंपलों और महकते फूलों से सुशोभित हो सकेगा। श्रेय दिनचर्या का पाल
अर्थात् उचित समय पर उचित कार्य करना, सत्साहित्य का अध्यय
व श्रेष्ठ विचारों का चिन्तन तथा खेल व व्यायाम को उचित महत्त्व

से किशोरों के सामने कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती। गुप्तेन्द्रिय की नियमित सफाई न करने पर वह अनेक गलत आदतों और भयंकर रोगों के चंगुल में पड़ सकता है। इसीलिए स्नान करते समय गुप्तेन्द्रिय में जमा मैल उसे नित्यप्रति साफ करना चाहिए और पर्याप्त मात्रा में ठण्डा पानी डालना चाहिए।

दुर्भाग्य से स्वप्नदोष, प्रदर, मासिक धर्म की समस्याएं या हस्तमैथुन आदि के भयंकर चंगुल में यदि कोई किशोर-किशोरी फंस भी जाये तो उसे तुरन्त सावधान हो जाना चाहिए। इस पुस्तक में अन्यत्र इन रोगों के इलाज और बचने के उपायों पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। उनके अनुसार आहार-विहार, आचार-विचार तथा चिकित्सा से उन समस्याओं से छुटकारा पा लेना चाहिए अन्यथा जीवन बगियां में फूलों की जगह कांटे ही कांटे रह जाते हैं। यह बात अपने मानस में टांक लेने योग्य है कि दृढ निश्चय और सावधानीपूर्वक किये गये प्रयत्नों के लिए सफलता सदैव अपने दरवाजे खुले रखती है। अतः किसी को भी यह नहीं समझना चाहिए कि अब तो स्वास्थ्य चौपट हो चुका है, प्रयत्न करने से क्या लाभ? जैसाकि महाभारत का कथन है—

नात्मानवमन्येत पूर्वाभिरसमृद्धिभिः।
आमृत्योः श्रियमन्विच्छेत् नैनामन्येत सुदुर्लभाम्॥

यौवन रक्षा के सुनहरी उपाय—1. सदाचार—सदाचारी का यौवन कभी नष्ट नही होता। उसकी शक्ति अजेज होती है। आचारः प्रथमो धर्मः के अनुसार आचार मनुष्य का सबसे महत्त्वपूर्ण धर्म है। दुराचारी को स्वास्थ्य, सुख और शान्ति स्वप्न में भी प्राप्त नहीं हो सकते। 'शरीर को व्याधि मन्दिर न बनायें' नामक अध्याय में रोगों के जितने भी कारण गिनाये गये हैं उनमें से अधिकांश कारण सदाचार का पालन करने से दूर हो जाते हैं। चरक संहिता के अनुसार—

आत्महितं चिकीर्षता सर्वेण सर्वं सर्वदा स्मृतिमास्थाय सद्वृत्तमनुष्ठेयम्।
तद्ध्यनुतिष्ठन युगपत्संपादयत्यर्थ द्वयमारोग्यमिन्द्रिय विजयंचेति॥

अर्थात् अपनी भलाई चाहने वाले सभी मनुष्यों को सावधानी पूर्वक सदाचार का पालन करना चाहिए क्योंकि सदाचार से आरोग्य और इन्द्रियों पर विजय प्राप्त होती है। सदाचारी का मनोबल और आत्मबल उसे मनचाहे वरदान देने की क्षमता रखता है। आयुर्वेद में शारीरिक सदवृत्त, मानसिक सदवृत्त, नैतिक सद्वृत्त आदि पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है, जिनका पालन करने पर व्यक्ति अपने यौवन को स्थिर रख सकता है।

2. संयम—भर्तृहरि ने अपने 'वैराग्यशतक' में कहा है कि व्यक्ति ही बूढ़ा हो जाता है, तृष्णाओं और इच्छाओं का कभी बुढ़ापा नहीं आता। इच्छाओं को कभी

पूर्ति नहीं होती। इनकी पूर्ति असम्भव है। शास्त्रकारों ने भोग की इच्छाओं को अग्नि और उनकी पूर्ति को घी के समान बताया है। घी डालने से अग्नि और भी अधिक प्रज्वलित हो जाती है अतः मन और इन्द्रियों को खुली छूट देना एक प्रकार की आत्महत्या ही है। मनुस्मृति का कथन है—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्॥

अर्थात् जैसे निपुण सारथी कुशलता से घोड़ों की लगाम पकड़कर उनको वश में रखता है, वैसे ही बुद्धिमान पुरुष पतन की ओर जाते हुए मन व इन्द्रियों को अपने वश में रखने का प्रयत्न करता है—ब्रह्मचर्य प्रकरण में इस विषय पर विस्तृत विवेचन किया गया है। यहाँ इतना लिखना पर्याप्त है कि संयम स्वास्थ्य और सुख-शान्ति का मूलमन्त्र है। शास्त्रकारों के अनुसार आठ प्रकार के संयम धारण करने से यौवन सदा स्थिर रहता है और व्यक्ति सुखी जीवन व्यतीत करता है। ये आठ संयम हैं—

स्मरण—'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' अर्थात् मन श्रेष्ठ और कल्याणकारी संकल्पों वाला हो। वह कल्याणकारी बातों या घटनाओं के स्मरण में लिप्त हो रहे। विषय-वासनाओं से सम्बन्ध रखने वाली बातों या घटनाओं के स्मरण से व्यक्ति हीन-वीर्य और स्वप्नदोष, प्रमेहादि रोगों से ग्रस्त हो जाता है।

कीर्तन—कीर्तन का अर्थ है बोलना। वाणी का संयम स्वास्थ्य, प्रसन्नता और आत्मिक शान्ति का अव्यर्थ उपाय है। गान्धीजी कहते हैं बुरा मत कहो। बुरा कहने से आचरण भी बुरा होता है। शास्त्रों का कथन है—'यन्मनसा ध्यायति, तद्वाचा वदति, तत्कर्मणा करोति।" अर्थात् व्यक्ति मन में जो विचार करता है, वही मुख से बोलता है और जो मुख से बोलता है, वही करता है' अतः अश्लील बातें कहना या उनमें रस लेना स्वास्थ्य और यौवन के लिए घातक विष के समान है।

केलि—भारत ने विश्व को मातृवत पर दारेषु अर्थात् पर स्त्रियों को माता के समान समझो, का अमर सन्देश दिया है। अतः स्त्रियों से उसी रूप में व्यवहार करना चाहिए। हंसी-मजाक, खेल-कूद के बहाने अंग स्पर्श आदि व्यवहारों के मूल में लम्पटता रहती है और कामवासना भी भड़कती है अतः इनसे बचना आवश्यक है। रामकृष्ण परम हंस के लिए नारी जाति ही जगज्जननी थी।

प्रेक्षण—सृष्टि के कण-कण को कल्याणकारी भावना से देखना या तुलसीदासजी के शब्दों में 'सब जग' को 'सियाराम मय' समझना आत्मोन्नति का साधन है। गान्धीजी भी 'बुरा मत देखो' का सन्देश देते हैं। व्यक्ति बाह्य दृश्यों को जिस दृष्टि से देखता है, उनके मन पर वैसा ही दृश्य अंकित हो जाता है। अतः मन में विषय-वासना रखते हुए स्त्रियों को देखने की स्थिति जब-जब भी उत्पन्न हो, उस

समय ईश्वर का स्मरण या उनमें अपनी माता के दर्शन करने का विचार मन में तुरन्त आना चाहिए।

गुह्यभाषण—एकान्त में स्त्रियों से बातचीत करते समय मन निरन्तर शुद्ध-सात्विक भावों से भरा रहना चाहिए। मन में बुरे भाव रखकर महिलाओं को एकान्त में बुलाना-बातचीत करना आदि पतन के मार्ग हैं जिन पर चलने से न केवल स्वास्थ्य ही चौपट होता है अपितु आत्मा का वैभव भी लुटजाता है।

संकल्प—हमारे ऋषियों ने 'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु' का मंत्र व्यक्ति को देकर जीवन की सम्पूर्ण सफलताओं की कुंजी उसके हाथ में दे दी है। इसके विपरीत विषय-वासनाओं की पूर्ति के लिए कुछ करने का निश्चय करना साक्षात् नरक में विचरने के समान ही है।

अध्यवसान—संकल्प और तदनुसार चेष्टा ही अध्यवसान है।

क्रिया—बबूल के पेड़ बोने वाले को स्वयं तो काँटे मिलते ही हैं, दूसरों के रास्ते में भी वह काँटे बिछाता है। इसीलिए कहा गया है कि कर्म गति टाले से भी नहीं टलती। चिड़ियों द्वारा खेत चुग जाने के बाद पछताने से कोई लाभ नहीं होता। अतः काम वासना सम्बन्धी क्रियाओं में लिप्त रहना कदम-कदम पर मृत्यु को निमंत्रित करने के समान है।

3. यौवन रक्षा के लिए त्रिस्तम्भों की भूमिका—यौवन-रक्षा के लिए स्वास्थ्य के त्रिस्तम्भों का महत्त्व सर्वविदित है। ये स्तम्भ हैं—आहार, निद्रा और व्यायाम। आहार प्राणियों का प्राण है। आयुर्वेद ने आहार सम्बन्धी पाँच स्वर्णिम सूत्र निर्धारित किये हैं। ये सूत्र हैं—काल-भोजी बनना अर्थात् सच्ची भूख लगने पर ही खाना। हित भुक अर्थात् शरीर के लिए हितकारक भोजन करना। मित भुक अर्थात् उचित मात्रा में भोजन करना। सर्वरस युक्त भोजन करना और तन्मनाभुंजीत अर्थात् प्रसन्न और शान्त भाव से मन लगाकर भोजन करना। निद्रा के विषय में आचार्य चरक ने कहा है कि नींद परिश्रम से थके-हारे मन और शरीर को नवीन शक्ति और उत्साह प्रदान करती है। अतः यौवन की स्थिरता के लिए प्रगाढ़ नींद जरूरी है। इसी प्रकार यौवन-रक्षा के लिए नियमित व्यायाम भी आवश्यक है। इन सब पर पिछले अध्यायों में विस्तार से चर्चा की जा चुकी है।

4. प्रकृति के वरदानों का सेवन—प्राणवायु, सूर्य, मिट्टी, चन्द्रकिरणें, ऋतुएं, हरे-भरे वृक्ष, पर्वत-मालाएं, कल-कल करती हुई नदियां मीठे गीत गाते हुए पक्षी—ये सब प्रकृति माता के अनमोल वरदान हैं। ये वरदान व्यक्ति के तन में ही नही मन और आत्मा को भी प्रसन्नता और आनन्द से भर देते हैं। किसी विचारक ने सच ही

कहा है कि प्रसन्नता और आनन्द की चुम्बकीय शक्ति यौवन को सदैव अपने पास खींचती रहती है।

नार्मन कजिंस अमेरिका के विख्यात डाक्टर हुए हैं। एक बार वे भयंकर रूप से बीमार हुए। डाक्टरों ने सभी परीक्षणों के बाद घोषित कर दिया कि उनकी जीवन-लीला नव्वे दिन की रह गई है। रोग क्या था, कोई समझ न सका। भयंकर दर्द और चारपाई पर पड़े रहने भर की शक्ति। डॉ. कजिंस अपनी पुस्तक **'एनाटामी आफ इलनैस'** में लिखते है कि जब मरना ही है तो अस्पताल में रहकर क्यों, प्रकृति के बीच रहकर क्यों नहीं ? उन्होंने फूलों और हरियाली के बीच अपने लेटने की व्यवस्था की। शुद्ध वायु, सूर्य का प्रकाश और चहचहाते पक्षी उनके सहचर बने। **नव्वे दिन का मेहमान जब ग्यारह महीने बाद एक स्वास्थ्य कान्फ्रेंस में भाषण दे रहा था तो चेहरे की लालिमा उसके यौवन की कहानी कह रही थी।** विश्व विख्यात डाक्टरों ने जयघोष के साथ उनका स्वागत किया। वे अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि सीमेण्ट के मकान और डामर की सड़कें न व्यक्ति को स्वास्थ्य दे सकते हैं और न बीमारी से मुक्ति। डाक्टर कजिंस ने हास्य को स्वास्थ्य और यौवन का अनोखा अवदान माना है। वे लिखते हैं—**मनुष्य के शरीर में नवजीवन की प्रक्रिया लगातार होती है। केवल प्रसन्न रहकर ही इस प्रक्रिया को तेज किया जा सकता है बिना दवाओं का सहारा लिए। मनुष्य को दवाओं से अधिक हास्य की जरूरत है, जो उसके लिए दुर्लभ होता जा रहा है। मैंने हास्य नामक नव पल्लवन का तत्त्व खोज निकाला है। हास्य के सहारे मनुष्य शतजीवी व सुखी हो सकता है। मैं स्वयं आपके सामने खड़ा हूँ, जिसे आप लोगों के अनुसार अब तक स्वर्ग सिधार जाना चाहिए था।**

5. यौवन नाशक रोगों से छुटकारा—यों तो हर रोग यौवन नाशक होता है, किन्तु स्त्री-पुरुषों के विशेष रोग व्यक्ति के तन का यौवन, मन का उल्लास और आत्मा का सम्पूर्ण वैभव चुराकर ले जाते हैं। स्वप्नदोष, प्रमेह, वीर्य की कमजोरी, शीघ्रपतन, मासिक धर्म की जटिलताएँ, प्रदर, नपुंसकता आदि इसी प्रकार के रोग हैं। किशोर-किशोरियों व महिलाओं के सभी रोगों पर अन्यत्र विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है। स्वप्न दोष व मधुमेह प्रकरण में पुरुषों के लिए भी इन सभी रोगों के कारण-लक्षण व उचित आहार-विहार पर प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ हम इन रोगों को नष्ट कर नव यौवनदाता अनुभूत शास्त्रीय औषधियों के गुण-धर्म की चर्चा करेंगे।

नव यौवन दाता औषधियाँ—1 चन्द्र प्रभावटी बल-दायक, उत्तम प्रमेह नाशक व वीर्यरोग नाशक दवा है। दो-दो गोली सुबह-शाम जल, दूध, या शहद+आँवले के रस के साथ सेवन करने से उक्त रोग नाश होते हैं। चन्द्रप्रभावटी एक गोली,

वंगभस्म एक रत्ती व प्रवाल पिष्टी एक रत्ती को मिलाकर सुबह-शाम-रात शहद+
आँवले के रस के साथ सेवन करने से स्वप्न दोष, प्रमेह, वीर्यदोष, वीर्य की कमी, शीघ्र
स्खलन आदि सभी रोग दूर होकर व्यक्ति स्फूर्ति व खोया यौवन वापस पालेता है।
**जो किशोर-किशोरी गलत आदतों में फंसकर अपने यौवन के खजाने को खाली कर
लेते हैं, उनके लिए यह प्रयोग आशीर्वाद स्वरूप है। हमारा अनेक बार का परीक्षित**
है। वंग भस्म के लिए तो हमारे शास्त्रों में यहाँ तक कहा गया है कि वंग का सेवन
करने वाला स्वप्न में भी वीर्यदोषों का रोगी नही बनता। मूत्र ग्रन्थि प्रदाह, मूत्र-
ग्रन्थि प्रदाह, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ, सूजाक, आतशक आदि रोगों में भी यह योग फल
प्रद सिद्ध हुआ है। इन रोगों में मात्र चन्द्रप्रभा व प्रवाल का प्रयोग भी सिद्ध है।
प्रयोग–2 त्रिफला 10 ग्राम व हल्दी 5 ग्राम रात्रि को मिट्टी के वर्तन में भिगोदें।
प्रात: मलकर छान लें और 10 ग्राम शहद मिलाकर पीजायें। इसी प्रकार प्रात:
भिगोकर शाम को सेवन करें। यह एक चमत्कारी घरेलू दवा है। सम्पूर्ण वीर्य रोगों
की श्रेष्ठ और निरापद घरेलू महौषधि है। हमारे पास सैकड़ों रोगियों के पत्र आते
हैं, जिनमें उनकी करुण और जीवन नष्ट होने की कहानी लिखी होती है। हम लग-
भग 80% रोगियों को 21 दिन यह दवा और वाद में 40 दिन तक ऊपर लिखा
चन्द्रप्रभा योग सेवन कराते हैं और लगभग शत प्रतिशत सफलता मिलती है। **वीर्य
रोगों से दु:खी और अपना यौवन अधिक दिनों तक स्थिर रखने के इच्छुक व्यक्तियों
को प्रतिवर्ष शीतकाल में इन योगों का सेवन 1–2 माह अवश्य करना चाहिए।**
प्रयोग-3 च्यवनप्राश या ब्रह्मरसायन एक-एक चम्मच में एक-एक रत्ती रस सिन्दूर+
वंगभस्म मिलाकर दिन में 2 बार प्रतिवर्ष एक-दो महीने सेवन करते रहने से बुढ़ापा
दूर खिसकता जाता है। वीर्य सम्बन्धी रोग दूर होकर नयी शक्ति, स्फूर्ति और
उत्साह पैदा होता है। चेहरे पर तेज झलकने लगता है। **प्रयोग–4** बबूल की बीज
रहित कच्ची फली, कोंपल और गोंद छाया में सुखाकर चूर्ण करलें। आधा चम्मच
चूर्ण एक चम्मच मिश्री मिलाकर दूध के साथ दिन में दो बार सेवन करें। साधारण
दवा होते हुए भी स्वप्न दोष-प्रमेहादि को दूर कर वीर्य को शुद्ध और गाढ़ा बनाती
है। **प्रयोग–5 अश्वगन्धादि चूर्ण** असगन्ध व विधारा समभाग लेकर बारीक चूर्ण कर
लें। आधा-आधा चम्मच चूर्ण, मिश्री व भुसी ईसबगोल दिन में तीन बार दूध या
जल से सेवन करने से वीर्य विकार, शुक्रक्षय, वीर्य का पतलापन, प्रमेह शीघ्रपतन
आदि नष्ट होकर वीर्य गाढ़ा व निर्दोष बनता है। शरीर को हृष्टपुष्ट बनाने,
आयु को स्थिर रखने व खोया यौवन वापस लाने के लिए यह एक श्रेष्ठ दवा है।
प्रयोग–6 बरगद के पेड़ की एक बूंद बताशे में डालकर प्रात: खायें। प्रतिदिन एक-एक
बूंद बढ़ाकर 21 दिन तक सेवन करें। फिर एक-एक बूंद घटाकर एक तक आकर
दवा बन्द कर दें। बताशों की संख्या 5 से अधिक न हो। यह एक सहज प्राप्त होने
वाली चमत्कारी दवा है। **प्रयोग–7** योग तरंगिणी का गोक्षुरादिचूर्ण शीघ्र पतन व
नपुंसकता की श्रेष्ठ दवा है। जो लोग नशीली दवाओं के द्वारा कृत्रिम उत्तेजना या

स्तम्मन शक्ति प्राप्त करके अपनी शक्ति—सामर्थ्य खो चुके हैं उनको धैर्य पूर्वक 2–3 माह इस दवा का सेवन करना चाहिए। जड़ी–बूटियाँ हैं—गोखरू, ताल मखाना, शतावर, कौंच के बीज, (कौंच के बीजों को चौगुने दूध में उबालें, 2–3 घण्टे पड़ा रहने दें। फिर छिलका उतार कर काम में लें। दूध फेंक दें।) नाग बला और अतिबला समभाग लेकर चूर्ण बनालें। आधा-आधा चम्मच दवा प्रातः व रात्रि को दूध के साथ सेवन करें। पैंतीस वर्ष से अधिक आयु वाले ही इसका उपयोग करें। **प्रयोग–8** पुष्प धन्वा रस एक-एक गोली पीसकर शहद के साथ सेवन करें और ऊपर से दूध पियें। दिन में दो-तीन बार सेवन करें। नपुंसकता नाशक श्रेष्ठ योग है।

आयुर्वेद शास्त्र वृष्य, रसायन, यौवनदाता, आयु-स्थापक और पुरुषों के विशेष रोग नाशक औषधियों से भरा पड़ा है। कायाकल्प और नव यौवन प्रदान करने के अनेक प्रयोग हमारे ऋषियों ने किये थे और उनमें सफलता भी पाई थी। किसी अनुभवी वैद्य से मिलकर या पत्र में पूरा हाल लिखकर तथा परामर्श लेकर यदि उपर्युक्त औषधियों का सेवन किया जाये तो खोया स्वास्थ्य वापस मिलने में कोई सन्देह नहीं रह जाता।

विशेष सावधानी—इस प्रकार की दवायें प्रायः पौष्टिक व गरिष्ट होने के कारण कब्ज करती हैं। अतः आहार और व्यायाम पर विशेष ध्यान देना चाहिए। सब्जियां, फल, दूध, दही, छाछ, मुनक्का ईसबगोल की भुसी + त्रिफलाचूर्ण 10 + 10 ग्राम (हर पन्द्रह दिन बाद लगातार दो दिन रात को गर्म पानी के साथ) का सेवन करते रहना चाहिए। दवा शुरू करने से पहले पंचसकार चूर्ण दस ग्राम गर्म जल के साथ सेवन कर कोष्ट शुद्धि कर लेनी चाहिए। उक्त दवाओं के सेवन के समय झण्डू पंचारिष्ट + लिवोमिन सीरप 10 + 5 ग्राम भोजन के बाद सेवन करते रहने से शीघ्र लाभ हो जाता है।

जीवन का महान् प्रयोजन

ईश्वर ने प्रत्येक मनुष्य को एक विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए पैदा किया है। आहार, निद्रा और मैथुन मात्र तक अपने को सीमित रखना पशुओं का स्वभाव है। ईश्वर प्रदत्त उस महान् प्रयोजन में अपने को लगाये रखना यौवन रक्षा का ही अव्यर्थ उपाय नहीं है, अपितु यौवन की सार्थकता भी इसी में है। ☐

3
सूर्यशक्ति : प्राणशक्ति

सूर्य सम्पूर्ण चराचर जगत की प्राणशक्ति का अक्षय स्रोत है। इसकी स्वास्थ्य रक्षक, शक्तिदायक और रोगनाशक किरणों के रहते व्यक्ति बीमार रहें, यह सचमुच आश्चर्य का विषय है। अथर्ववेद 98, 8 में उल्लेख है—

उद्यन्नादित्य रश्मिभि: शीर्ष्णो रोग मनीनश:" अर्थात् उदय होते हुए सूर्य की किरणों से अनेक व्याधियों का नाश होता है। शास्त्रकार कहते हैं—"**रश्मीनां प्राणानां रसानां च स्वीकरणात् सूर्य:**" अर्थात् अमृतरस से युक्त सूर्य-किरणें समस्त जीवधारियों को जीवन प्रदान करती हैं। ये किरणें सभी प्राणियों की प्राणशक्ति है। महर्षि सुश्रुत का कथन है कि सूर्य किरणों के दैनिक उपयोग से मनुष्य रोगमुक्त रहकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। सुप्रसिद्ध सूर्य चिकित्सा शास्त्री डा. स्किली ने अनेक रोगियों पर परीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला है कि सूर्य की किरणें स्वस्थ रहने और रोगों से छुटकारा पाने का सबसे सस्ता, सबके लिए सुलभ और सबसे अधिक प्रभावी साधन है। जर्मनी के प्रख्यात चिकित्सक लुई कूने के अनुसार सूर्य में प्राणि मात्र को स्वास्थ्य और नवजीवन प्रदान करने की असीम प्राकृतिक शक्ति है।

स्वामी ज्योतिर्मयानन्दजी ने सूर्य के अलौकिक गुणों पर मुग्ध होकर एक बार कहा था कि यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि प्राण-ऊर्जा के असीमित स्रोत सूर्य के रहते हुए मनुष्य निष्प्राण, इस महान तेज पुंज के रहते हुये तेज विहीन और इस प्रबल रोगनाशक संजीवन के रहते हुए वे रोगी रहते हैं। लगभग इसी से मिलता-जुलता मत सुप्रसिद्ध दार्शनिक न्योची ने व्यक्त किया है—"जब तक संसार में सूर्य विद्यमान है, तब तक लोग व्यर्थ ही दवाओं की अपेक्षा में भटकते हैं। उन्हें चाहिए कि वे शक्ति, सौन्दर्य और स्वास्थ्य के केन्द्र सूर्यदेव की ओर देखें। पाश्चात्य विद्वान डॉ. सोले ने लिखा है "सूर्य में जितनी रोगनाशक शक्ति विद्यमान है, उतनी संसार के किसी अन्य पदार्थ में नहीं है। कैंसर, नासूर आदि दुसाध्य रोग जो बिजली और रेडियम के प्रयोग से अच्छे नहीं किये जा सकते थे, सूर्य रश्मियों का ठीक ढंग से प्रयोग करने से वे अच्छे हो गये।"

वेदों में सूर्य चिकित्सा की महत्ता पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। आयुर्वेद में भी इसका वर्णन मिलता है। सूर्य को विश्व की आत्मा कहा जाता है। विश्व का सम्पूर्ण भौतिक विकास भी सूर्य की सत्ता पर ही निर्भर है। सूर्य की शक्ति के बिना पेड़-पौधे उग नहीं सकते, शुद्ध वायु और जल की प्राप्ति नहीं हो सकती तथा प्राणियों और पृथ्वी की उत्पत्ति तक नहीं हो सकती। सूर्य की दिव्य किरणों का उपयोग करने वाले व्यक्तियों में शारीरिक शक्तियों का विकास और शरीर के विविध अंगों की पुष्टि का कार्य अत्यन्त सुचारु रूप से हो जाता है। जो व्यक्ति सूर्य द्वारा प्रदत्त प्रकृति के इस अनुपम वरदान के उपभोग से वंचित हैं, वे सचमुच अभागे हैं। उनका मुख मण्डल सदैव निस्तेज और पीलेपन से युक्त रहता है तथा वे सदैव रोगी बने रहते हैं। प्रकृति के खुले वातावरण और सूर्य-किरणों के बीच जो अपना अधिकतर समय गुजारते हैं, उनका स्वास्थ्य देखते ही बनता है। कदाचित ऐसे व्यक्तियों पर रोग का आक्रमण हो भी जाये तो थोड़ी अवधि में रोग दुम दबा कर भाग जाता है। विटामिन डी के निर्माण में सूर्य की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है। रिकेटस, रक्त का पीलापन, नसों की दुर्बलता, स्त्रियों में पाया जाने वाला रोग आस्टोमलेशिया, लोहे की कमी आदि रोग तो सूर्य प्रकाश की कमी के कारण ही होते हैं। सूर्य प्रकाश के अभाव में शारीरिक व मानसिक विकास पूरी तरह अवरुद्ध हो जाता है।

वेद भगवान का उद्घोष है—"सूर्य आत्मा जगस्त-स्थुषश्च" अर्थात सूर्य चराचर जगत के प्राणात्मा है। न केवल मनुष्य अपितु पशु, पक्षी, कीट पतंग आदि जंगम जीवों का अस्तित्व सूर्य के कारण सम्भव है। वे वृक्ष, लता, गुल्म, औषधि आदि अचल अन्तःसंज्ञ जीवधारियों के भी प्राणात्मा हैं। मनोहारी फूलों के सौन्दर्य में सूर्य-रश्मियाँ ही अठखेलियाँ करती है। सूर्य की प्राणशक्ति ही अन्न और फलों की जीवनी शक्ति के रूप में मनुष्यों के गालों पर लालिमा बनकर छलकती है। तात्पर्य सूर्य इस चराचर जगत के जीवन, प्रज्ञा और विज्ञान के आदि स्रोत हैं।

वेदों द्वारा उद्घाटित शाश्वत सत्य ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक कसौटी पर खरे सिद्ध हो रहे हैं, त्यों-त्यों विश्व मंत्र विमुग्ध होकर भारतीय संस्कृति एवं इसके महानतम ज्ञान-विज्ञान के प्रति नत मस्तक हो रहा है। ऋग्वेद का सुक्त है—

उत सूर्यो बृहदर्चांष्य श्रेत पुरु
विश्वा जनिम मानुषणाम।
तमोदिवा ददृशे रोचमानः
क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्त्तमिभुंत॥ ऋ. 7, सू. 62

अर्थात् ये सूर्य जो सबके प्रेरक हैं, वे अत्यन्त तेजोमय हैं। प्रतिदिन प्रतिक्षण मन को भाने वाले ये देव इस जगत के नियामक हैं, तत्वों के सम्पादक हैं और सभी साधनों के दाता हैं। सायणभाष्य में सूर्य की गरिमा पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि ये सूर्य स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियों को अपने तेजोमय प्रकाश से जाग्रत करते

हैं। इनकी किरणें प्राणियों में जीवन-संचार करती हैं। मित्र, वरुण, अग्नि, चक्षु: प्राण, अपान, जठर, वायु और जल के ये अद्भुत प्रवर्तक हैं।

सूर्य किरणों में अद्भुत रोग विनाशक, स्वास्थ्य प्रदायक और कीटाणुनाशक शक्ति विद्यमान है। अथर्ववेद 2–32–1 में लिखा है—

'उद्यन्तादित्या: क्रिमीन हन्तु विम्रोचन हन्तु रश्मय:'

अर्थात् आदित्य अपनी किरणों से जीवन को सभी दोषों से मुक्त कर देते हैं और रोगों के कीटाणुओं को मारकर व्यक्ति को स्वस्थ और रोगमुक्त बनाते हैं।

जीवन, तेज, बल, ओज, चक्षु आदि सब सूर्य के ही अधीन हैं। दूसरे शब्दों में व्यक्ति यदि उपर्युक्त शक्तियों को अपने शरीर में धारण करना चाहता है तो उसे सूर्य की दिव्य किरणों का उपयोग करना चाहिए। नारायणोपनिषद् 15 में सूर्य की इसी महान शक्ति का वर्णन मिलता है—

"आदित्यो वै तेज ओजो बलं यशचक्षु:"

सूर्य विज्ञान के अनुसार सूर्य का अद्भुत योगदान आज विज्ञान की कसौटी पर खरा सिद्ध हो चुका है। वेदों में वर्णित–'आरोग्यं भास्करादिच्छेत्' (अर्थात् भास्कर की प्रार्थना से ही आरोग्य मिलता है।) के महान सत्य को आज का विज्ञान भी स्वीकारने लगा है। Chambers Encyclopedia, Vol IX (1904 Edi.) में यह स्वीकारोक्ति इस प्रकार है—

"Sun the Star which was governs illuminates the earth other bodies forming the solar system. By the patient efforts of physi cists a Vast body of Knowledge of which her we can. but give the out line, has been gained regarding it for convenience we con- dense such of this information as admits of the 'treatment in to the subjoined table." अर्थात्..............यह पृथ्वी का नियामक और प्रकाशक है। चिकित्सा विज्ञान की प्रणालियों के लिए यह बहुत उपयोगी है। देह रचना और रोगों को हटाने के लिये यह प्रभूत सुविधा प्रदान करता है।

हमारे प्राचीन विज्ञानियों और चिकित्सा शास्त्रियों ने सूर्य पर गहरा अध्ययन किया था। सूर्य की सर्वरोग विनाशिनी और आरोग्य दायिनी शक्ति को प्रकाश में लाने का श्रेय तो इन आचार्यों को है ही. साथ ही इन्होंने चर्म रोग, नेत्र रोग, हृदय रोग, पाण्डु (रक्त कैंसर), उदर रोग, गलित्कुष्ट आदि रोगों में भी सूर्य-किरणों का प्रयोग किया था और इनको चमत्कारी रूप से प्रभावशाली पाया था। ऋग्वेद प्रथम मण्डल, सूक्त 50, मन्त्र 11–13 में उल्लेख मिलता है—सूर्य उदित होकर और ऊपर आकाश में चढ़कर हमारा मानस रोग, हृदय रोग, पीतवर्ण रोग, शरीर रोग, [illegible] रोग, नेत्र रोग नष्ट करे। आदित्य मेरे अनिष्टकारी रोग के विनाश के [illegible] तेज के साथ उदित हो। जैसाकि स्पष्ट है—

अनु सूर्य मुदयता हृद्द्योतो हरिमा चते ।
गो रोहितस्य वर्णेन, तेन त्वा परिदध्मसि ।।

रोग निवृत्ति ही नहीं अपितु दीर्घायु की प्राप्ति के लिये भी प्रभात कालीन सूर्य की लाल किरणें उपयोगी होती हैं । स्पष्ट है—

'परित्वा रोहितैर्वर्णै दीर्घायु त्वाय दध्मसि' —अथर्ववेद 1—21

इसी श्लोक के आगे स्पष्ट उल्लेख मिलता है "जो चमकीली रक्तिम सूर्य रश्मियां हैं, उनसे रूप (त्वचा का सौन्दर्य व तेजस्विता) और आयु प्राप्त होती है । जन-श्रुति के अनुसार 'कादम्बरी' के रचयिता महाकवि बाणभट्ट के सम्बन्धी मयूर का गलित्कुष्ट सूर्य चिकित्सा व सूर्योपासना से ही ठीक हुआ था । क्षय, कुष्ठ, लकवा कैंसर आदि भयानक रोगों को दूर करने के लिऐ आज भी सूर्य चिकित्सा प्रभावी सिद्ध हो रही है ।

मनुस्मृति का कथन है—आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नततः प्रजा: ।" अर्थात् सूर्य से वर्षा, वर्षा से अन्न (अन्न, फल-फूल, सब्जियां औषधियां आदि) अन्न से प्रजा अर्थात प्राणी का अस्तित्व होता है । अन्न, फल-फलादि में जो जीवनी शक्ति या प्राण शक्ति है वह भी सूर्य ही प्रदान करता है । सूर्य-प्रकाश के अभाव में सभी प्रकार के पेड़-पौधे-वनस्पतियां आदि पीली पड़कर नष्ट हो जाती हैं । सूर्य की उपस्थिति ही जीवन का प्रतीक है । सूर्य साक्षात विष्णु हैं—रसों के संग्राहक और आक्सीजन के अधिष्ठान होने के कारण जीवनदायी प्राणरक्षक हैं'।

सूर्य की दिव्य किरणों का उपयोग करें

स्वस्थ, सुन्दर और निरोग रहते हुए सौ वर्ष जीने की कामना मनुष्य करता आया है । सूर्य देव उसकी इस मनोवांछित अभिलाषा को पूर्ण कर सकते हैं । सूर्य-किरणों के उपयोग के कुछ सरल और सहज उपाय नीचे दिये जा रहे हैं—

1. सूर्य नमस्कार———शौचादि से निवृत होकर प्रसन्न वदन श्रेष्ठ और सात्विक भावों को धारण करते हुए उगते हुए सूर्य की उपासना सूर्य नमस्कार के मन्त्रों व आसनों के साथ करने से व्यक्ति में शारीरिक और मानसिक बल का संचार होने लगता है, नेत्र ज्योति में वृद्धि हो जाती है और वह रोगों व असमय बुढ़ापे से मुक्त हो जाता है ।

सूर्य को अर्घ्य देने की प्रथा भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित है । जल धारा में से प्रविष्ट हुई सूर्य किरणों का शरीर पर आरोग्यप्रद प्रभाव पड़ता है ।

2. दैनिक सूर्य स्नान—प्रतिदिन या यथा सुविधा सूर्य स्नान स्वास्थ्य प्राप्ति का एक श्रेष्ठ उपाय है । गर्मियों में प्रातः 7–8 वजे तक व सांय 5–7 वजे तथा जाड़ों में अपनी रुचि के अनुसार किसी भी समय 5 मिनट से प्रारम्भ कर 20–25 मिनट तक सूर्य स्नान किया जाना चाहिए । धूप सुहाती होनी चाहिए । पूर्ण लाभ

प्राप्त करने के लिए शास्त्रीय निर्देश तो पूर्ण नग्न होकर स्नान करने का है किन्तु देश, काल और परिस्थिति के अनुसार न्यूनतम वस्त्र धारण किये जा सकते हैं। सिर व नेत्र ढके जा सकते हैं। इसके लिए सर्वोत्तम समय प्रातः काल है।

3. सूर्य रश्मियों का स्वाभाविक उपयोग—ग्रीष्म काल की तपती दोपहरियों को छोड़कर यथा सुविधा धूप में आना-जाना, अपने कार्य करना अथवा सुहाती धूप में घूमना—इस प्रकार के अवसर योजनापूर्वक जुटा लेने चाहिए। वातानुकूलित कक्षों में रहने वाले इस लेख को पढ़कर यकायक पूर्ण उत्साह के साथ इस नियम का पालन न करें अपितु धूप में रहने का समय धीरे-धीरे बढ़ायें। सूर्य द्वारा प्रदत्त इस आशीर्वाद स्वरूप 'टॉनिक' का पूर्ण उपभोग करना चाहिए।

सूर्य चिकित्सा की एक शाखा सूर्य रंग चिकित्सा भी अत्यन्त प्रभावी सिद्ध हुई है। स्वास्थ्य पत्रिका अनन्त प्रभा के 1989 चतुर्थ अंक में इस पर एक विस्तृत लेख प्रकाशित किया जा चुका है। यहां हम रोगी और स्वस्थ सभी के लिए एक निरापद और श्रेष्ठ योग दे रहे हैं। वर्षा ऋतु को छोड़ कर वर्ष भर सेवन करें और सूर्य देवता के इस चमत्कारी वरदान का लाभ उठायें। श्वेतवर्ण की स्वच्छ और धब्बे रहित एक अच्छी बोतल लेकर उसे लगभग तीन चौथाई भरलें। इसे लकड़ी के पट्टे पर रखकर 5–6 घण्टे तक धूप में रखें। सूर्यास्त से पहले उठाकर ले आयें। 30 ग्राम से 40 ग्राम जल दिन में 3–4 बार खाली पेट सेवन करें। यह जल श्रेष्ठ टॉनिक तो है ही, सर्व रोग नाशक भी है। एक दिन बाद काम में न लें। इस जल का सेवन निर्भय होकर किया जा सकता है, किसी विशेषज्ञ से परामर्श करने की आवश्यकता नहीं है।

सूर्य रंग चिकित्सा—भारतीय तत्वदर्शियों के अनुसार सूर्य-किरणें एक हजार प्रकार की हैं। इनमें से सात प्रमुख हैं। ऋग्वेद 10·139·1 के अनुसार उनके नाम हैं—सुषुम्णा: हरिकेश: विश्वकर्मा, संयद्वसु, विश्वश्रव: और स्वराट। ये सात रश्मियाँ अभ्युदय की दृष्टि से स्वास्थ्य और भौतिक उन्नति प्रदान करती हैं और निःश्रेयस की दृष्टि से ब्रह्म तेज प्रदान कराने वाली हैं। त्रिपार्श्व (प्रिज्म) से गुजरने के बाद ये बैंगनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंगी और लाल रंग की हो जाती हैं। कौशीतकी व शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है कि सप्तवर्णी सूर्य किरणें शारीरिक स्तर पर आरोग्य एवं दीर्घजीवन प्रदान करती हैं, मानसिक स्तर पर साहस, पराक्रम, सन्तुलन, संयम, एकाग्रता, प्रफुल्लता और उत्साह प्रदान करने वाली हैं और अध्यात्म ज्ञान के क्षेत्र में शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्वापत्ति, असंशक्ति, पदार्थाभावनी और तुर्यगा प्रदान करती हैं। आधुनिक चिकित्सा विज्ञानियों ने सातरंगों वाली इन सूर्य किरणों पर अनेक अनुसंधान किये हैं जो इनकी स्वास्थ्य प्रद और रोगनाशिनी शक्ति को सिद्ध करते हैं। आज कलर मेडीटेशन, कलर ब्रीदिंग, क्रोमोथैरैपी आदि अनेक पद्धतियाँ चिकित्सा क्षेत्र में स्थापित हो चुकी हैं। प्रसिद्ध रंग

चिकित्सा विज्ञानी डा. ओसिली ने 'कलर मेडीटेशन' में लिखा है कि मोनोभावनाएं और रंग आपस में गुंथे हुए हैं। सूर्य के सात रंगों का सूक्ष्म शरीर के सात चक्रों एवं स्थूल शरीर की अन्तस्रावी ग्रन्थियों के साथ घनिष्ट सम्बन्ध है। अनेक भौतिक विज्ञानी, चिकित्सा विज्ञानी, प्राकृतिक विज्ञान शास्त्री और रंग विशेषज्ञों ने विविध रंगवर्णी सूर्य रश्मियों का गहरा अध्ययन किया है। इनमें फ्रेड रीन फेल्ड ("किरणें दृश्य और अदृश्य" में) मेरी एण्डरसन (कलर हीलिंग में) डा. इवानोविच ("व्यूज फ्राम दी रीयल वर्ल्ड" में) एवं डा. वर्नर मैक फैडन, बैनेडिक्ट लस्ट, स्टेनली लीफ, वेब्विट आदि शीर्षस्थ चिकित्सकों के अनुसंधान—अध्ययनों एवं भारतीय ऋषियों के द्वारा प्रतिपादित सत्यों के आधार पर निष्कर्ष निकाला जाये तो सूर्य किरणें एवं उनके रंग शरीर, मन और आत्मा की उन्नति के चमत्कारी साधन हैं।

इन सात रंगों में भी नारंगी, हरा और नीला रंग आरोग्य और रोग निवारण के लिए अद्भुत सामर्थ्य रखते हैं।

नारंगी रंग—सुप्रसिद्ध रंगविज्ञानी मेरी एण्डरसन ने अपनी कृति '**कलर हीलिंग**' में नारंगी रंग को अग्नि तत्त्व का प्रतीक बताया है। इससे रक्त और तन्त्रिका तन्तु प्रभावित होते हैं। इसका सेवन शरीर में एड्रीनेलिन हार्मोन की मात्रा बढ़ाता है। इसके प्रयोग से सिम्पैथेटिक नर्वस सिस्टम और स्पाइनल नर्वस सिस्टम क्रियाशील होते हैं। यह तासीर में गर्म (Heating), उत्तेजक (Stimulating) और शक्तिप्रद (Tonic) है। कफ के प्रकोप से होने वाले रोगों में इसका आश्चर्य जनक प्रभाव देखने में आया है। साहस, मनोबल, उत्साह आदि गुणों की वृद्धि इसके सेवन से होती है। रक्त में लाल कणों को बढ़ाना, यकृत-आन्त्र-गुर्दे-मूत्राशय को गतिशील करना, माँस पेशियों को स्वस्थ रखना इसके प्रमुख कार्य हैं। निम्न रक्त चाप के रोगियों के लिए तो यह अमृत तुल्य है। जोड़ों के दर्द, पक्षाघात आदि वात विकारों में भी इससे लाभ मिलता है।

शरीर में नारंगी रंग की अधिकता होने पर उल्टी, दस्त, मरोड़, मुँह में कुड़आहट, जी मिचलाना, घबराहट, दस्त, मरोड़, पेट दर्द, प्यास की अधिकता आदि रोग होते हैं। इस रंग की कमी होने पर सुस्ती, आलस्य अरुचि, भूख की कमी आदि रोग होते हैं।

थियोसोफिकल सोसायटी की संस्थापिका मैडम ब्लैवेट्स्की ने अपने कृति प्रैक्टीकल आकल्टिज्म में लिखा है कि नारंगी रंग का ध्यान करने से मानसिक दक्षता व ध्यान क्षमता बढ़ती है। बौद्धिक व भावनात्मक विकास पर इसका सकारात्मक प्रभाव है प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी रीनफेल्ड के अनुसार नारंगी रंग में सोना होता है।

हरा रंग—हरा रंग प्रकृति में न गर्म और न ठण्डा-मध्यम होता है। य त्रिदोष नाशक (वात-पित्त-कफ की न्यूनता-अधिकता को समान बनाकर व्यक्ति स्वस्थ बनाने वाला), शरीर में जमा गन्दगी को निकालने वाला और रक्त को

रंगों के प्रभाव पर हुए अध्ययन—अनुसंधान

एक बार पैन अमेरिकन एयरवेज के अधिकांश यात्री मितली—जी मिचलाना जैसे रोगों से ग्रस्त होने लगे। कारण समझ में नहीं आया। संयोग से एक रंग-विज्ञानी की दृष्टि चाकलेटी रंग से पुते वायुयान पर गई। तुरन्त रंग बदलकर हरा रंग कराया गया और शिकायतें दूर हो गईं। इसी प्रकार एक बार एक कारखाने को काले रंग से पोतने पर श्रमिकों को प्यास लगने और बार-बार पेशाब जाने की शिकायतें हो गईं। हरा रंग करने पर ये शिकायतें तुरन्त दूर हो गईं। प्रख्यात रंग विशेषज्ञ डा. गोल्ड स्फेन ने इन घटनाओं का उल्लेख करते हुए बताया है कि रंगों की दुनियां में समूचा मनोविज्ञान और स्वास्थ्य विज्ञान समाया हुआ है। रंगों के प्रसिद्ध अनुसंधान कर्त्ता हावर्ड कीथ का कहना है कि उपयुक्त रंग हमें स्वास्थ्य और ताजगी प्रदान करते हैं जबकि अनुपयुक्त रंग उत्तेजना और अशान्ति के जनक होते हैं इस्टीट्यूट आफ साइकोलोजी एण्ड जेनेटिक्स के संचालक डा. वेलियायेव का कथन है कि सूर्य किरणों से प्राप्त होने वाले रंग मनुष्य की जीवन-लय को नियंत्रित और व्यवस्थित कर मनचाही दिशा में मोड़ने की क्षमता रखते हैं। ऐसा होने पर अभीष्ट लक्ष्य की पूर्ति आसान हो जाती है।

"अरोगो दृढ़ गात्र: स्याद् भास्करस्य प्रसादत:"

अर्थात् सूर्य भगवान आरोग्य और सुगठित शरीर प्रदान करते हैं. अथर्ववेद का यह पावन व प्रेरक सूक्त हम सब को सूर्य भगवान की दिव्य शक्तियों की ओर प्रेरित करे।

प्रकृति के इस सर्व सुलभ वरदान का लाभ यदि व्यक्ति न उठा पाये तो इससे बड़ा दुर्भाग्य और क्या होगा ? □

स्वास्थ्य पत्रिका अनन्तप्रभा का 1989 चतुर्थ अंक सूर्य किरण एवं रंग-चिकित्सा विशेषांक है। आप चाहें तो छ: रुपये मनीआर्डर से भेजकर मंगा सकते हैं।

4

मन है स्वास्थ्य का कल्पवृक्ष

चरकसंहिता सूत्र-1-57 में उल्लेख है—

वायु:पित्तं कफश्चोक्त: शारीरो दोष संग्रह: ।
मानस: पुनरुद्दिष्टो रजश्चतम एव च ।।

अर्थात् रोगों के दो प्रमुख कारण हैं—पहला, वात-पित्त-कफ के रूप में शारीरिक दोष और दूसरा रज और तम के रूप में मानसिक दोष । ये शारीरिक और मानसिक दोष प्रज्ञापराध से प्रकुपित होते हैं और रोगों का कारण बनते हैं, जैसाकि स्पष्ट है—"प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोष प्रकोपणम्" (चरक) । आयुर्वेद के अनुसार प्रज्ञापराध ही सभी रोगों की जड़ है—प्रज्ञापराधं मूलं रोगाणाम । (चरक) आगे चरक संहिता सूत्र 7·52 में लिखा है—

ईर्ष्याशोक भय क्रोध मान द्वेषादश्च ये ।
मनोविकारस्तेऽप्युक्ता: सर्वे प्रज्ञापराधजा: ।।

अर्थात् ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, अहंकार और द्वेष आदि मन के विकार प्रज्ञापराध से उत्पन्न माने जाते हैं । इस प्रकार आयुर्वेद ने हजारों वर्ष पहले यह सिद्धान्त स्थापित किया कि रोग पहले मन में उपजते हैं और बाद में शरीर में प्रवेश करते हैं । आधुनिक चिकित्सा विज्ञानियों द्वारा अनेक परीक्षणों एवं खोजों के द्वारा महर्षि चरक के उक्त निष्कर्ष की पुष्टि की है । आज विशेषज्ञ इस बात को स्वीकारने लगे हैं कि दु:ख या तनाव के क्षणों में शरीर में ऐसे हारमोन्स स्रवित होते हैं जो शरीर को रोगग्रस्त कर देते हैं । आजकल कैंसर, अल्सर, कब्ज, सिरदर्द, रक्तचाप, हृदय रोग, अनिद्रा, लकवा, पागलपन आदि असाध्य समझे जाने वाले रोगों का सीधा सम्बन्ध मन के विकारों से जोड़ा जाने लगा है । 'Sound mind in a Sound Body' अंग्रेजी की इस कहावत को पूरी तरह सत्य मानते हुए भी प्राचीन ऋषियों के उस कथन पर ही विश्वास जमता है, जब उन्होंने कहा था संकल्प कल्पवृक्ष है ।

संकल्पशील मन से सुख, स्वास्थ्य, प्रसन्नता, आनन्द जो मांगो वही मिलता है। जब मन का पतन होने लगता है तो रोग-शोकादि मनुष्य आ घेरते हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—ये छः शत्रु निरन्तर मन को पतन की ओर ले जाते हैं। चरकाचार्य ने ईर्ष्या, द्वेष, भय और शोक की गिनती भी इन्हीं दुर्जय शत्रुओं में की है, जो मनुष्य की हरी-भरी बगिया में चुपके से पतझर के बीज डाल देते हैं।

विकृत मनोभाव स्वास्थ्य के लिए घातक—'प्रज्ञापराध मूलं रोगाणाम' कहकर आयुर्वेद ने प्रज्ञापराध अर्थात् बुद्धि के नियन्त्रण से मुक्त हुए मन में उपजी विकृतियों को रोगों का मूल कारण माना है। ये विकृतियाँ मनुष्य के आहार-विहार और आचार-विचार सबको भ्रष्ट कर देती हैं और इसका परिणाम होता है—रोग! आधुनिक अनुसंधानकर्त्ताओं ने विकृत मनोभावों का स्वास्थ्य पर पड़ने वाले घातक प्रभावों का गहरा अध्ययन किया है और जो निष्कर्ष सामने आये हैं वे चौंकाने वाले हैं। एक अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार घृणा और ईर्ष्या के भाव पैदा होने पर व्यक्ति के शरीर से 'एम्फेटेमीन' नामक रसायन स्रवित होने लगता है। रिपोर्ट के अनुसार ये मनोविकार व्यक्ति में निष्क्रियता, नीरसता और निर्जीवता पैदा करते हैं। नेशनल इन्स्टीटयूट आफ मेण्टल हैल्थ के डा. रिचार्ड विट की खोजों के अनुसार 'हिस्टोरोइड डिस्फोरिया' नामक मनोरोग ईर्ष्या-द्वेष और विरोध की भावना रखने के कारण पैदा होता है। ऐसे रोगियों के मूत्र में पी. ई. ए. की मात्रा स्पष्ट देखी जा सकती है। 'न्यूयार्क स्टेट सइकिएट्रिक इन्स्टीट्यूट आफ डिप्रेशन इवेल्यूएशन सर्विस' के विशेषज्ञ सुप्रसिद्ध मनःशास्त्री डोनाल्ड एफ क्लेन ने भी इस रोग की उत्पत्ति का कारण मनोभावों में विद्यमान ईर्ष्या, द्वेष और घृणा रूपी राक्षस को ही माना है। मनःशास्त्री कहते हैं कि मस्तिष्क ही समूचे शरीर तन्त्र का संचालक है। शान्त और प्रसन्न मन जहाँ स्वस्थ्य और सुख-शान्ति के द्वार खोलता है वहाँ उद्विग्न मन स्वास्थ्य पर घातक प्रभाव डालता है। उत्तेजना और तनाव से व्यक्ति में आँतों के अलसर से लेकर रक्तचाप, पक्षाघात और हृदयाघात जैसे प्राणलेवा रोग पैदा हो जाते हैं।

'साइकोसोमैटिक मेडिसिन' के कृतिकार प्रसिद्ध मनोविज्ञानी डा. ओ. एस. इंजिलिस ने कहा है कि शारीरिक रोग के पीछे प्रायः मानसिक विक्षुब्धता होती है। इस दवाव से क्षय, कैंसर आदि भयानक रोग पैदा होते हैं। मूर्धन्य मनोविज्ञानी डैनियल ट्यूक ने 'इन्फ्लूएन्स ऑफ दी माइण्ड अपॉन दी बॉडी' में लिखा है कि व्यक्ति अपने अनैतिक आचरण को प्रायः छिपाता है और इस प्रकार पापकर्मों को छिपाने से या दूषित भावनाओं के गहराई से जड़ें जमा लेने से माइग्रेन; एक्जिमा, ट्यूमर और पाचन सम्बन्धी गड़बड़ियाँ होती हैं। विशेषज्ञों के अनुसार अधिकांश बीमारियों की जड़ साइकोसोमैटिक अर्थात् मनोकायिक है। सर्दी-जुकाम, त्वचारोग, एलर्जी,

ट्यूमर, दर्द, आंधाशीशी, अल्सर, पेट के रोग, दमा, क्षय, कैंसर, रक्तचाप, हृदयरोग, अनिद्रा, पक्षाघात आदि रोग चिन्ता, तनाव, पापपूर्ण कर्म, विकृत चिन्तन, अप्रसन्नता, ईर्ष्या और द्वेष से पैदा होते हैं। डॉ. फिलैन और डॉ. बेटलहीम ने इस सम्बन्ध में हजारों रोगियों का अध्ययन एवं परीक्षण करके यह निष्कर्ष निकाला है कि मनोविकृतियाँ और भावोद्वेग शरीर की प्रतिरोधी क्षमताओं को जर्जर करके रख देते हैं। फलस्वरूप बीमारियों के विषाणु शरीर में रोग पैदा कर देते हैं। अनुसंधानकर्ताओं ने सभी पहलुओं का अध्ययन करके निष्कर्ष निकाला है कि मानसिक उद्वेग व विकार हार्मोनल असन्तुलन पैदा करते हैं, स्नायुतन्त्र पर घातक प्रभाव डालते हैं और अन्ततः रोगनिरोधक क्षमता को नष्ट प्रायः कर मनुष्य को मृत्यु के मुख में जाने तक तड़पता हुआ छोड़ देते हैं।

डा. अरोल व केनन के परीक्षण यह सिद्ध करते हैं कि क्रोध से उत्पन्न विषाक्त शर्करा पाचन के लिए विष है। यह रक्त को दूषित कर नसों में तनाव व कमर दर्द पैदा करती है। डा. जे. एस्टर ने एक अध्ययन के बाद कहा है कि पन्द्रह मिनट क्रोध की अवस्था में रहने से क्रोध की अग्नि उतनी शक्ति जला डालती है, जितनी शक्ति नौ घण्टे कठोर श्रम करने के बाद खर्च होती है! क्रोध अन्तर में उठता हुआ एक ऐसा तूफान है जो मन, बुद्धि और शरीर—सबको उजाड़कर रख देता है। बाईबिल में क्रोध को भयंकर विषैले सर्प की संज्ञा दी है। डा. जार्ज विलियम कहते हैं कि चिन्ता मस्तिष्क के जीवकोष्ठों और ज्ञानतन्तुओं को राख करके रख देती है। डा. जैकोबी ने लिखा है कि चिन्ता धीमा विष है जो मनुष्य को धीरे-धीरे मार डालती है। प्रख्यात मनोवैज्ञानिकों ने दोहरे व्यक्तित्व और उससे उत्पन्न हुए द्वन्द्व को रोगों का महत्त्वपूर्ण कारण माना है। मनोअध्येता फ्रायड ने इसे 'ईड' और 'सुपरइगो' के बीच का द्वन्द्व माना है। एरिक फ्राम 'मैन फार हिमसैल्फ' में लिखते हैं कि अधिकांश रोगों का कारण नैतिक होता है। प्रायः मनुष्य दो प्रकार के व्यक्तित्व लेकर चलता है—एक वास्तविक व्यक्तित्व और दूसरा पाखण्डी व्यक्तित्व। पाखण्डी व्यक्तित्व छल-दुराव-ढोंग का प्रतीक है। इन दोनों के बीच भयंकर द्वन्द्व चलता है और यही रोगों को जन्म देता है। भारतीय चिन्तन एक अन्य प्रकार के द्वन्द्व का भी चित्रण करता है। यह द्वन्द्व है ज्ञान, विचार और कर्म का। व्यक्ति की बुद्धि या अन्तरात्मा अच्छे-बुरे की पहचान जानती है, किन्तु मन हमेशा शुभ संकल्प या कल्याणकारी विचारों से युक्त नहीं रहता। उसमें प्रायः अशुभ और विकृत विचार पैदा होते रहते हैं। इस प्रकार ज्ञान और विचारों में द्वन्द्व होने लगता है। इसके बाद कर्म की स्थिति आती है। व्यक्ति उचित-अनुचित की कसौटी पर कसकर सदैव करणीय कर्म नहीं करते। वे प्रायः अकरणीय व मन या इन्द्रियों को प्रिय लगने वाले व्ययों में ही लिप्त रहते हैं। यह स्थिति इस द्वन्द्व को और भी बढ़ाती है। उसके सोचने-समझने और करने

में एकरूपता नहीं रह पाती। धीरे-धीरे विवेक-बुद्धि का नियन्त्रण मन पर से पूरी तरह से समाप्त होने लगता है और यह स्थिति जन्म देती है—एक खण्ड-खण्ड टूटे हुए कुण्ठित व्यक्तित्व को, जो संसार सागर में पतवार विहीन नौका के समान इधर-उधर भटकता रहता है—स्वास्थ्य और सुख-शान्ति से दूर बहुत दूर जहाँ रोग-शोक का साम्राज्य होता है।

मन में उगता है स्वास्थ्य का कल्पवृक्ष

भारतीय शास्त्रों में मन को कल्पवृक्ष कहा गया है। कल्पवृक्ष के नीचे खड़े होकर जो माँगो वही मिलता है—अभिशाप भी और वरदान भी। रोग-शोक निर्लज्ज नहीं हैं, स्वाभिमानी हैं। बार-बार बुलाने पर ही आते हैं। मिथ्या आहार-विहार और विकृत आचार-विचार के आमंत्रण जब बार-बार रोगों का द्वार खटखटाते हैं तब जाकर रोगों की कुम्भकर्णी नींद खुलती है और वे बड़ी शान से शरीर में आकर अड्डा जमा लेते हैं। श्रुतिसार का कथन है कि संयम ही स्वास्थ्य का मूलमन्त्र है—असंयमित भोग ही रोग के कारण होते हैं, इसीलिए 'भोगे रोग भयम' कहा गया है। भोग और रोग में चोली-दामन का संग है, अतः जो व्यक्ति स्वस्थ और दीर्घजीवी बनना चाहते हैं उन्हें इच्छाओं पर नियन्त्रण रखना चाहिए। भोगाग्नि कभी भोग भोगने से शान्त नहीं होती। वह तो भोग भोगने से उसी प्रकार बढ़ती है जैसे घी डालने से अग्नि। आगे उल्लेख है—मन में उत्पन्न होने वाली सभी साध्य-असाध्य बीमारियों का मन की स्थिति से घनिष्ठ सम्बन्ध है—क्योंकि मन के संकल्प-विकल्प भयंकर रोग पैदा करते हैं अतः प्रत्येक मानव को मिथ्या चिन्तन से बचकर मन को स्थिर रखने का प्रयत्न करना चाहिये। वेदों में बार-बार उद्‌घोष है—तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु' अर्थात् मन शुद्ध संकल्प वाला हो।

शिव संकल्प वाला मन मनुष्य को आरोग्य, दीर्घायु, सुख-शान्ति आदि सब प्रदान करता है। शास्त्र कहते हैं—**'यन्मनसा ध्यायति, तद्वाचा वदति, यद्वाचा वदति, तत्कर्मणा करोति।'** अर्थात् मन में जो विचार किया जाता है, वही मुख से बोला है, और वही किया जाता है। मन में यदि शुभ विचार आयेंगे तो वाणी और क्रिया में भी वही श्रेष्ठता प्रकट होगी और अन्ततः मनुष्य वैसा ही बन जायेगा।

कैसे उगायें स्वास्थ्य का कल्पवृक्ष—श्रेयस की आराधना—मन की दो गतियाँ होती हैं—पहली गति है प्रेय की ओर बढ़ना अर्थात् मन को जो अच्छा लगता है वह उसी को भोगना चाहता है। इस दशा में इन्द्रियाँ स्वच्छन्द होती हैं, वे इच्छानुसार भोग भोगती हैं और अन्त में शरीर और आत्मा के पतन का कारण बनती हैं, गीता 16·21 में स्पष्ट लिखा है कि काम, क्रोध, और लोभ—ये साक्षात् नरक के द्वार हैं। चाणक्य नीति भी कहती है कि जो जन्म से अन्धा है, लोभ से अंधा है,

स्वार्थ में अन्धा है और जो कामान्ध है उसे कुछ भी दिखाई नहीं देता । चरकसंहिताकार के अनुसार ईर्ष्या, द्वेष, भय, अहंकार, द्वेष आदि मनोविकार हैं और इनमें विचरण करना मन का स्वभाव है । दूसरी गति है श्रेय की ओर बढ़ना अर्थात् विवेक-बुद्धि के अनुसार श्रेष्ठ और कल्याणकारी मार्ग पर चलना । दया, प्रेम, सत्य, क्षमा, सहयोग, परोपकार, ईश्वर भक्ति आदि गुण मन के भूषण हैं । मन का यही मार्ग श्रेयमार्ग है । यही वह आधार भूमि है जहाँ स्वास्थ्य का कल्पवृक्ष उगता है । प्रसिद्ध मनीषी नारायण दत्त रावल लिखते हैं—

भगवान ने जन्म देकर हमें दो मार्गों के बीच खड़ा कर दिया । जिधर चाहो, उधर जाओ । वे दो मार्ग हैं—'श्रेय और प्रेय ।' यदि हम श्रेय-मार्ग की ओर जाते हैं तो हमें मनोनिग्रह और आत्म-संयम की सीढ़ियों से ऊपर चढ़ना पड़ेगा, फलस्वरूप धर्म में हमारी आस्था मजबूत बनेगी और आत्मतृप्ति का आनन्द लेते हुए हम उस ओर प्रगति कर सकेंगे । यदि प्रेय मार्ग की ओर हम जाते हैं तो अधर्म में हमारी आस्था मजबूत बनेगी । यह मार्ग नीचे जाने का मार्ग है । बिना किसी सहारे के इस मार्ग पर जल्दी-जल्दी हम आगे बढ़ते हैं और दुःख के सागर में डूब जाते हैं ।

मनुष्य स्वतन्त्र है, वह जैसा चाहे, करे । बबूल के बीज बोने हैं या आम के, कांटे चाहिए या सुन्दर स्वादिष्ट फल—यह निर्णय हमें ही करना है । जैसा बीज होगा, वैसा फल मिलेगा । कर्ता मनुष्य और फलदाता भगवान ! इसे समझ कर यदि हम सावधान हो गये तो बेड़ा पार है । यदि हममें आत्म-संयम है तो हम चाहे जिस मार्ग पर जायें, हर समय हमारा मुँह सही दिशा में ही रहेगा और आत्मबल के सहारे सभी रुकावटों को चीरते हुए हम आगे बढ़ सकेंगे । जीवन के लिए संयम ही एक मात्र सहारा होता है । यही स्वास्थ्य और आनन्द का कल्पवृक्ष है ।

मूर्धन्य मनोवेत्ता विलियम जेम्स ने अपनी कृति 'द गास्पेल आफ रिलैक्सेशन' में लिखा है कि मानसिक चिन्ताओं और विकृतियों से मुक्ति पाने की इससे बड़ी कोई औषधि नहीं कि अपने को नियन्ता के हाथों सौंपकर निश्चिन्त हो जाया जाये । आधुनिक युग के महान् सन्तविचारक स्वामी शिवानन्द लिखते हैं—तुम अपनी सांसारिक इच्छाओं की कैद में बन्द हो । उससे छूटने के लिए यदि सब प्रकार से प्रभु-चरणों में अर्पित कर दोगे तो तुम्हारी रक्षा होगी और तुम्हें सच्चा सुख मिलेगा ।

ध्यान की संजीवनी—श्रेयस की आराधना से यदि मन का कल्पवृक्ष उगता है तो ध्यान उसके लिए खाद और प्रकाश का कार्य करता है । आयुर्वेद प्रवर्तक भगवान् धन्वन्तरि से लेकर आधुनिक अनुसंधानकर्ताओं तक, सबने आरोग्य-रक्षा के लिए चित्त-वृत्तियों की भूमिका को एक मत से स्वीकार किया है । ध्यान बिखरी और अनियंत्रित चित्तवृत्तियों को एकाग्र कर उनको कल्याणकारी एवं शिवसं[illegible] से युक्त बनाता [illegible]

और शिवसंकल्पों से युक्त मन का मिथ्या आहार-विहार या विकृत आचार-विचार से कोई सम्बन्ध नहीं जुड़ता। दूसरी ओर रोग हो जाने पर भी ध्यान से आरोग्य प्राप्त हो जाता है। ध्यान से मस्तिष्क व अन्तराल में बिखरी और प्रसुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो उठती हैं। इनके जाग्रत होते ही रोग और दुःख उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे दीपक की वर्तिका अन्धकार का नाश करती है। पैरासाइकोलॉजी के विख्यात मनीषी डेविड जॉनसन ने "आटोनामिक स्टैबिलिटी एण्ड मैडीटेशन" पर अपने अनुसंधान में यह निष्कर्ष निकाला है कि ध्यान के द्वारा तन्त्रिकातन्त्र के क्रिया-कलापों में नई चेतना आ जाती है। इससे मनःकायिक बीमारियाँ दूर होती है। अशान्ति व तनाव घटता है, मस्तिष्क शान्त रहता है, नाड़ी की गति कम होती है तथा व्यक्ति में उत्साह, स्फूर्ति एवं नवीन चेतना की लहरें उठने लगती हैं। ध्यान से रक्त में उपस्थित लैक्टिक एसिड की मात्रा 50% कम हो जाती है। यह तत्त्व ही वास्तव में भय, निराशा, तनाव और उदासी का कारण होता है। वे आगे लिखते हैं कि ध्यान शरीर के एम्यून सिस्टम (रोग प्रतिरोधी क्षमता) को सशक्त बनाकर शक्ति का संरक्षण और भण्डारण करता है। हर्बट बेन्सन और राबर्ट कीथ ने उच्चत रक्तचाप के 22 व्यक्तियों को ध्यान का अभ्यास कराया गया और ध्यान के बाद 1119 बार उनका ब्लडप्रैसर लिया गया। वैज्ञानिक द्वय हैरान रह गये यह देखकर कि हर बार उनको रक्तचाप में सुधार पाया गया। अन्त में ध्यान के द्वारा उनको रोगमुक्ति मिली। डा. डोनाल्ड ने 'निद्रा पर ध्यान का प्रभाव' पर अनिद्रा से ग्रस्त पचास व्यक्तियों पर अनुसंधान किया और निष्कर्ष निकाला कि ध्यान से अनिद्रा को जीता जा सकता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक हर्बट बेंसन और राबर्ट कीथ ने तनाव, रक्तचाप, श्वास-खाँसी के 1862 व्यक्तियों को ध्यान का अभ्यास कराया। इससे न केवल उनकी सिगरेट पीने की आदत छूटी, अपितु अन्य रोगों में भी सुधार हुआ। थियोफेर नामक वैज्ञानिक का तो यह स्पष्ट मत है कि ध्यान, घबराहट, उत्तेजना, तनाव, स्वार्थपरता, ईर्ष्या, क्रोध, साइकोसोमैटिक बीमारियाँ आदि का अव्यर्थ उपाय है। ध्यान से आत्मविश्वास, सन्तोष, सहनशक्ति, कार्यक्षमता, विनोदप्रियता, एकाग्रता आदि शक्तियों में वृद्धि होती है।

लोकमान्य तिलक के अंगूठे का आपरेशन कर चुकने के बाद डाक्टरों ने पूछा आपने बेहोशी की दवा का प्रयोग भी नहीं किया और आप पूरे आपरेशन के समय शान्त रहे, इसका क्या कारण है? तिलक ने उत्तर दिया—आप देख नहीं रहे थे, मैं गीता पढ़ रहा था पूरी तन्मयता के साथ।

वेलिंगटन विश्वविद्यालय के अनुसंधानकर्त्ता टाम जे रौट ध्यान के प्रभाव सम्बन्धी निष्कर्षों को देखकर खुशी से उछल पड़े थे और उनके मुख से निकला था

कि जब रोगों को दूर करने की इतनी शक्ति ध्यान में है तो स्वस्थ व्यक्ति यदि ध्यान का अभ्यास करे तो चमत्कार ही हो जायेगा। प्राचीन आयुर्वेदज्ञ महर्षियों, योगाचार्यों और आधुनिक अनुसंधानकर्त्ता—इन सबके दृष्टिकोण के आधार पर कहा जा सकता है—1. ध्यान मन में शिव संकल्प जगाकर स्वास्थ्य, दीर्घजीवन और सुख-शान्ति के द्वार खोलता है। 2. ध्यान से मन की चंचलता और अस्थिरता समाप्त होती है, फलस्वरूप न मानसिक विकृतियाँ जन्म लेती हैं और न व्यक्ति प्रज्ञापराध (जो रोगों का आधारभूत कारण है—प्रज्ञापराध मूलं रोगाणाम-चरकाचार्य) करता है। उसके आचार-विचार और आहार-विहार शुद्ध बने रहते हैं। ऐसी स्थिति में रोग पैदा होने का प्रश्न ही नहीं उठता। 3. ध्यान से मन की बिखरी और सोयी हुई शक्तियों का जागरण और भण्डारण होता है। ये शक्तियाँ एक ओर जीवनीय शक्ति को बढ़ाती हैं और दूसरी ओर उत्पन्न हुए रोगों को नष्ट करती हैं। इतना ही नहीं, विभिन्न वैज्ञानिक अनुसंधानों और आविष्कारों ने आज ध्यान के इन चमत्कारों को प्रत्यक्ष कर दिया है। मस्तिष्क की शक्तियाँ या धारायें चार भागों में बँटी होती हैं जिन्हें वैज्ञानिकों ने अल्फा, बीटा, थीटा और डेल्टा नाम दिया है। ई. ई. जी मशीन के द्वारा इनको अलग-अलग अंकित किया जाता है। मशीनों द्वारा किये गये परीक्षणों से अब यह सिद्ध हो गया है कि ध्यान की अवस्था में व्यक्ति गहन शान्ति में रहता है। वैज्ञानिक भाषा में इसे 'अल्फा स्टेट' कहते हैं। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक द्वय पेनफील्ड और जैस्फर ने महान वैज्ञानिक आइंस्टीन की उपलब्धियों को अल्फा स्टेट की ही देन माना है।

कैसे साधें ध्यान की कला—बाहरी सफाई और सजावट की ओर सबका ध्यान जाता है। शरीर गन्दा न हो, इसके लिए रोज स्नान करते हैं—साबुन-शैम्पू-उबटन आदि के द्वारा उसे साफ रखते हैं। कीचड़ में पैर पड़ते ही उसे तुरन्त धो डालते हैं। किन्तु मन गन्दा होने पर उसे शुद्ध करने की ओर कितने व्यक्तियों का ध्यान जाता है? घर को सजाकर रखते हैं, ड्राइंग रूम की साज-सज्जा में कोई कसर बाकी नहीं रखते, अपने शरीर के शृंगार के लिए 'ब्यूटी पार्लर' जाते हैं, किन्तु मन के शृंगार के लिए क्या करते हैं? मन को शृंगारित करने की कला का नाम ही ध्यान है। कँटीली झाड़ियाँ अपने आप उग आती हैं, सुन्दर पेड़-पौधे लगाने पड़ते हैं, उनकी देखभाल निरन्तर करनी पड़ती है। काम, क्रोधादि की कँटीली झाड़ियों को साफ कर मन को सत्य, क्षमा, प्रेमादि के पुष्पों से सजाने की प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है। जो कुछ शुभ है, करणीय है, कल्याणकारी है, उसे करने में मन की पूरी शक्ति लगे, इस प्रक्रिया का नाम ही ध्यान है।

आचार्य विनोबा भावे के विचार—

ध्यान की स्थूल प्रक्रिया—अपने मन की अनेक इच्छाओं में तुलना करके

देखिये कि उनमें से सबसे प्रबल इच्छा कौन-सी है ? शेष इच्छाओं को छोड़कर उसी एक इच्छा की धुन लगने दीजिए। उसी में अपना चित्त एकाग्र कीजिए। आज के प्रयोग कर्त्ता भौतिकी वैज्ञानिक ऐसा ही करते हैं। वे अपना सारा ध्यान और शक्ति अपने प्रयोग पर लगाते हैं।

ध्यान की सूक्ष्म प्रक्रिया—इस प्रक्रिया में स्थूल वासना त्यागिए और सूक्ष्म ग्रहण कीजिये, यह युक्ति बताई जाती है। यदि सज-धज का शौक है तो शरीर को सजाने की अपेक्षा अन्तरंग को सजाओ, अपनी बुद्धि को सजाओ, चतुर बनो। नई विद्या प्राप्त करो, कला सीखो। शरीर के स्थूल शृंगार की अपेक्षा यह बौद्धिक शृंगार सूक्ष्म है। इससे भी सूक्ष्म शृंगार है हृदय को शुभ गुणों से मण्डित करना। शरीर को सुगन्धित करने वाले इत्र की अपेक्षा बुद्धि-चातुर्य अधिक सुगन्धित इत्र है और उससे भी अधिक सुगन्धित इत्र है हृदय की शुभ-गुण-सम्पदा। बाह्य शृंगार की अपेक्षा अन्तःशृंगार से जीवन की शोभा विशेष बढ़ेगी। शोभा का स्थूल रूप छोड़िये और सूक्ष्म रूप गहिये और उसी में अपनी पूरी शक्ति लगा दीजिए।

एक बार सन्त विनोबा से किसी ने पूछा—"आपको ध्यान योग का पारंगत माना जाता है। कृपया उसका विधान बताइये ?" उत्तर में उन्होंने कहा "मैं जो सोचता या करता हूँ, उसमें समग्र तन्मयता केन्द्रीभूत कर देता हूँ। सोचता हूँ उस समय यही कार्य मेरे लिए सर्वोपरि महत्त्व का है। इस सन्दर्भ का चिन्तन ही मेरे लिए अभीष्ट है। इसे करने में मुझे इस प्रकार जुटना है कि शक्ति का एक कण भी बिखरने न पाये। यही वह विधान है जिसे मैं अपने हर कृत्य में अपनाता हूँ। इस प्रकार जाग्रत स्थिति में निरन्तर ध्यान योग में तल्लीन रहता हूँ। यहाँ तक कि विश्राम के समय भी यही मनःस्थिति रहती है। फलतः थोड़े समय का विश्राम भी पूरी तरह थकान मिटा देता है।"

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य कहते हैं कि हम प्रत्येक कार्य को सर्वोपरि महत्त्व का समझें और चिन्तन तथा कर्म से उसी में घुल जायें तो समझना चाहिये कि व्यावहारिक जीवन में हम ध्यान योगी हो गये। फलतः जो भी करेंगे वह सफल और शानदार होगा।

स्वामी शिवानन्द का उदाहरण—किसी किसान के पास बड़ा प्रमत्त एक सांड था। वह घर पर ही बैठ कर घास सानी कुछ नहीं खाता था, इधर-उधर फिरता, पड़ोस के खेतों में घुस जाता और लहलहाती फसलों को उखाड फैंकता। किसान ने सांड को घर पर खिलाने-पिलाने की बहुत कोशिश की, पर सब बेकार हुआ। सांड बारम्बार बाहर चला जाता था। किसान ने अपना प्रयत्न जारी रखा और पुनः-पुनः सांड को अपने घर पर ही खिलाया पिलाया। शनैः-शनैः सांड ने यहां के भोजन का स्वाद पहचाना और बाहर घूमना बन्द कर दिया। यहीं खाने लगा।

इसी तरह भ्रमणशील मन काबू में किया जा सकता है। एक उत्तम साधक के लिए कुछ कठिन नहीं। मन आवारा सांड़ की तरह है। इसके सामने ध्येय रूप में राम, कृष्ण या शिव की किसी सगुण प्रतिमा को रखिये। मन जितनी बार बाहर जाता है, फिर लाकर इसी पर टिकाइये। इस धारणा के अभ्यास में जब आप पटु हो जाते हैं तो 'अहं ब्रह्मस्मि' का निर्गुण ध्यान प्रारम्भ कर सकते हैं। मन इधर-उधर दौड़ना ही छोड़ देता है। यह ध्यान के आस्वाद को समझेगा और ब्रह्मस्वरूप में निमज्जित होता रहेगा।

ध्यान आधि (मानसिक विकृतियाँ) और व्याधि (शारीरिक रोग) को दूर करने के लिए प्राचीन ऋषियों द्वारा दिया गया वरदान है। वह दिन दूर नहीं जब रोग-शोक से पीड़ित मानवता अस्पतालों के स्थान पर ध्यान केन्द्रों में अपने कल्याण का मार्ग खोजेगी।

इच्छा शक्ति व मनोबल के चमत्कार

वैदिक ऋषियों ने हजारों वर्ष पहले मन को कल्पवृक्ष कहकर सम्बोधित
किया था। सदियों तक भारत के जन-जन ने इस सत्य को अनुभवों की कसौटी पर
कसा, फलस्वरूप मन के हारे हार है, मन के जीते जीत अथवा मन चंगा तो कठौती
में गंगा जैसी लोकोक्तियाँ जन-जन में प्रचलित हो गई। जामवन्त ने हनुमान की
मन:शक्ति को जगाया तो समुद्र लाँघना उनके लिए आसान हो गया। अनेक भारतीय
योगी आज भी इच्छाशक्ति के द्वारा असम्भव प्रतीत होने वाले कार्यों को सम्भव कर
दिखाते हैं। सुप्रसिद्ध मनोवेत्ता एल्मर ग्रीन कहते हैं कि शरीर पर मन का अधिकार
है। शरीर वही करता है जो मन का चेतन, अचेतन, अवचेतन और सुपरचेतन भाग
उससे कराता है। मन को प्रशिक्षित व नियन्त्रित करके सभी शारीरिक अंगों,
कोशिकाओं आदि को वश में किया जा सकता है और दर्द, तनाव और यहाँ तक कि
असाध्य करार दिये कैंसर का उपचार भी इच्छाशक्ति के बल पर किया जा सकता
है। जिस दवा या चिकित्सक पर रोगी को विश्वास होता है, उस रोगी को ठीक होने
में देर नहीं लगती। छोटे रोग को भयंकर रोग मान लेने पर वही रोग भयंकर हो
जाता है। मन का विश्वास जग जाये तो भयंकर रोग भी समूल नष्ट हो जाते हैं।
यह सब कैसे होता है, इस पर अनेक अनुसंधान हुए हैं। अनुसंधानकर्त्ता जे कामिया
और डा० ब्राउन कहते हैं कि शरीर से निकलने वाली विद्युतीय तरंगें इच्छाशक्ति से
संचालित होती हैं। यदि इनमें परिवर्तन या परिवर्धन किया जाये तो न केवल रोगों
को दूर किया जा सकता है अपितु स्वास्थ्य को भी अक्षुण्ण रखा जा सकता है। दृढ़
इच्छाशक्ति के द्वारा जो व्यक्ति विद्युत तरंगों में वांछित परिवर्तन नहीं कर सकते
वे इलैक्ट्रोमायोग्राफ के द्वारा इच्छाशक्ति के लाभों को प्राप्त करते हैं। अनेक रोगों

पर परीक्षण किये गये हैं। रोगी इलैक्ट्रोमायोग्राफ पर अपनी पेशियों द्वारा छोड़ी गई विद्युत-चुम्बकीय तरंगों को देखता है और निर्देशों (Auto Suggestions) के द्वारा उनमें वांछित परिवर्तन करता है। डा. एडमण्ड डेवान ने इस विधि के द्वारा पक्षाघात के रोगियों की संकल्पशक्ति जगाकर आशातीत सफलता पाई थी। वे लिखते हैं कि मांसपेशियों की निष्क्रियता और तनाव को इस विधि के द्वारा सरलता से दूर किया जा सकता है। मन में विश्वास जगाकर दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ स्व संकेतों (Auto Suggestions) के द्वारा रोगों को दूर करने की विधि अब आश्चर्यजनक नहीं रही। ' 'मैं स्वस्थ हो रहा हूँ', 'मेरा रक्तचाप दूर होता जा रहा है.' 'मैं अमृत पुत्र हूँ,' 'मैं असीमित शक्तियों का पुंज हूँ,' 'रोग मेरे सामने कैसे टिक सकते हैं'—दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ इस प्रकार के स्वनिर्देश नियमपूर्वक लेते रहने से असाध्य समझे जाने वाले रोग भी ठीक होने लगते हैं और व्यक्ति का जीवन पुन: स्वास्थ्य के सुन्दर सुमनों से महकने लगता है।

आधुनिक युग के मनीषी पं. श्रीराम शर्मा आचार्य इच्छाशक्ति को मनुष्य के हाथ में ईश्वर या विशेष वरदान मानते हैं। वे लिखते हैं कि मानवी सत्ता के तीन पक्ष होते हैं—शरीर, मस्तिष्क और अन्त:करण। इनमें काम करने वाली जीवट को प्राणाग्नि, विद्युत्चेतना, 'लोगोस,' 'वायोइलेक्ट्रोसिटी' आदि नामों से पुकारा जाता है। यही क्रमश: ओजस्, तेजस् और वर्चस् हैं। आरोग्य का उद्गम यही है। नाड़ियों में, मांसपेशियों में, जीवकोषों में इसी का प्रभाव काम करता है। इसे दुर्भाग्य कहना चाहिये कि हम शरीर भर को देखते हैं। इसके पीछे काम करने वाली अदृश्य शक्ति को नहीं पहचानते। फ्रांस के विख्यात परामनोविज्ञानवेत्ता डा. पाल गोल्डीन के अनुसार मनुष्य के पास असीम सामर्थ्य के रूप में इच्छाशक्ति विद्यमान है, जो सभी इन्द्रियों से अधिक शक्तिशाली और अद्भुत है। प्रसिद्ध मनोवेत्ता डा. ह्वाटले ने अनुसंधान के बाद निष्कर्ष निकाला है कि जो व्यक्ति अपनी इच्छाशक्ति को प्रबल और व्यवस्थित बना लेते हैं, वे शक्ति के पुंज बन जाते हैं। जिस दिन व्यक्ति इच्छाशक्ति को समझ लेगा, उसका जीवन स्वास्थ्य और सुख-समृद्धि की अनन्तप्रभा से जगमगाने लगेगा।

शिव संकल्प : स्वास्थ्य के मूल मन्त्र—"मेरी जीने की इच्छा ने मुझे हँसने और शुभ संकल्प करने के लिए प्रेरित किया। ईश्वर का चमत्कार कहें या प्रसन्नता और शुभ संकल्पों के वरदान—मैं धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगा और इसी के साथ मुझे जीवन का मूल मन्त्र भी मिल गया।" यह कहानी है असाध्य रोग से ग्रस्त एक डाक्टर की जो मौत को अंगूठा दिखाकर अमेरिका के विश्वप्रसिद्ध चिकित्सकों के सामने खड़ा मुस्करा रहा था— मानो कह रहा हो कि प्रसन्नता और शिवसंकल्प की

पूँजी जिसके पास होती है, रोग उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। डा. नार्मन कजिस हड्डियों के बीच के कार्टिलेज की डिजेनरेटिव व्याधि से पीड़ित थे। बिस्तर पर लेटे रहना और दर्दनाशक दवाओं के सेवन के साथ-साथ मृत्यु की प्रतीक्षा करते रहना शायद उनकी नियति बन जाती यदि उनके मन में शिवसंकल्प उदित न होते। डा. कजिस की मान्यता थी कि पॉजीटिव इमोशंस, प्रसन्नता और प्रकृति की खुली गोद में विचरण करने से शरीर में पॉजीटिव विद्युत्धाराओं को दौड़ाया जाना सम्भव है। और ऐसा होने पर कोई भी रोग असाध्य नहीं कहा जा सकता।

जर्मन दूरदर्शन की उद्घोषिका कुमारी पेट्राक्रान्स के जीवन की कहानी भी कुछ इसी तरह की है। जख्मी रीढ़ की हड्डी और बेकार टांगें—ऐसा कुछ भी नहीं जो जीने की लालसा जगाता हो। "जाओ और ईश्वर के गुण गाओ"—डाक्टरों ने छुट्टी करदी तो उसके मन में लोक कल्याण की भावनाओं का ज्वार लहरा रहा था। उसे इंजील की यह बात याद हो आयी थी—"सामर्थ्य का स्रोत अन्दर है। उनकी बातों पर ध्यान मत दो जो अन्दर विद्यमान ईश्वर के राज्य की अवहेलना करते हैं।" उसके मन का दीपक जल उठा। वह सोचने लगी कि मुझे इस स्थिति तक पहुँचाने में ईश्वर का कोई प्रयोजन रहा होगा। शायद निराश और हतोत्साहों में विश्वास की ज्योति जगाना ही मेरी इस स्थिति का प्रयोजन हो। मैं लोगों में आशा, उत्साह और विश्वास की ज्योति जगाऊँगी। आज वही अपंग और विकलांग रोगिणी अपने सद्विचारों से जर्मनवासियों की हृदय साम्राज्ञी बनी हुई है। जिस दिन कमल-सा खिला उसका चेहरा जर्मनवासी टी. वी. पर नहीं देखते, दूसरे दिन टी. वी. केन्द्र पर अपार जन-समूह और पत्रों के अम्बार लग जाते हैं।

वृहदारण्यक उपनिषद् में कहा है कि व्यक्ति जैसा संकल्प करता है, वैसा ही बन जाता है। वेदों में बारम्बार यह उद्घोष है—"ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु" अर्थात् मन जो प्रकाशों में से प्रकाश है, शिव संकल्पों वाला हो। "सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया" अर्थात् सब सुखी और निरोगी हों, जैसे विचार; 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' जैसी उदात्त भावना और 'वसुधैव कुटुम्बकं' जैसे व्यापक संदेश मन में शिवसंकल्प जगाने वाली वैदिक ऋचाएँ हैं। ये [illegible] और लोक कल्याण के मन्त्र हैं। इनको अपनाने भर से दैहिक, दैविक और [illegible] ताप (रोग-शोकादि) नष्ट हो जाते हैं। पाश्चात्य विचारक 'टायलर' [illegible] क्रिएटीविटी' में लिखते हैं कि हमारा स्वास्थ्य, क्रिया-कलाप, सफलता [illegible] सभी कुछ हमारे संकल्पों की प्रतिच्छवि है। 'द आर्ट आफ लिविंग' [illegible] लिखते हैं कि मन में जब सकारात्मक चिंतन का झरना बहने [illegible] प्राणशक्ति उदित होती है, जो मनुष्य को अपने वरदान [illegible]

पं श्रीराम शर्मा आचार्य लिखते हैं कि विचार बीज हैं। व्यक्तित्व के रूप में वे ही वृक्ष बनते हैं और परिपक्व होने पर उन्ही पर बीज के अनुरूप फल आते हैं। इनको पुष्पोद्यान की तरह लगाना पड़ता है और कुविचार रूपी खरपतवार से उनकी रक्षा करनी पड़ती है। ये विचार ही कालान्तर में व्यक्तित्व की महक बनते हैं। विरोधी विचारों का प्रवाह व्यक्ति को अन्धकार की ओर ले जाता है। ये व्यक्ति के जीवन में दु:ख और अशान्ति का जमघट लगा देते हैं जिनसे आन्तरिक शक्तियों की अभिव्यक्ति की सारी सम्भावनायें समाप्त हो जाती हैं। अत: ईश्वर के मंगलमय विधान की तरह अपने को 'शिवत्व' से अलंकृत करने से अन्त: में कल्पवृक्ष उगता है, जिसकी वरदायिनी छाया व्यक्ति को वह सब कुछ देती है, जो वह माँगता है। ☐

विनम्र निवेदन

'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया' अर्थात् 'सब सुखी और निरोग रहें' इस पवित्र उद्देश्य की पूर्ति हेतु स्वास्थ्य, संस्कार व व्यक्तित्व निर्माण की पत्रिका अनन्त प्रभा का शुभारम्भ हुआ था। पत्रिका की दिनोंदिन बढ़ती लोकप्रियता ने हमारे उत्साह को बढ़ाया। हमें बड़ा सुखद आश्चर्य हुआ कि भारतीय जनता आज भी सात्विक सामग्री पसन्द करती है। 'स्वस्थ रहें सौ वर्ष जिएं' भी उसी महान् उद्देश्य की दिशा में किया गया एक विनम्र प्रयास है। हमारे शास्त्रों में ज्ञान और सत्य को चतुर्मुख ब्रह्मा की उपाधि से विभूषित किया गया है। अनेक स्वास्थ्य विज्ञानियों और आर्वेयुदाचार्यों ने स्वास्थ्य की उपयोगी पुस्तकें लिखी हैं। उन उपयोगी पुस्तकों की मणिमाला में 'स्वस्थ रहें सौ वर्ष जिएं' का क्या स्थान रहेगा, इसका निर्णय तो स्नेही पाठक करेंगे, लेखक का निवेदन मात्र इतना है कि प्रस्तुत कृति एक महान् उद्देश्य को सामने रखकर, पवित्र भावना और ईमानदारी के साथ परिश्रम पूर्वक लिखी गई है। लेखक को पूर्ण विश्वास है कि पूरे परिवार के स्वास्थ्य और सुख-शान्ति के लिए यह कृति बेजोड़ सिद्ध होगी।

❖ यदि आपको पुस्तक उपयोगी प्रतीत हो तो अपने सुहृद मित्रों एवं सम्बन्धियों को इसे उपहार स्वरूप अवश्य दें। ऐसा करके आप उनके परिवार में स्वास्थ्य और सुख-शांति की स्थापना करेंगे, क्योंकि अच्छी पुस्तकें जहां होती हैं, वह स्थान स्वर्ग बन जाता है।

❖ पुस्तक के विषय में केवल प्रशंसात्मक पत्र ही न लिखें, उपयोगी सुझाव भी भेजें, ताकि आगामी संस्करण में सुधार हो सके। **आपके सुझाव मानवता की सच्ची सेवा सिद्ध होंगे।** शेष शुभ।

अनेकानेक मंगलकामओं सहित

रामकुमारसिंह पुण्डीर

लेखक एवं सम्पादक : अनन्त प्रभा

3/542, मालवीय नगर, जयपुर